

University of Mysore.

Oriental Library Publications
SANSKRIT SERIES No. 70.

(मुहूर्तदर्शनम्)

विद्यामाधवीयम्

विद्यामाधवविरचितम्
विष्णुशर्मविरचित मुहूर्तदीपिकायुतम्
तृतीयसंपुटम् ११-१५ अध्यायाः.



THE
VIDYAMADHAVIYAM
OF
VIDYA MADHAVA
WITH
VISHNUSARMA'S MUHURTHADIPIKA
PART III—CHAPTERS 11-30

EDITED BY

ARTHASASTRA-VISARADA, VIDYALANKARA
DR. R. SHAMA SASTRY, B.A., PH.D., M.R.A.S.,
*Curator, Government Oriental Library, Mysore, Director of Archaeological
Researches in Mysore, Periodical Lecturer to the Post-Graduates'
Classes of the Calcutta University, and B.B.R.I.S.
Campbell Memorial Medalist*



MYSORE
PRINTED AT THE GOVERNMENT BRANCH PRESS
1926

विद्यामाधवीयस्य सव्याख्यस्य तृतीयसंपुट

विषयसूचनी

| विषयः. | मूल. | व्या. | पृष्ठसङ्ख्या. |
|---|-------|---------|---------------|
| एकादशो देवप्रतिष्ठाध्यायः | | | 1—41. |
| देवप्रतिष्ठाकालः | १ | | 1 |
| सप्रमाणं मूलविवरणं चशब्दसूचिता अन्येऽप्यर्थाः | | ,, .. | 1 6 |
| देवप्रतिष्ठायां लग्नस्थसूर्यादिफलम् | २ | .. | 6 |
| मूलार्थः गुरुनारदश्रीपत्याद्युक्तानेकार्थसमुच्चयश्च | | ,, ... | 6 8 |
| प्रतिष्ठायां ग्राह्या भावगणयः | ३ | | 8 |
| मूलार्थः मूलानुक्तग्रहबलादिग्राह्यता च सप्रमाणं | | ,, .. | 8 10 |
| प्रतिदेवतं प्रतिष्ठानक्षत्राणि | ४ | .. | 10 |
| गुरुनारदश्रीपतिवचनैर्मूलार्थे प्रामाण्य मूलानु- क्तार्थश्च | | ,, ... | 10 12 |
| शुभपोषकाः प्रतिष्ठायोगाः | ५-६ | | 12 13 |
| मूलार्थे गुर्वादिवचनोदाहरणं | | ,, | 13 15 |
| भूपानामभिषेककालः | ७-८ | | 15 |
| मूलार्थे विधिरत्नादिग्रन्थसम्मतिः विशेषार्थश्च | | ,, ... | 15 17 |
| नृपाभिषेके शुभवारोदयांशाः | ९ | | 17 |
| मूलार्थे मतभेदास्तत्प्रमाणानि च | | ,, | 17 19 |
| नृपाभिषेके गोचारफलानि | १०-११ | | 19 |
| मूलोक्तार्थे निबन्धन्तरसंमतिः | | ,, | 19 20 |
| नृपाभिषेके ऐन्द्रसंज्ञा योगाः | १२-१३ | | 20 21 |
| मूलाभिहिते ऐन्द्रयोगे मतान्तरं तदभिप्रायश्च | | ,, | 21 |
| जातकोक्तदीर्घायुयोगा अप्यभिषेकार्हा | १४ | | 21 |
| मूलविवरण राजाभिषेकस्य दैवज्ञपूजापूर्वकमेव कार्यत्वम् | | ,, | 21 22 |

| विषयः. | मूल. | व्या. | पृष्ठसङ्ख्या. |
|--|---------|---------|---------------|
| अभिषेकार्हता | | ,, .. | 22 |
| राजाभिषेककाले महिषीयुवराजसचिवादेरप्यभिषेकः | | ,, | 22 23 |
| राज्ञा कृताभिषेकेण ह्यशिक्षादिविधानकालः | १५ | . | 23 |
| मूलोक्तार्थे प्रमाणं मूलानुक्तानेकार्थाश्च | | ,, .. | 23 27 |
| खड्गादि शस्त्रकरणकालः | .. १६ | ... | 27 |
| शस्त्रकरणे गुरुक्तं योगान्तरम् | | ,, | 27 28 |
| गजाश्वादिरक्षाविधिः | १७ | | 28 |
| अश्वदेरुपद्रवपरिहारिणी शान्तिः खड्गधारणयोगा | | | |
| खड्गलक्षणमित्यादयो मूलानुक्ता अनेकार्याः | | ,, .. | 28 38 |
| गजाश्वादिविलोकनसंग्रहसन्नाहादिकालः | १८ | | 38 |
| युद्धारम्भकालः | २० | | 38 |
| युद्धारम्भयोगान्तराणि | १९ | . | ,, |
| मूलार्थः मूलानुक्ता विशेषाश्च | | ,, .. | 39 40 |
| कनकसंग्रहार्ह काल | .. २० | .. | 40 |
| मृदादिनक्षत्रेषु यो विशेषे च धनस्यान्यस्मा अदेयत्वम् | | ,, | 40 41 |
| त्रिहाराद्यर्थमारामगमनादौ कालान्तरातिदेशः | २० | | 41 |
| अध्यायोपसंहार | २१ | | ,, |
| द्वादशो यात्राध्यायः | | | 42—159 |
| यात्रार्हः कालः | .. १ | . | 42 |
| मूलस्य यात्रार्हकालविधिपरतया योजना | | ,, .. | ,, |
| ,, योजनान्तरम् | .. | ,, ... | 42 43 |
| जातकापरिज्ञाने प्रश्नलग्नवशात्तत्क लक्लृप्तिकमादिः | | ,, | 43 52 |
| दिग्वशात् यात्रार्हनक्षत्राणि | ... २ | ... | 52 |
| मूलार्थः प्रमाणानि च ... | . | ,, | 53 54 |
| यात्रायां परिघातिक्रमदोषस्य संकोचविशेषः | ३ | | 54 |
| मूलार्थे गुरुवचनोदाहरण च समुच्चितार्थश्च | | ,, | 54 55 |
| दिक्शूलानि | ४ | | 55 |
| मूलार्थे प्रमाणोपन्यासः तत्तद्विशेषार्थश्च | | ,, | 55 59 |
| प्रतिशुक्रोदयदोषः | ५ | | 59 |

| विषयः. | मूल. | व्या. | पृष्ठसङ्ख्या. |
|--|---------|---------|---------------|
| मूलविवरणं विशेषार्थाश्च | | ,, | 59 64 |
| प्रागादिदिक्षु प्रयाणे प्रशस्नास्तिथयः | ६ | ,, | 64 |
| तत्तत्तिथिषु प्रयाणफलानि, तत्तन्मतानि, विशेषाश्च | | ,, | 64 66 |
| प्रागादिदिक्षु शुभा वागः | ७ | ,, | 66 |
| मूलार्थे गुरुवचः प्रमाणं | | ,, | 67 |
| दिक्शूलवारा. तत्र श्रीपतिमतं च | ८ | ,, | ,, |
| मूलार्थः मूलानुक्ता विशेषाश्च | | ,, | 67 69 |
| योगिन्य | ९ | ,, | 69 |
| मूलानुक्तानेर्थाभिधानेन सह मूलविवरणम् | | ,, | 69 75 |
| गुलिकाविषघट्यादिषु यात्रानिषेधः | १० | ,, | 75 |
| मूलार्थः मूलानुक्ताश्च बहवोऽर्थाः | | ,, ... | 75 89 |
| शुभप्रदयात्राविशेषकालः | ११ | ,, | 90 |
| सप्रमाणं मूलविवरणं विशेषांशाश्च | | ,, | 90 94 |
| यात्रालप्रदोषाः | १२ | ,, | 94 |
| सप्रमाणं सविशेषं च मूलविवरणम् | | ,, | 94 98 |
| यात्रायां ताराबलविशेषः | १३ | ,, | 98 |
| मूलार्थे तत्तन्निबन्धसंमतिप्रदर्शनम् | | ,, | 98 100 |
| यात्रोचिता राशयः | १४ | ,, | 101 |
| मूलार्थे प्रमाणानि विशेषांशाश्च | | ,, | 101 105 |
| जलयात्रार्हा राश्यादयः | १५ | ,, | 105 |
| मूलार्थः प्रमाणानि मूलानुक्ता विशेषांशाश्च | | ,, | 105 126 |
| यात्रायां शुभवाराणां सर्वजन्तुशुभप्रदत्वम् | १६ | ,, | 126 |
| मूलार्थे निबन्धसंमति मतान्तरं च | | ,, | 126 127 |
| सप्रदोषस्य यात्रायामनिष्टफलता | १७ | ,, | 127 |
| मूलार्थे प्रमाणानि | | ,, | 127 128 |
| यात्रोपक्रमे विशेषाः | १८ | ,, | 129 |
| सप्रमाणं मूलविवरणम् | | ,, | 129 130 |
| हस्त्यादिभिर्वियासतोऽपि द्वात्रिंशत्पदान्यादौ पञ्चधा- मव गन्तव्यानि | १९ | ,, | 130 |

| विषयः, | मूल. | व्या. | पृष्ठसङ्ख्या. |
|--|-------|---------|---------------|
| मूलार्थे प्रमाणं विशेषाश्च | | ,, .. | 130 133 |
| प्रयाणे प्रथममविच्छेदेन गन्तव्यमार्गमानम् २७ | | ... | 133 |
| मूलविवरणं प्रसङ्गात् शुभाशुभशकुननि- रूपणं च | | ,, | 133 141 |
| प्रस्थितस्य नृपादे. मध्ये वासादिनपरिगणना २१ | | | 141 |
| मूलार्थः मतान्तरं च | | ,, | 141 |
| प्रस्थाननक्षत्रवशात् यात्रायां स्थितिगतिनि- यमा. | २२-२३ | | 141 |
| मूलार्थः मतान्तरं च | | ,, | 142 |
| यात्रालम्भादि द्वादशभावानां नामान्तराणि २४ | | | 142 |
| मूलार्थे वराहमिहिरसंमतिः | | ,, | 142 143 |
| यात्रालम्भे तन्वादिभावेषु ग्रहवशात् फलानि २५ | | ... | 143 144 |
| मूलार्थे वराहमिहिरसंमतिः ... | | ,, ... | 144 147 |
| यात्रायां गुरुमतेन लम्भादिस्थसूर्यादिफलम् २६ | | . | 148 |
| मूलार्थे गुरुवचनोदाहरणं विशेषार्थश्च | | ,, ... | 148 149 |
| यात्राया आवश्यकत्वे प्रशस्तकालालम्भे दोषशा- न्त्युपायः | २७ | | 149 |
| मूलार्थ. प्रमाणं च | | ,, .. | 150 |
| भक्ष्यविशेष. तत्तद्वारदोषशान्तिः ... २८ | | | 150 |
| मूलोक्तेऽर्थे गुरुवचनोपन्यास , श्रीपतिमतं च | | ,, | 151 |
| नक्षत्रदोषपरिहारकं यात्रिकभक्ष्यं २९-३१ | | | 151 |
| मूलार्थ प्रमाणानि च | | ,, | 152 |
| दिग्वशात् यात्रायां कालः दोषशान्तिश्च ३२ | | | 153 |
| मूलोक्तेऽर्थे प्रमाणोपन्यास. | | ,, | 153 154 |
| गुरुणेक्ता यात्रायोगाः ३३-३९ | | ... | 154 156 |
| मूलोक्तेऽर्थे प्रमाणोपन्यासः ... | | ,, | 156 157 |
| यात्राया योगाभियोगाः ४० | | | 158 |
| मूलार्थप्रमाणोपन्यासः योगविषये व्यवस्था च | | ,, | 158 |
| अध्यायोपसंहारः ४१ | | | 159 |

| विषयः | मूल. | व्या. | पृष्ठसङ्ख्या |
|--|------|-------|--------------|
| अथ त्रयोदश प्रकीर्णकाध्यायः | | | 160—224 |
| नववस्त्रधारणकालः | १ | | 160 |
| वराहमिहिरसंमतिः विशेषार्थश्च ... | | ,, | 160 163 |
| क्वचित् त्याज्यगणे वस्त्रधारणमिष्टम् | २ | | 163 |
| मूलविवरणं विशेषांशश्च ... | | ,, | 163 167 |
| नव्यसौवर्णाभरणधारणकालः | ३ | | 167 |
| मूलार्थः विशेषार्थश्च .. | | ,, | 167 169 |
| द तधावने कालः | ४ | | 169 |
| मूलार्थे स्मृतिः प्रमाणं प्रतिवारं दन्तधावनफलं च | | ,, | 169 170 |
| तैलाभ्यङ्गकाल | ५ | | 170 |
| मूलार्थः प्रमाणोपन्यासः विशेषांशश्च | | ,, | 170 172 |
| द्रव्यसंग्रहकाल .. | ६ | | 172 |
| मूलविवरणं श्रीपतिवचनोपन्यासश्च | | ,, | 172 173 |
| हेमसंग्रहे योगः | ७ | | 173 |
| मूलार्थः गुरुवचनोपन्यासश्च | | ,, | 173 174 |
| रजतादिसंग्रहयोग ... | ८ | | 174 |
| मूलार्थे प्रमाणं विशेषांशश्च | | ,, | 174 176 |
| वृद्धयर्थे संगृहीतानां ब्रह्मादीनां बन्धनकालः | ,, | | 176 |
| मूलार्थः गुरुवचनोपन्यासश्च | | ,, | |
| स्वामिमुखावलोकनकालः ... | १० | | |
| मूलविवरणं मतान्तरं च | | ,, | 176 178 |
| स्वामिदर्शने श्रेष्ठाराशिः | ११ | | 178 |
| मूलार्थविवरणं गुरुवचनोपन्यासश्च | | ,, | 178 179 |
| स्वामिदर्शनयोगा . . . | १२ | | 179 |
| मूलविवरणं गुरुवचनोपन्यासश्च .. | | ,, | 179 |
| योगान्तराणि | १३ | | 180 |
| मूलार्थः विशेषाश्च . . | | ,, | 180 181 |
| विप्रवश्ययोगाः ... | १४ | | 181 |
| मूलविवरणं प्रमाणं च.... | | ,, | 182 |

| विषयः | मूल. | व्या. | पृष्ठसङ्ख्या. |
|---------------------------------------|---------|-------|---------------|
| योगान्तराणि | १५ | | 182 183 |
| मूलार्थः प्रमाणं च | | ,, | 184 |
| वैश्यवश्ययोगः | १६ | | 184 |
| मूलार्थः विशेषार्थश्च | | ,, | 184 185 |
| शूद्रवश्ययोगः | १७ | | 185 |
| मूलार्थः प्रमाणं च | | ,, | 186 |
| स्त्रीवश्ययोगः | १७ | | 186 |
| शत्रूणामपि मैत्रीकारकौ योगौ | १८ | | 186 |
| मूलविवरणं मतान्तरं च | | ,, | 187 |
| भृत्यसंग्रहकालः | १९ | | 187 188 |
| मूलार्थः प्रमाणं च | | ,, | 188 |
| कृष्यादिकर्मरम्भकालः | २० | | 188 |
| मूलार्थे गुरुवचनोपन्यासः | | ,, | 189 |
| विवादग्रस्तभूमे स्वायत्तिकरणयोगः | २१ | | 189 |
| मूलार्थः मतान्तरं च | | ,, | 190 |
| योगान्तराणि | २२ | | 190 |
| ,, | २३ | | 191 |
| ,, | २४ | | 191 |
| मूलार्थः प्रमाणं च | | ,, | 191 193 |
| क्षेत्रादिसंग्रहयोगः | २५ | | 193 |
| मूलार्थः प्रमाणं च | | ,, | 194 |
| भूस्वत्वापादकयोगान्तराणि | २६ | | 194 |
| मूलार्थः प्रमाणं च | | ,, | 194 195 |
| गृहादिषु मूषिकादिबाधापनयनोपायः | २७ | | 195 |
| अनुक्तकालस्य गृहकर्मणः कालः | २८ | | 196 |
| मूलार्थः प्रमाणं च | | ,, | 196 |
| गवां संग्रहकालः | २९ | | 197 |
| मूलार्थः मतान्तरं च | | ,, | 197 198 |
| गवां संग्रहणे योगः | ३० | | 198 |

| विषया.. | मूल. | व्या. | पृष्ठसंख्या. |
|---|------|-------|--------------|
| गोकार्ये सर्वत्र प्रशस्तवारकरणश्राणि | ३१ | | 198 |
| पूर्तादिकर्मकाल. | ३२ | .. | .. |
| अनुक्तकालशुभकर्मकाल | ३३ | | 199 |
| मूलार्थः प्रमाणानि च | .. | .. | 199 200 |
| पौष्टिककर्मकालः | ३४ | | 200 |
| मूलविवरणं विशेषाश्च ... | .. | .. | 200 202 |
| विद्वेषणादिकालः .. | ३५ | .. | 202 |
| मूलविवरणं विशेषांशाश्च | .. | .. | 202 203 |
| उच्चाटनादियोग. | ३६ | | 204 |
| मूलार्थः विशेषाश्च | .. | .. | 204 |
| विद्वेषणादिकर्मसु दोषाणामवज्यत्वादि ... | ३७ | | 205 |
| मूलार्थः प्रमाणं च | | .. | 205 |
| धातुवादादिकर्मसु वारः | ३८ | | 206 |
| मूलार्थे गुरुवचनं मानम् | .. | .. | 206 |
| कलहाभिवर्धनयोग. | ३९ | | 206 207 |
| मूलानुक्ता विशेषाः | .. | .. | 207 208 |
| गोपरिग्रहादिषु कालान्तरम् | ४० | | 208 |
| मूलार्थे प्रमाणम् | | .. | 208 209 |
| ज्ञानग्रहणकालः .. | ४१ | | 209 |
| मूलविवरणं विशेषाश्च | .. | .. | 209 211 |
| सर्पदंशचिकित्सायाः साध्यासाध्यत्वे | ४२ | | 211 |
| मूलविवरणं विशेषः प्रमाणं च | .. | .. | 211 212 |
| असाध्यरोगारम्भकालः | ४३ | | 212 |
| मूलार्थः प्रमाणं | | .. | 212 213 |
| रोगारम्भनक्षत्रवशात् तद्वाधावहदिनगणना ४४ | | .. | 213 |
| मूलविवरणं तदनुक्ता विशेषाश्च ... | .. | .. | 213 216 |
| औषधक्रियारम्भकालः | ४५ | | 216 217 |
| मूलविवरणं मतान्तराणि तत्तत्प्रमाणानि च .. | .. | .. | 217 220 |
| योगवशात् भैषज्यगुणभेदा. | ४६ | | 220 221 |

| विषयाः. | मूल. | व्या. | पृष्ठसंख्या. |
|---|----------|----------|--------------|
| मूलार्थः प्रमाणं विशेषाश्च | | ,, | 221 223 |
| रसायनादिसेवनकालः | ... ४७ | ... 223 | |
| मूलार्थः मतान्तरं च | | ,, | 223 224 |
| रोगान्तस्नानकाल | .. ४८ | 224 | |
| मूलार्थः प्रमाणं मतान्तरं च | | ,, | 224 226 |
| योगान्तराणि | ४९ | 226 | |
| मूलार्थः प्रमाणं मतान्तरं च | ... ५० | ,, | 226 228 |
| स्थिरादिनक्षत्रकृत्यानि | | 228 | |
| मूलविवरणम् | | ,, | 228 229 |
| अन्तरङ्गबाहिरङ्गनक्षत्रकृत्यानि | ... ५१ | ... 229 | |
| श्राद्धकालः | .. ५२ | 230 | |
| मूलविवरणं प्रमाणं विशेषांशश्च | | ,, | 230 234 |
| श्राद्धतिथय | ... ५३ | 234 | |
| मूलार्थः प्रमाणं विशेषाश्च | | ,, | 234 236 |
| वर्ज्यनक्षत्राणि | ५४ | 236 | |
| मूलविवरणं प्रमाणं च | | ,, | 236 |
| अन्यत्र वर्ज्यानामपि नक्षत्राणामत्र प्राह्यता | ५५ | .. 236 | |
| मूलार्थः प्रमाणं मतान्तरं च | | ,, | 236 238 |
| योगविशेषे श्राद्धकर्मानिष्ठावहम् | ५६ | ... 238 | |
| प्रेतश्राद्धे विशेषः | ५७ | 238 | 239 |
| मूलार्थः प्रमाणं च | | ,, | 239 |
| त्रैपक्षिकादिश्राद्धविधानकाल. | ५८ | ... 239 | |
| मूलविवरणं प्रमाणानि विशेषांशश्च | | ,, | 239 243 |
| अत्रानुक्तेषु कालः ऊहनीय कर्मविशेषेषु | ५९ | 243 | 244 |
| अध्यायोपसंहारः | ६० | 244 | |
| अथ चतुर्दशः तारादिलक्षणाध्यायः (१४) | | | 245—254 |
| तत्तत्तारासंख्या | ... १ | 245 | |
| मूलविवरणं प्रमाणं च | | ,, | 245 246 |
| ताराणां सन्निवेशप्रकारः | २-४ | ... 247 | |

| विषयाः. | मूल. | व्या. | पृष्ठसंख्या. |
|--|------|--------|--------------|
| विशद मूलविवरणं प्रमाणं च | | ,, ... | 247 248 |
| अश्विन्यादिनक्षत्रोदये मेषादिगार्शो गतभागाः ६ | | ,, ... | 248 249 |
| मूलार्थ प्रमाणं मतान्तरं च | | ,, .. | 249 250 |
| श्रवणादिनक्षत्रे नभोमध्यगे मेषादिराशिगत- भागाः | ६ | ,, ... | 250 |
| मूलविवरणं प्रमाणं च ... | | ,, ... | 250 251 |
| वारप्रमाणं | ७ | ,, ... | 251 |
| श्वासनाडीभेदेन कर्माचरणं . . | ८ | ,, ... | 252 |
| नित्यमुहूर्तयोगाः | ९-१० | ,, ... | 252 |
| मूलार्थः प्रमाणं च ... | | ,, ... | 252 253 |
| अध्यायोपसंहारः | ११ | ,, ... | 254 |
| अथ पञ्चदशः पुष्पग्रहगोचाराध्यायः (१५) 255—295 | | | |
| कन्दानां प्रथमार्तवे शुभनक्षत्राणि . | १ | ,, .. | 255 |
| मूलार्थः प्रमाणं च .. | | ,, ... | 255 257 |
| मतान्तरेण नक्षत्रफलम् | २ | ,, ... | 257 258 |
| मूलविवरणं प्रमाणं च | | ,, ... | 258 259 |
| राशिफलम् ... | ३ | ,, ... | 259 260 |
| मूलार्थः प्रमाणं च | | ,, ... | 259 260 |
| गङ्गान्तर्देश्वर्तव्यशुभम् . . | ४ | ,, ... | 260 |
| मूलविवरणं प्रमाणं च | | ,, ... | 260 261 |
| ग्रहणां शुभाशुभगोचारफलसंक्षेपप्रतिज्ञा | ५ | ,, ... | 261 |
| सूर्यभौमयो. गोचारफलम् ... | ६ | ,, ... | 261 |
| चन्द्रस्य सामान्यं गोचारफलम् | ७ | ,, ... | 262 |
| बुधस्य ,, ,, | ८ | ,, ... | 262 |
| जीवस्य ,, ,, ... | ९ | ,, ... | 263 |
| शुक्रस्य ,, ,, | १० | ,, ... | 263 |
| मन्दस्य ,, ,, | ११ | ,, ... | 263 264 |
| मूलविवरणं विशेषाच्च | | ,, ... | 264 270 |
| रविगुरुमन्दकुजानां स्थानविशेषात्फलविशेष. १२ | | ,, ... | 271 |

| विषयाः. | मूल. | व्या. | पृष्ठसंख्या. |
|--|------------|---------|--------------|
| मूलार्थः प्रमाणानि च . . | | ,, | 271 274 |
| गोचरानिष्टफलप्रदातुरपि ग्रहस्य पूजादिभिरिष्ट- | | | |
| कलप्रदता | ... १३ | | 275 |
| विशदं मूलविवरणं सप्रपञ्चं सप्रमाणं च ग्रहयज्ञ- | | | |
| प्रयोगः | | ,, | 275 292 |
| मूलकर्तुः स्वाभिजनादिवर्णनम् | १४-२४ | | 293 294 |

सव्याख्यस्य विद्यामाधवीयस्याशुद्धपाठशोधनम्.

| पृ. | पं. | अशुद्धं. | शुद्धं. |
|-----|-----|-------------------|------------------|
| 15 | 3 | शेषस्य | शेषस्य |
| 16 | 20 | ङ्कुरा | ङ्कुरा |
| 16 | 24 | ,, | ,, |
| 18 | 18 | शीलःस्स्यात् | शीलस्स्यात् |
| 20 | 2 | स्यु | स्युः |
| 22 | 5 | क्रमै | क्रमैः |
| 38 | 16 | कालेऽपि | कालेऽथ |
| 60 | 17 | तमग्रत | तमग्रतः |
| 74 | 13 | दिक्ष् | दिक्षु |
| 91 | 15 | यायात् | यायात् |
| 96 | 23 | त्सन्धिनयौ | त्सन्धिगतौ |
| 114 | 17 | अत्र गार्ग्यः— | अत्र गार्ग्यः -- |
| | | कद | कद |
| 154 | 20 | ज्ञेयग्राभ्वुरिपु | लम्नायत्रिरिपु |
| 178 | 12 | दिनादिष्वपि | दिनादिषु |
| 179 | 2 | बुतद्वक्षेत्रे | बुधक्षेत्रे |
| 187 | 23 | मित्रस्य | भृत्यस्य |
| 188 | 20 | गुतौ | गुरौ |
| 189 | 16 | रवौ | विधौ |
| 193 | 14 | वपुषि | वपुषि |
| 194 | 5 | वृद्धये | वृद्धये |
| ,, | 6 | शुक्रो | शुक्रो |
| 195 | 23 | वृष्वे | विष्वे |
| 196 | 1 | स्वीमा | सीमा |
| ,, | 4 | वरो | वारे |

| पृ. | प. | अशुद्धं. | शुद्धं. |
|-----|----|----------------|----------------|
| 197 | 13 | मत्रै | मैत्र |
| 198 | 4 | विध्यात् | विदध्यात् |
| 199 | 4 | स्या | स्या |
| „ | 11 | कूर्यात् | कुर्यात् |
| 200 | 7 | „ | „ |
| „ | 11 | पौष्टिकं | पौष्टिकम् |
| „ | 18 | स्यु | स्युः |
| 201 | 14 | संज्ञ | संघ |
| 202 | 3 | रज्ज्व दि | रज्ज्वादि |
| 203 | 10 | स्वनुकूल | स्वानुकूल |
| 204 | 4 | ह्र | ह्र |
| „ | 12 | काष्णी | काष्णी |
| 205 | 1 | कर्मविद्वे | कर्मवद्विद्वे |
| „ | 5 | थिद्वे | विद्वे |
| „ | 6 | एषा | एष |
| „ | 8 | स्स्युः | स्युः |
| 206 | 4 | अरण्यादि | अरण्यादिषु |
| „ | 7 | कर्म । चापा | कर्म ; चापा |
| 207 | 1 | शम | श्म |
| „ | 2 | योगात् | योगात् |
| „ | 3 | कर्मणो | कर्मणोऽ |
| „ | 7 | श्यष्टमी | श्यष्टमी |
| „ | 12 | सक्रूरैः क्रूर | सक्रूरैः क्रूर |
| „ | 15 | केतूनां | केतूना |
| „ | 24 | विष्ट | विष्टि |
| 208 | 1 | तदङ्ग | तदङ्ग |
| „ | 3 | निक्षिप्य | निक्षिप्य |
| „ | 8 | थोक्ष्य | मोक्ष्य |
| „ | 10 | शीतागौ | शीतगौ |

| पृ. | प. | अशुद्धं | शुद्धं |
|-----|----|-----------------------|-----------------------|
| 208 | 12 | कार्याणी | कार्याणि |
| ,, | 24 | पुण्यस्य | पुण्यस्य |
| ,, | ,, | वर्जयित्वा चतुर्दशीम् | वर्जयित्वा चतुर्दशीम् |
| 212 | 1 | जर्याणवे | जयाणवे |
| 275 | 4 | मिश्र | मिश्रं |
| ,, | 15 | लक्ष्मी | लक्ष्मी |
| 276 | 17 | माधाः | माधमाः |
| 277 | 21 | तस्व | स्वस्व |
| 278 | 1 | दवतै | दैवत |
| ,, | 12 | स्वोच्छ्राय | स्वोच्छ्राय |
| 279 | 8 | कुङ्कुभा | कुङ्कुमा |
| 280 | 1 | गृह्य | गृह्य |

व्याख्यानस्य त्रुटिततया मातृकायामनुपलब्धाः
मूलपुस्तकेषूपलब्धाः इमे मूलश्लोकाः
यथायथमनुसन्धेयाः.

१५२ तमे पृष्ठे अन्ते योजनीयौ.

यद्वस्तु येषु कथितं तिथिवारक्षेपु तेषु तद्वक्ष्यम् ।
मुक्ता योग्यमयोग्यं पृष्ठा संस्मृत्य वा प्रयातु नृपः ॥
आवश्यके प्रयाणे मुक्ता तिथ्यादिकथितभक्ष्याणि ।
यात्रायोगे व्रजतां न भवति पञ्चाङ्गसंभवो दोषः ॥

१५४ तमे पृष्ठे चन्द्रेऽनष्टमगे इत्यतः (९ पङ्क्तेः) परं योजनीयाः).

योगैस्सिद्धिर्धरणिपतीनां
विप्रादीनामुडुतिथिवीर्यैः ।
चोरादीनां शुभफलशकुनैः
यानेऽन्येषां भवति मुहूर्तैः ॥
यथोक्तलक्षणः कालो न चिरालभ्यते नृभिः ।
यतस्ततोऽहं यात्रायां योगान् वक्ष्यामि सिद्धिदान् ॥
षष्ठे मन्दारौ विक्रमेऽर्को विलम्बे
जीवश्शुक्रजौ वित्तबन्धोश्शशी च ।
लग्नायभ्रातृद्वेषिणा जीवभास्व-
न्मन्दक्षमापुत्रा भार्गवश्चानुकूलः ॥

तनुरिपुकर्मगताः क्रमशो दिनकरमन्दनिशापतयः ।
 वपुषि रविर्गुरुशुक्रबुधा द्रविणगता मदने च गयी ॥
 आतृद्रविणोदयसंस्थाः तीक्ष्णद्युतिचन्द्रशुक्राश्च ।
 आतर्यशुभा विदुरस्ते लग्ने गुरुरम्बुनि सौम्यः ॥
 तनु विक्रमकामसुखारिगताः
 भार्गवमन्दगुरुज्ञमहीजाः ।
 असुहृद्भवविक्रमेष्वशुभाः
 केन्द्रगताश्च शुभा बलवन्तः ॥
 एकं नक्षत्रं प्राप्ताभ्यां
 भू पुत्राचार्याभ्यामेकः ।
 सौम्याख्याभ्यां द्वाभ्यां लग्ने
 संयुक्ताभ्यामन्यो योगः ॥
 अवदद्वराहमिहिरो यान् योगान् योगयात्रायाम् ।
 तेषां दशेह कथिताः कथयाम्यथ विबुधमन्त्रिणा कथितान् ॥
 योगान् सिद्धिकरान् बुधा विदुरिमान् श्लोकैकपादेदितान्
 यात्रायां सुनफाऽनफाश्चुरधुरायोगाधियोगानपि ।
 आधत्ते धरणीपतेरीभमतं पुष्टिं विशेषात्फलं
 अत्रोक्तो निखिलो जनस्य समयः सर्वस्य साधारणः ॥

१५८ तमे पृष्ठे अन्ते योजनीय

गमनमुपगतं अदावश्यकं
 तदितरदुभयं विभज्यैतत् ।
 विदधति विधिनाऽमुदा ये नृपाः
 वसति हि भुवि तेषु यात्राफलम् ॥

विद्यामाधवीयम्

एकादशोऽध्यायः

अथ सम्पन्नैर्गृहस्थैर्देवा अर्चनीया इति तत्र द्वादशाङ्गुलप्रमाण-
मूर्तयः सिंहासने पूज्याः तदधिकप्रमाणमार्तयः प्रतिष्ठाप्यार्चनीयाः ।
अस्थापितानां तेषां पूजाया अनिष्टत्वात् । तच्च स्थापनं शुभकाले कृतं
चेच्छुभं स्यात् । दुष्काले कृतमशुभं स्यात् । तथा च गुरुः—

अस्थापितस्य देवस्य पूजैवानिष्टदा भवेत् ।

स्थापनं च शुभे काले कृतं शोभनदं भवेत् ॥

इति । देवप्रतिष्ठाकालमाह—

त्याज्यं दक्षिणमन्यदिष्टमयनं देवप्रतिष्ठापने
कुम्भे भानुरनिष्टकृत् स च शुभो जीवेन दृष्टोऽथ-
वा । ¹षुष्यान्त्यादितिरोहिणीदिनकरस्वात्युत्तराः
कीर्तिताः श्रेष्ठाश्च स्थिरराशयो द्वितनवो मध्या
श्वरा निन्दिताः ॥ १ ॥

देवानां सर्वेषां प्रतिष्ठायां दक्षिणमयनं त्याज्यम् । अन्यदुत्तर-
मयनमिष्टम् ।

¹ आदित्या.

तथाचाऽहुः—

दक्षिणायनगे सूर्ये प्रतिष्ठा प्राणहारिणी ।
उत्तरायणगे सा च सर्वकार्यार्थसिद्धये ॥

इति । नारदोऽपि—

श्रीप्रदं सर्वगीर्वाणस्थापनं चोत्तरायणे ।
गीर्वाणपूर्वगीर्वाणमन्त्रिणोर्दृश्यमानयोः ।
चैत्रादिष्वेव मासेषु मघादिषु च पञ्चसु ॥

इति । उत्तरायणेऽपि कुम्भे सूर्योऽनिष्टकृत् । तत्र सूर्यो जीवदृष्टश्चेत्
शुभो भवति ।

प्रतिष्ठा कुम्भमासेऽपि वर्ज्या गुरुदृगुज्झिता ।
इति वचनात् । चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः । तेन दक्षिणायनेऽपि विष्णु-
प्रतिष्ठायां श्रावणः शस्त इति ।

विष्णोश्च श्रावणं मासं विशेषेण शुभं विदुः ।
इति वचनात् । अथशब्दो मतान्तरद्योतनार्थः । तेनोत्तरायणे चान्द्राः
पुष्यादयः षण्मासाश्चेष्टाः इति । तथा च गुरुः—

पौषे राज्यविवृद्धिः स्यात् माघमासे तु सम्पदः ।
फाल्गुने द्रव्यलाभाय चैत्रे मासि श्रियावहम् ॥
अतीव सौख्यं वैशाखे ज्येष्ठे मासि श्रियावहम् ।
आषाढे स्थापितो देवो यजमान विनाशनः ॥
सौरमानेन विज्ञेयः श्रावणे राज्यराष्ट्रहा ।
भाद्रपादे जनक्षोभमश्वयुज्य(थ)पि राजहा ॥
कार्तिके शत्रुवृद्धिः स्यात् मार्गशीर्षे धनक्षयः ।

इति । कौश्विद्वर्णक्रमान्मासा उक्ताः । यथा—

फाल्गुनादि चतुर्मासाः चतुर्वर्णक्रमाच्छुभाः ।

सर्वेषां पौषमाघौ द्वौ विबुधस्थापने शुभौ ॥
सर्वासामेव जातीनां वसन्तः शोभनो भवेत् ।
विशेषादभिषिक्तस्य भूपस्य शुभदः सदा ॥

तिथयश्च वर्णक्रमादुक्ताः । यथा—

पूर्वपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णश्चान्त्यत्रिकं विना ।
ब्राह्मणानां द्वितीया च तृतीया चातिशोभना ॥
क्षत्रियणां तु पञ्चम्यां सप्तमी शोभनप्रदा ।
वैश्यानां दशमी प्रोक्ता शूद्राणां च त्रयोदशी ॥
कदाचित् प्रथमा शस्ता द्वादश्येकादशी तथा ।
षष्ठी च ब्राह्मणादीनां क्रमेण यदि सङ्कटे ॥
बलवद्गुरुणा दृष्टे चन्द्रे शोभनकर्माणि ।

इति । स्वतिथिवारादयः शस्ता इत्यन्ये ॥ तथा च श्रीपतिः—

अथामरस्थापनमुत्तरायणे

स्वदेववार्षिकतिथिक्षणादिषु ।

सिते च पक्षे शशितारयोर्बले

विधौ विलम्बे च शुभावलोकिते ॥

इति । देवतानां तिथ्यादयः संज्ञाया मुक्तं (१) प्रतिवारफलं च तेनैवो
क्तम् ॥

तेजस्विनी क्षेमकृदग्निदाह

विधायनी स्याद्वरदा दृढा च ।

आनन्दकृत् कल्पनिवासिनी च

सूर्यादिवारेषु सुरप्रतिष्ठा ॥

इति । अन्ये वर्णक्रमाद्वारानाहुः—

विप्राणां शुभदौ वारौ स्थापने गुरुशुक्रयोः ।

वारौ दिवाकरेन्द्रोस्तु क्षत्रियाणां शुभावहौ ॥
 वैश्यानां बुधवारस्स्यात् शूद्राणां मन्दवासरः ।
 जीवशुक्रबुधानां वा सर्वेषां शोभनाः स्मृताः ॥
 पापग्रहाणां वाराश्च बलिनां तु शुभावहाः ।
 ब्राह्मणानां शुभौ प्रोक्तौ करणौ बवबालवौ ॥
 ततो द्वौ क्षत्रियाणां तु ततो द्वौ वैश्यशूद्रयोः ।
 इति । सर्वदेवताप्रतिष्ठानां सामान्येन पुण्यादीनि नव भानि शुभानि प्रो-
 क्तानि । तथा च ज्योतिषार्णवे—

उत्तरात्रितयं चैव पुण्यादित्यदिवाकराः ।
 शर्वपौष्णानिलश्चैव शुभाः स्युर्देवतालये ॥
 इति । एतैस्सह सौम्याश्विपितृमित्रहरिवसुवारुणर्क्षाण्यपि शस्तानीनि
 नारदः—

व्युत्तरादिति सौम्यान्त्यहस्तत्रयगुरुदुषु ।
 साश्विधातृजलाधीश हरिमित्रवसुष्वपि ॥
 इति । गुरुणा वर्णक्रमादुक्तम्—
 उत्तरात्रिकपुण्याश्वि^(१)ब्राह्मणानां शुभावहा ।
 श्रवणं हस्तमूले च क्षत्रियाणां शुभाः स्मृताः ॥
 वैश्यानां स्वातिमैत्रं च पौष्णं चैव शुभावहम् ।
 शूद्राणामश्विनी श्रेष्ठा तैतिलस्थापने मता ॥
 सर्वेषां रोहिणीपौष्णपुनर्वसुविन्दवश्च ते ।
 सुश्रेष्ठा इति निर्दिष्टाः रौद्रं लिङ्गस्य शोभनम् ॥
 ऐन्दवै च पुनर्वसुर्वासवे त्वाष्ट्रमे तथा ।
 कदाचित् सम्प्रशंसन्ति चन्द्रे गुरुदृशा युते ॥
 इति । राशयश्च स्थिराःश्रेष्ठाः । उभयराशयो नेष्टाः ।

एतदुक्तं गुरुणा प्रतिराशिफलकथनेन—

वंशनाशाय मेषः स्यात् वृषे स्युः सर्वसम्पदः ।
 मिथुने स्युः शुभाः सर्वे कर्कटे वा ऽर्थनाशनम् ।
 इष्टार्थसिद्धयः सिंहे कन्यकायां शुभायतिः ।
 तुलायां मरणं शनिं वृश्चिके सर्वसम्पदः ॥
 चापे वित्तसुखाप्तिश्च मृगे स्यादर्थनाशनम् ।
 कुम्भे शुभसमृद्धिः स्यात् प्रीने स्यात् सर्वशोभनम् ॥
 राशिस्वभावतः प्रोक्तं फलं कर्तृनरेन्द्रयोः ॥
 नगरग्रामराष्ट्राणां प्रतिष्ठायां विशेषतः ।

इति । राशयः शुभयुतेक्षिताः सर्वेऽपि शुभाः इति नारदः—
 राशयः सकलाः श्रेष्ठाः शुभग्रहयुतेक्षिताः ॥

इति । गुरुणा विशेष उक्तः—

ब्राह्मणक्षत्रियाणां तु शोभनाः स्थिरराशयः ।
 उभया राशयो वैश्यगूढाणां शुभदास्मृताः ॥
 चराश्च गुरुणा दृष्टाः शुभयुक्तास्तु शोभनाः ।
 ऊर्ध्वास्य श्व दिवा श्रेष्ठाः सर्वे सम्पत्प्रदाश्च ते ॥

इति । श्रीपतिना प्रतिदेवतं केचिद्राशय उक्ताः—

सिंहोदये दिनकरो, मिथुने महेशो,
 नारायणश्च युवतौ, घटमेऽब्जजन्मा ।
 देव्यो द्विमूर्तिभवनेषु, निवेशनीयाः
 क्षुद्राश्चरे स्थिरगृहे निखिलाश्च देवाः ॥

इति । अपि च—

शुभांशः शोभनो लभे पापांशोऽपि शुभैर्युतः ।
 शुभग्रहांशकान् पापलग्नराशिषु वर्जयेत् ॥

शुभांशस्थः शुभश्चन्द्रः पापांशस्थो न शोभनः ।
 स्थिरराशौ शुभं विद्यादुभयोः शोभनं भवेत् ॥
 विनाशश्चरराशौ तु जिविशुक्रयुतेऽपि च ।
 केचित् शुभमिति प्राहुः देवतानां गृहे तथा ॥
 स्थिरांशे चोभयांशे च सर्वत्र शुभदो भवेत् ।

इति ज्योतिषार्णवे । गोचरफलमाह—

लग्ने दिवाकरविधुन्तुदमन्दभौमाः कुर्वन्ति
राज्ययजमाननरेन्द्रनाशम् । स्वेष्टास्पदेषु शुभदा
निधनेन सर्वे शुक्रो व्यये च सलिलव्यययोश्च
चन्द्रः ॥ २ ॥

लग्नस्थाः सूर्यादयः पापा राज्यादिनाशं कुर्वन्ति । अष्टमे सर्वे
 अशुभाः, शुभा नेष्टाः, ¹सर्वेऽपि स्वेष्टस्थानेषु शुभाः केन्द्रत्रिकोणेषु,
 पापस्त्रिषष्ठयोः, सर्वेऽपि लाभे शुभास्त्युः । शुक्रो द्वादशे न शुभः । चन्द्रो
 द्वादशे चतुर्थे च न शुभः । चकारात् लग्नेऽपि । तथा च गुरुः—

चन्द्रलग्ने दरिद्रस्स्यात् यजमानश्च भूमिपः ।
 आदौ राष्ट्रविनाशस्स्यात् मध्ये ग्रामविनाशनः ॥
 आरार्क²राहुसौराणामेको लग्नगतो यदि ।
 ग्रामं जनपदं भूपं यजमानं च नाशयेत् ।
 प्रकाशकालात् षण्मासं फलदस्सिहिकासुतः ॥
 अन्यदा सर्वगो नैव सकेतुस्स्वफलप्रदः ।
 शुभग्रहा विलग्नस्थाः सर्वे सम्पत्प्रदाः सदा ॥
 विशेषात् स्वगृहस्वोच्चस्वांशगाश्चाऽऽधिराज्यदाः ।

¹ सर्वे दशमे च चतुर्थे च न शुभा .

² गुरु.

नारदस्तु—लग्ने चन्द्रो वर्ज्यः पूर्णेन्दुर्ग्राह्य इत्याह—

लग्नरथास्सूर्यचन्द्रा¹रराहुकेत्वर्कसूनवः ।

कर्तुर्मृत्युप्रदाश्चान्ये धनधान्यशुभप्रदाः ॥

पूर्णः क्षीणः शशी लग्ने पुत्रदः पुत्रन्मशनः ।

इति—

सचन्द्राः शुभदास्सौम्याः धने पापा धनापहाः ।

तृतीये शुभदास्सर्वे चतुर्थेऽर्षान्दवश्शुभाः ॥

शुभा न शुभदाः षष्ठे पापाः शुभफलप्रदाः ।

स्थानभ्रंशं सितेन्दुज्ञाः षष्ठे जीवोऽरिवृद्धिदः ॥

नारदेन षष्ठे चन्द्रः शुभ उक्तः—

षष्ठे शुभा शत्रुदास्स्युः पापा शत्रुक्षयप्रदाः ।

पूर्णः क्षीणोऽपि वा चन्द्रः षष्ठेऽखिलरपुक्षयम् ॥

करोति कर्तुरचिरादायुःपुत्रधनोदयम् ।

व्याधिदास्सप्तमे पापाः सौम्याश्च श्रीप्रदास्सदा ॥

गुरुणा सप्तमे बुध²शुक्रौ न शुभावुक्तौ—

सप्तमे गुरुचन्द्रौ तु धनवृद्धिकरौ तथा ।

पिशाचभवनं शुक्रो बुधः पुत्रमृतिं भयम् ॥

भास्करो मरणं कर्तुः भौमो वह्निभयप्रदः ।

सौख्यनाशकरो मन्दः सप्तमे ग्रामराष्ट्रयोः ॥

सर्वे ग्रहा मृतिस्थाने नृपस्य कुलनाशनाः ।

शुभाशुभास्तु धर्मस्था धर्मस्यैव शुभाशुभाः ॥

व्योम्नि स्थानहराः पापाः शुभाः कीर्तिसुखार्थदाः ।

एकादशगतास्सर्वे नृपकर्त्राः शुभेष्टदाः ॥

¹ चन्द्रौ च.

² गुरु.

सेन्दुशुक्रा व्यये क्रूरा दारिद्र्यं कर्तृराष्ट्रयोः ।
 बुधजीवौ व्ययस्थौ तु नृपराष्ट्रविवर्धनौ ॥
 द्वादशे सर्वेऽपि न शुभा इति नारदः—
 व्ययस्थानगतास्सर्वे बहुव्ययकरा ग्रहाः ।
 इति । श्रीपतिश्च—
 सौम्या लग्नाद्याश्रिता मूर्तिपूर्वान्
 भावान् वीर्यैरुत्कटा वर्धयन्ति ।
 षष्ठं हित्वा भावमेते हि यत्र
 शत्रुध्वंसं कर्तुंरुत्पादयन्ति ॥
 सर्वत्र स्वोच्चमित्रभेषु स्थितश्चन्द्रोऽन्यो वा शुभः । अन्यभेषु न शुभकृत् ।
 तथा च गुरुः—
 चन्द्रे गवि शुभैर्दृष्टे यजमानस्य शोभनम् ।
 मित्रभे मित्रवृद्धयै च रिपुभेऽरातिदो विधुः ॥
 अनिष्टस्थानसंस्थोऽपि प्रशस्तफलदश्शशी ।
 सौम्यभागाधिमित्रेण गुरुणा वा विलोकितः ॥
 वक्ष्यमाणराजादीनां जन्मत्रयमपि त्याज्यमित्यन्ये । तथा च, ज्योति-
 षार्णवे—
 त्रिजन्मर्क्षादि (क्षत्र) पर्याये न कुर्याद्देवतागृहम् ।
 आयुरारोग्यवृद्धिस्स्याद्दग्धदेवगृहं विना ॥
 इति । दग्धदेवगृहस्य सद्यो निर्माणमिष्टमिति तत्र साधारणस्यापि
 कालस्येष्टत्वादग्धदेवगृहं विनेत्युक्तम् ॥

महीपतेश्च कर्तुंश्च तत्तद्गामाधिपस्य च । अष्ट-
 मद्वादशौ राशी त्याज्यौ शेषाश्शुभावहाः ॥

तद्गामाधिपस्य राज्ञः कर्तुः पुरुषस्य तद्गामाधिपतेः प्रभोश्च

त्रयाणामेषां ; चकारात् तद्देवतायाश्च एतेषां चतुर्णां अष्टमद्वादशराशी
त्यजेत् ॥ शेषा राशयश्शुभाः । अत्र गुरुः—

देवप्रतिष्ठा लग्ने स्यात् जन्मन्यायुर्विवृद्धिदा ।

धनवृद्धिर्द्वितीये स्यात्तृतीये विक्रमर्द्धिदा ॥

गृहबन्धुसुखादीनां वृद्धिदा स्याच्चतुर्थमे ।

बुद्धिपुत्रश्रियां वृद्धिः पञ्चमर्क्षे प्रतिष्ठया ॥

षष्ठे शत्रुक्षयाय स्यात् सप्तमे चिन्तितार्थदा ।

अष्टमे मृत्युदा राज्ञो नवमे धर्मवृद्धिदा ॥

दशमे कर्मणां वृद्धयै भवेत् सर्वशुभाय च ।

द्वादशे सर्वनाशाय जन्मभात् कर्तृभूपयोः ॥

इति । अत्र चकाराणामनुक्तसमच्चयाथत्वात् राजादीनां जीवादिबलमपि
ग्राह्यमित्युक्तम् । तथा च गुरुः—

भूपस्य यजमानस्य शुभगोचरगे गुरौ ।

ग्रामस्य शुभगे जीवे मन्दे सर्वशुभप्रदे ॥

नारदोऽपि—

कुजवर्जितवारेषु कर्तृस्सूर्ये बलप्रदे ।

चन्द्रताराबलोपेते पूर्वाह्णे शोभने दिने ॥

इति । अपि च गुरुः—

दोषाणि यानि दृष्टानि दोषाध्याये मया पुरा ।

तानि सर्वाणि वर्ज्यानि प्रतिष्ठायां शुभार्थिभिः ॥

गुणानि यानि चोक्तानि गुणाध्याये मया पुरा ।

तानि सर्वाणि योज्यानि यथालाभं शुभार्थिभिः ॥

दोषाणामपवादेषु सत्सु दोषा न सन्ति हि ।

अपवादापविद्धा ये दोषास्तान्नात्र चिन्तयेत् ॥

रात्रौ न स्थापयेद्देवान् दिने राशिसमन्विते ।

रात्रौ दिनांशके केचित् प्रशंसन्ति शुभान्विते ॥

इति । रात्रिचरा रात्रौ स्थाप्याः । दिनचरा दिवैवेत्येतत्तत्तद्देवतानां
प्रकृत्या सिद्धम् ॥ तथा चोक्तम्—

रात्रौ रात्रिचराणां तद्विवैव दिनचारिणाम् ।

इति । विद्याधरादीनामहर्निशाचरणामपि दिवैव यत उक्तं—

दिवा विद्याधरा रुद्रगणेशस्कन्द मन्मथाः ।

धनेशस्तत्प्रविष्टा ये अयनं चोत्तरं शुभम् ॥

इति । प्रतिदेवतं नक्षत्राण्याह—

चित्राज्येष्ठाचतुर्थीदिनकरदिवसा विघ्नराजस्य
शस्ता दुर्गायास्स्थापनायां शनिदिननवमीवाह्नि-
चित्राः प्रदिष्टाः । श्रीभर्तुः पौर्णमासी मुररिपु-
वरुणौ भौमवारस्तु कैश्चित् शैवानां शूलपाणे-
रपि च गिरिशभं विष्णुवञ्चेतरेषाम् ॥ ३ ॥

विघ्नेशस्य प्रतिष्ठायां चित्राज्येष्ठे द्वे तारे श्रेष्ठे चतुर्थीतिथिश्च
सूर्यवारश्च शस्तः चतुर्दशी च । तथा च गुरुः—

चतुर्दशी चतुर्थी च चित्रा ज्येष्ठा च शोभना ।

गणेशस्य प्रतिष्ठायां सूर्यवारांशकादयः ॥

इति । तथा च दुर्गायाः प्रतिष्ठायां शनिवारो नवमीतिथिः कृत्तिका
चित्रे च तारे शुभे उक्ते । तथाच गुरुः—

नवमी कृत्तिका चित्रा दुर्गायास्तु विशेषतः ।

प्रतिष्ठायां समुद्दिष्टाः मन्दवारांशकादयः ॥

इति । चण्डिकायाः स्थापनायां च कृत्तिकादीनि शुभानि ।

तथाच गुरुः—

कृत्तिका च विशेषेण चण्डिकायां प्रशस्यते ।
इति । तस्या अपि दुर्गाशजत्वात् । श्रीभर्तुः विष्णोः पौर्णमासी-
श्रवणवारुणगानि शुभानि । कौश्वित् भौमवारश्च शुभ उक्तः । पूर्वं
सामान्योक्ततारादीनि चकारादनुक्तानि च तारादीनि शास्त्रान्तरोक्तानि
च ग्राह्याणि । अत्र श्रीपतिः—

रोहिण्युत्तर पौष्णवैष्णव करादित्याऽश्विनीवासवा-
नूराधैन्दव जीवभेषु गदितं विष्णुप्रतिष्ठापनम् ।
पुण्य स्वात्याभिजित् सुरेश्वरकयोर्वित्ताधिपस्कन्दयो-
मैत्रे तिग्मरुचेः करे हिमकरे दुर्गादिकानां शुभम् ॥
गणपतिवृषरक्षोयक्षभूतासुराणाम्
प्रमथ फणिसरस्वत्यादिकानां च पौष्णे ।
श्रवसि(१)सुतानां वासवेज्ये कुपाति
निगदितमखिलानां स्थापनं च स्थिरेषु ॥
सप्तर्षयो यत्र चरन्ति धिष्ये
कार्या प्रतिष्ठा निखिलार्थसिद्धयै ।
श्री व्यासवाल्मीकि घटोद्भवानां
तथा स्मृता वा प्रतिभा ग्रहाणाम् ॥

इति । नारदः—

श्रवणे श्रावणे चैव वारुणे पौर्णमास्यपि ।
विशेषाद्विष्णुसंस्थाने कुजवारांशकादयः ॥
इति । तत्र राशयश्चान्यत्रोक्ताः—
कुम्भवर्ज्याः स्थिरास्सर्वे कुळीरमृगकन्यकाः ।
चण्डिकायाः प्रतिष्ठायां विशेषेण शुभावहाः ॥

इति । नारदः—

क्रमाद्वितीयादि द्वयोः पञ्चम्यादि तिसृष्वपि ।

दशम्यादि चतसृषु पौर्णमास्यां विशेषतः ॥

इति । शूलपाणेरीश्वरस्थ शैवानां वीरभद्रादीनां च प्रतिष्ठायां गिरिशम-
मार्द्रा शस्यते । अपि शब्दः सामान्यतारादिसमुच्चयार्थः । तेन सामा-
न्योक्ततारादिर्ग्राह्यः । चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः । तेन अनुक्तानि मघामू-
लादीनि गृह्यन्ते । उक्तं च प्रयोगमञ्जर्याम्—

हस्तोत्तरात्रयपुनर्वसुपुष्यपौष्ण-

मैत्रेन्दुवैष्णवमघा प्रमथप्रजेशाः ।

चित्राजलेशवसवः पवनस्समूलः

शस्तादिशवाध्वरविधावितरेऽत्र वर्ज्याः ॥

शुभदाः कीर्तिता रिक्ताः विष्टिं मुक्त्वा विशेषतः ।

तिथयः पूर्वपक्षे स्युः लिङ्गसंस्थापने शुभाः ॥

इति । आर्द्राऽष्टमीचतुर्दशीसूर्यवाराश्चात्र शुभाः ईश्वरदैवत्वात् । इतरेषां
ब्रह्मेन्द्रादीनां प्रतिष्ठायां विष्णुवत्—विष्णुप्रतिष्ठावत्—काल इत्यर्थः ।
शास्त्रान्तरोक्तस्तत्तद्विशेषोऽपि द्रष्टव्य इत्यर्थः । तथाच गुरुः—

एवं लिङ्गप्रतिष्ठायां शङ्करोक्तविभेदकैः ।

वैरभेदेषु सर्वेषु समानं सुरसत्तम ॥

कलिप्रतिष्ठा चेन्द्राग्नेः श्रीप्रतिष्ठोत्तरासु च ।

प्रोक्तशुभकालस्य अल्पैर्दिनैर्दुर्लभत्वात् अशेषदोषानिशेषकान्
विशेषशुभपोषकान् प्रतिष्ठायोगानाह—

सौम्योऽधिश्रितकण्टकोऽतिबलावानिन्दुश्शुभां-
शे सुकृत् चन्द्रे चोपचये त्रिषड्भवगतः पापः स्व-

तुङ्गस्थितः। लग्नाद्युगमगृहे शशी यदि शुभाः केन्द्र-
त्रिकोणेऽपि वा मेषेऽर्के भृगुजे तनौ सुरगुरुः के-
न्द्रेऽनुकूलो विधुः ॥ ४ ॥

शुक्रेन्दू वृषभे शुभांशकगतौ लग्नाधिपे लाभगे
लाभेऽर्के यमगे भृगुस्तनुगतस्सौम्ये च कर्म-
स्थिते । मीनेऽर्के भृगुजे तनौ शशिगुरु केन्द्र-
त्रिकोणाश्रितौ योगास्सप्त शुभप्रदा निगदिता-
श्श्रेष्ठाः प्रतिष्ठाविधौ ॥ ५ ॥

लग्नात् त्रिकोणे केन्द्रे वा बलवान् स्वतुङ्गवर्गगः शुभः कश्चित्
स्थितः चन्द्रः सुकर्मा शुभांशके यदि स्यात् एको योगः । चन्द्रदृष्ट-
स्थानगः स्वोच्चगः पापः त्रिषडायगश्चेदन्यः । लग्नाद्युगमराशौ सुकर्मा
सौम्यांशगो बली चन्द्रो यद्यपरः । तादृक्चन्द्रः शुभांशकेन्द्रे त्रिकोणे
स्थितो वा अपरः । मेषस्थेऽर्केऽनुकूले लग्ने शुके गुरौ लग्नकेन्द्रे स्थिते
चन्द्रोऽनुकूल उपचयगतो यद्यन्यः । लग्नाधिपे लाभगे शुक्रचन्द्रौ शुभां-
शगौ वृषभे अनुकूलौ यद्यपरः । लाभेऽर्के इत्यादिकोऽन्यः । यमगे—मिथु-
नराशिग इत्यर्थः मीनेऽर्कः इत्यादिकोऽपरः । एतेऽष्टौ योगाः देवतानां
प्रतिष्ठाकर्माणि सुस्वारोग्यधनसम्पद्देवतासन्निध्यादिशुभप्रदा भवन्ति । अत्र
गुरुः—

स्थानादिबलवान् सौम्यः त्रिकोणे कण्टके गतः ।

शुभकर्मगते चन्द्रे शुभांशे स्थापना शुभा ॥

निजतुङ्गगते पापे भवारित्रितये बले ।

लग्नादुपचये चन्द्रे स्थापना शोभना भवेत् ॥

लग्नक्षौद्रगमभे चन्द्रः शुभकर्मा यदि स्थितः ।
बलवान् शोभनांशे च प्रतिष्ठायां शुभावहः ॥
वृषभे चन्द्रशुक्रौ द्वौ बलिनौ शुभवर्गौ ।

गुरुः—

त्रिकोणे कण्टके वाऽपि शुभा यदि बलान्विताः ।
लग्नेशो वा भवेद्योगः प्रतिष्ठायां सुशोभनः ॥

इति । अपि च श्रीपतिः—

केन्द्रत्रिकोणभवमूर्तिषु सद्गृहेषु
चन्द्रार्कभौमशनिषु त्रिषडायगेषु ॥
सान्निध्यमेति नितरां प्रतिमासु देवः
कर्तुः शुभार्थसुखसम्पदरोगिता च ॥

गुरुः—

लग्नचन्द्रांशकेन्द्रेषु शुभे बलसमन्विते ।
स्वोच्चस्ववर्गे वा योगः प्रतिष्ठायां शुभप्रदः ॥
मन्दे (नवांशगे) नीचांशगे लग्ने नीचारातिग्रहैर्विना ।
कार्याणि स्थावराण्याहुः स्थाप्याश्च विबुधास्तथा ॥
लग्ननाथाष्टवर्गेषु लग्नकण्टकसंहतिः ।
यदि स्यात् भूयसी राज्ञा स्थापना शोभना भवेत् ॥
जलसम्प्रोक्षणादौ तु कथितं सकलं शुभम् ।
यथालाभमलाभे तु जलसम्प्रोक्षणादिषु ॥
दक्षिणायनमासेऽपि कन्याकर्कटकं विना ।
शेषा मासाश्शुभाः प्रोक्ताः पुनस्संस्कारपूर्वकम् ॥

इति । अथ—

वेदोक्तकर्मसंसिद्धयै ब्राह्मणान् गाश्च निर्ममे ।

तेषां संरक्षणार्थाय क्षत्रियानसृजत् प्रभुः ॥
इति । गो विप्रदेवतारक्षणार्थं लब्धजन्मनां राज्ञामभिषेकाख्यसंस्कारवि-
शेषस्य कालमाह—

भूपानामभिषेचने गुरुरपि श्रीनाथमित्तोत्तरा-
रोहिण्याश्विनशक्रपौष्णशशिनः श्रेष्ठाः प्रतिष्ठावि-
धौ । भानुर्भद्रकृदुत्तरायणगतः कुम्भाङ्गनाकर्किगः
त्याज्योऽन्यत्र तु मध्यमोऽत्र करणं श्रेष्ठं स्मृतं
कौलवम् ॥ ६ ॥

वीर्यान्वितेषु नृपजन्मदशाविलग्नवर्णाधिपेषु
नृपतेरभिषेकमाहुः । साम्राज्यसम्पदतिवीर्यगुणैश्च
युक्तश्चान्यत्र वेरिभिरतीव निपीडितोऽसौ ॥ ७ ॥

राज्ञामभिषेके पुण्यादिद्वादश ताराः शस्ताः त्वाष्ट्रं च शस्त-
मिति । विधिरत्ने—

उत्तरायणस्थसूर्यः शुभकृत् । उत्तरायणे कुम्भराशिगतो दक्षि-
णायने कन्याकर्किगतो वर्ज्यः । यथोक्तं ज्योतिषार्णवे—

कन्याकुम्भकुलीरस्थे भानौ वर्ज्यं विशेषतः ।

इति । अन्यत्र—सिंहतुलाकीटराशिषु गतो मध्यमः । गुरुः—

शुक्लपक्षेऽतिशस्तस्स्यात् कृष्णे चान्त्यत्रिकं विना ।

ओजास्सर्वे शुभाः प्रोक्तास्तिथयो नवमीं विना ॥

अथाऽतः संप्रवक्ष्यामि मङ्गलाङ्कुरवापनम् ।

सर्वमङ्गलकार्येषु सर्वसंस्कारकर्मसु ॥

पुष्ट्यादिवृद्धिहेतुत्वात् कर्तव्यं मङ्गलाङ्कुरम् ।
 गर्भवज्योत्सवात् पूर्वमयुग्मेऽप्यङ्कुरार्पणम् ॥
 प्रदोषे वाऽथ सायाहे गुणाधिक्येऽहि वेप्यते ।
 नवमे सप्तमे वाऽहि पञ्चमे वा तृतीयके ॥
 सद्योऽङ्कुरान् वा कुर्वीत कर्मणां पूर्वमेव तु ।
 अङ्कुरं चान्यमासे तु सौरे चान्द्रे विनाशनम् ॥
 दिवा कार्ये दिवा कुर्यात् निशि कार्ये निशाङ्कुरम् ।
 प्रदोषान्तेऽथ वा कुर्यात् रात्रौ केचित् प्रचक्षते ॥
 सायाहे वाऽङ्कुरं कुर्यात् शुभचन्द्रनिरीक्षणे ।
 गुणयुक्ते मुहूर्ते तु स्वामिदृष्टे शुभेक्षिते ॥
 ओषधीशे बलैराढ्ये शुभकर्मरतेऽपि च ।
 पुष्करे वोत्तमे स्वोच्चे शुभभागे निशापतौ ॥
 अङ्कुरात् पुष्टिहेतुस्स्यात् यथा दानं द्विजोत्तमे ।
 गुरुशुकनिशानाथसौम्यानां बलचक्षुषाम् ॥
 जुष्टे चान्यतमे लग्ने वापयेन्मङ्गलाङ्कुरम् ।
 सम्पूर्णमार्जवं शुक्लवर्णं स्निग्धं शुभाङ्कुरम् ॥
 पिपीलिकाद्यैर्दष्टं च विवर्णादिशुभेतरत् ।
 दोषदुष्टाङ्कुरं त्यक्त्वा हुत्वा होमं द्विजार्चनम् ॥
 कृत्वा ततोऽङ्कुरं कृत्वा पश्चात् कार्यं समाचरेत् ।
 यद्यपि सर्वकार्येष्वपि विशेषेणाङ्कुरार्पणमुक्तम् । तथाऽपि यात्रादिषु
 केषुचिन्न कार्यम् । तथा च ज्योतिषार्णवे—
 श्राद्धे केवल्यात्रायां क्षुरकर्माभिचारके ।
 पुंसवे चैव सीमन्ते निषेके जातकर्मणि ॥
 क्षुद्राद्यशुभकार्येषु वापयेन्नैव चाङ्कुरान् ।

इति । अत्र “कुम्भे भानुरनिष्टकृत्” इति कुम्भमासस्यानिष्टकृत्त्वाभिधानात् सर्वेऽपि मासास्सौरा एव ग्राह्या इत्युक्तं भवति । तथाच गुरुः—

“सौरमानेन विज्ञेयः”

इति । अथवेति विकल्पशब्दः सिंहावलो (कितं) कनन्यायेन दक्षिणायनं त्याज्यमित्यत्र संबध्यते । तेन दक्षिणायनमपि कचिद्देवयोनीनां विबुधेतरेषां च प्रतिष्ठायां विबुधानां च पुनःस्थापनायां ग्राह्यमिति । तथा च ज्योतिषार्णवेऽभिहितम्—

किन्नरा यक्षमारीचाः पिशाचा भूतचारिणः ।
विष्णोः पारिषदाश्चैव शिवपारिषदाश्च ये ॥
असुराः पूतना ज्येष्ठाः सिद्धगन्धर्वगुह्यकाः ।
राक्षसाश्चोग्रदेवाश्च क्षुद्रमातृगणास्तथा ॥
निशाचराश्च विज्ञेयास्त्वन्येऽपि विबुधेतराः ।
याम्यायने प्रतिष्ठायां शस्ता मध्या तथोत्तरे ॥
सिंहालिकार्तिके मासि शुभलग्ने शुभे तिथौ ।
पुण्यं (पुनः) स्थापनकर्म स्यादिति काश्यपशासनम् ॥

इति ।

**शुभा बुधाचार्यसितोष्णभासामनस्तगानामुद-
यांशवाराः । स्वोच्चेऽखिलानामुदयोऽत्र पूज्यः स्थि-
राः प्रशस्तास्सयमा विकुम्भाः ॥ ८ ॥**

अनस्तगानामुदितानां शुभानामर्कस्य च वारोदयांशः नृपाभिषेके शुभाः स्युः । तथा च गुरुः—

बुधार्कजीवशुक्राणां वारवर्गोदयाश्शुभाः ।
तेषां वाऽस्तगतानां तु तत्र(तन्न) वन्न (क्षेत्रवर्गाः) शुभावहाः ॥

इति । अन्ये सूर्यवारे शस्त्रभयमाहुः । तथा च विधिरत्ने—

सूर्यस्य वारे यदि शस्त्रबाधां संप्राप्य पश्चादपि बा(ध्य) ते तत् ।
सोमस्य भोगी सततं कुजस्य स्त्रीभिस्सपत्नैश्च सुतैश्च पीड्यः ॥
बौधे सुतान् विन्दति जीववारे पुत्रांश्च वित्तं लभतेऽभिषेके ।
शुक्रस्य वारे यदि दीर्घजीवी नीलस्य वारे म्रियते विषेण ॥

इति । तेषां अंशोदयफलं च तत्रैवोक्तम् —

प्रभान्वितस्स्यादथ सोमभागी पराजितो दानरतोऽतिबुद्धिः ।
नृपाभिषेके यदि नीतिशौण्डो रुगागमोऽर्कादिनवांशलम्नैः ॥

इति । स्वोच्चस्थितानां सर्वेषामुदयोऽत्र—नृपाभिषेके पूज्यः मिथुन-
सहिताः स्थिरराशयः कुम्भेन विना वृषसिंहवृश्चिकमिथुनराशयश्चत्वारः
प्रशस्तास्त्युः । तथा च गुरुः—

श्रेष्ठाः स्थिरगृहास्सर्वे विघटाः सयमाः परे ।
वर्ज्यास्तु राशयस्सर्वे सौरदृष्टयुता अपि ॥

प्रतिराशि फलमुक्तं ज्योतिषार्णवे —

प्रजानां बाधको मेषे वृषे प्रीतिभयो भवेत् ।
मिथुने धर्मशीलस्स्यात् दयावान् कर्कटोदये ॥
दृढः शूरश्च सिंहे स्यात् स्त्रीसक्तः कन्यकोदये ।
जूके वाणिज्यशीलः स्यात् वृश्चिके रोषशीलवान् ॥
चापे सर्वसुखं विद्यात् प्रवासं मकरे तथा ।
कुम्भेऽतियशसा युक्तः प . . . झषोदये ॥
कन्याळियुग्मगोसिंहा वसिष्ठेनोदिताशुभाः ।
. च ये तथा स्थिरे लग्नवर्तिनि च मस्तकोदये ।
सद्ग्रहैश्च सहिते विलोकिते क्रूरदृष्टिसमुपास्तिवर्जिते ॥
तारकाशशभृतो बले दिने सद्ग्रहस्य च तथा विरिक्तके ।

सद्युते व्ययत्रिकोणकण्टके स्वाष्टमेषु रहितेष्वसाधुभिः ॥

इति । वासवादिपञ्चमुहूर्ताः श्रेष्ठाः । तथा च गुरुः —

मुहूर्तो वासवश्श्रेष्ठः तत्परेष्वपि पञ्चसु ।

विषनाडिविवर्ज्येषु गुळिकोदयतो विना ॥

इति । अष्टमादन्यत्र सवत्र शुभाः शुभदा इत्यन्ये । अर्णवे—

शुभग्रहास्तु सर्वत्र शुभदा मृत्युदं विना ।

गोचर फलमाह—

वित्तान्त्यस्थैरपगतधनो बन्धुजामित्रसंस्थैः स्था-
नभ्रष्टस्सुतनवमगैः सौख्यधीधर्महीनः । हीनो-
त्साहो भवति खगतैर्मृत्युसंस्थैर्निरायुः रोगी पापै-
रिह तनुगतैस्स्वोच्चगैर्विक्रमी वा ॥ ९ ॥

वैरिरन्ध्रनिरतैरतिपापैरीक्षिते शशिनि मृत्युमु-
पैति । सद्गृहेष्वरिपुरिष्मृतिस्थेष्वायुरादिफलमेति
नरेन्द्रः ॥ १० ॥

पापैर्द्वितीयद्वादशस्थैश्चोराद्यपहतधनो भवति । चतुर्थसप्तमस्थैः
स्थानच्युतः । पञ्चमस्थैः सौख्यधीहीनः । दशमस्थैरुत्साहहीनः । अष्टमस्थै-
रायुर्हीनः । लग्नस्थै रोगी स्यात् । इह नृपाभिषेके स्वोच्चगैः पापैः लग्नस्थैः
पराक्रमी भवति । अर्थादेव त्रिपङ्केकादशेषु शुभमिति सिद्धम् । तथा
चोक्तम्—

त्रिषडायगताः पापाः शुभा राजाभिषेचने ।

अन्यत्र न शुभाः पापा विशेषान्नाष्टमे शुभाः ॥

इति । वाशब्दात् स्वोच्चादिस्थाः पापा अपि शुभवत् फलं दद्युः ।

तथा च विधिरत्ने—

नीचारिसंस्था अशुभा ग्रहाश्च स्वभोच्चमित्रक्षगताश्शुभा स्युः ।
इति । ततः स्वोच्चादिस्थानगताः सर्वत्र शुभं कुर्वन्ति । नीचादिस्था
अशुभमेव । तथा च श्रीपतिः—

सुहृत्रिकोणस्वगृहोच्चसंस्थाः

श्रियं च कीर्तिं चादिशन्ति खेटा ।

अस्तं गताश्शत्रुभनीचयाताः

भयाय शोकाय भवन्ति राज्ञाम् ॥

इति । शुभग्रहेषु षष्ठद्वादशाष्टमेभ्योऽन्यराशिषु स्थितेष्वायुर्धनसुखविजय-
फलं प्राप्नोति । शुभेष्वपि चन्द्रे षष्ठाष्टमस्थे पापदृष्टे सत्यभिषिक्तो राजा
मृत्युमेति त(य)थाऽऽहुः —

सर्वत्रगाः शुभखगाः शुभदा भवन्ति

नेष्टं फलं विदधति व्ययषण्मृतिस्थाः ।

निधनरिपुगृहस्थे शीतगौ पापदृष्टे

यमसदनमुपैति द्राङ्नरस्सद्गृहे च ॥

अन्यत् गोचरफलादिकं सर्वं प्रतिष्ठावत् । तथा च नारदः—

इति । अभिषेकयोगानाह—

तिकोणे लग्ने वा सति सुरगुरौ व्योम्नि भृगुजे-
क्षते भौमस्सोमो वपुषि बलवानत्र शुभदः । पय-
स्याज्ञायां वा विबुधगुरुरर्के भवगते सहोत्थस्थो
मन्दो दिशति चिरमायुस्सुखगुणान् ॥ ११ ॥

लग्नत्रिकोणेषु गुरुः दशमे शुक्रः षष्ठे भौमः लग्ने चन्द्रश्च यदि
स्यादेको योगः । चतुर्थे दशमे वा गुरुः एकादशेऽर्कः तृतीये मन्दश्च यदि

स्यादन्यः । अनयोरभिषेकश्चिरायुस्सुखगुणान् करोति—

त्रिलाभसंस्थौ शशितिग्मरश्मी मेषूरणे चाम्बुगृहे गुरुश्च ।

यस्यात्र योगे क्रियतेऽभिषेकः सम्पत्सुखं तस्य चिरायुषं स्यात् ॥

धिषणे तनौ गुरुनवांशके रवेः दिवसे सकौल-
वसुरेन्द्रतारके । कलयन्ति योगवरमैन्द्रसंज्ञितं
स मर्हापतेरभिमतोऽभिषेचने ॥ १२ ॥

भानुवारे दिवा ज्येष्ठानक्षत्रे कौलवकरणे लग्ने गुर्वंशके गुरुदयश्चेत्
ऐन्द्रसंज्ञं योगमाहुः । स च राजाभिषेके शुभदोऽभिमत । उक्तं च—

कौलवे करणे ज्येष्ठायोगे जीवनवांशके ।

सूर्यवारे गुरोर्लग्ने ऐन्द्रयोगोऽभिषेचने ॥

इति । यत् पुनरुक्तं—

अतिपातिषु कार्येषु अभिषेके नृपस्य तु ।

कृत्वाऽभिषेकं योगैन्द्रे पश्चात्कालेऽभिषेचयेत् ॥

इति । तत् दुष्टयोगग्रहस्थित्यादिसम्भवे द्रष्टव्यम् । जातकोक्तशुभयो-
गाश्चाभिषेके ग्राह्या इत्याह—

अतिचिरपरमामितायुशाख्याः सुधुरधुरासुन-
भाऽनभाधियोगाः । मुनिभिरभिहिताश्च राजयोगाः
धरणिपतेरभिषेचने प्रशस्ताः ॥ १३ ॥

जातकशास्त्रेषूक्ताः ये दीर्घायुर्योगाः परमायुर्योगाः अमितायुर्योगाः
धुरधुरायोगा सुनमायोगा अनमायोगा अधियोगाश्च अन्ये च राजयोगाः
चशब्दादन्ये च नाभसा आकृतिसङ्ख्याख्यामुख्या योगाश्च सन्ति । ते सर्वे
राज्ञोऽभिषेके प्रशस्ता भवन्ति । एवमुक्तशुभकाले तद्योगे वा दैवज्ञपूजा-
पूर्वकमभिषेकः कार्यः ।

तथा च गुरुः—

आदौ सम्पूज्य दैवज्ञं गोभूवस्त्रसुवर्णकैः ।

ब्राह्मणैः स्वस्तिवाच्याथ राजानमभिषेचयेत् ॥

इति । अत्राऽऽहुः—

सत्यधर्मरतं युक्तं कुलशीलपराक्रमैः ।

प्रजापालनसंशक्तं राजानमभिषेचयेत् ॥

इति । ईदृशगुणयुक्तस्यैव सुमुहूर्तगुणफलयोगसद्भावाच्चाह वराहमिहिरो
यात्रायाम्—

गुणान्वितस्यैव गुणान् करोति

यात्रा शुभा सद्गुहलभयोगात् ।

व्यर्था सदोषस्य गुणान्विताऽपि

वीणेव शब्दाश्रयवर्जितस्य ॥

इति । तस्मादुक्तगुणयुक्तस्य राज्ञः प्रोक्तकालेऽभिषेकः शुभफलप्रदो
भवति । सत्यधर्मनिरतत्वादिगुणहीनस्य अभिषेकः शुभकाले विहितोऽपि
दुष्टफलप्रदो भवति । अत्र राज्ञः स्वकृतस्य दुष्कृतकर्मणः प्राबल्या-
च्छुभफलशंसिनश्शास्त्रस्य न वैयर्थ्यमिति मन्तव्यम् । एवं अभिषेको-
क्तकाले युवराजादीनामप्यभिषेकः कार्यः । अर्णवे—

अभिषेकोक्तकाले तु यौवराज्याभिषेचनम् ।

महिषी मन्त्रिसामन्तगजानां पट्टबन्धनम् ॥

अश्वादीनां तथैवोक्तमभिषेकविधिस्मृतः ।

इति । एवमेव चान्द्रमाससहस्रजीविनोऽन्यस्याप्यायुरादिवृद्ध्यर्थमभिषेकः
कार्यः । अर्णवे—

अष्टमासाधिकाशीतिहायने सौरमासतः ।

गते चन्द्रसहस्राणां दर्शनं पूर्णमेव च ॥

रावे चन्द्रमसोर्गत्योर्योगाद्येऽधिकमासकाः ।
 मासद्वयं तथा प्रोक्तं पञ्चमे सौरहायने ॥
 शताभिषेककालस्स्यात् तस्मिन् ऋक्षदिनोदये ।
 सहस्रविधुसम्पूर्णहायने शतपूरके ॥
 शताभिषेकं कुर्याद्वा तस्मिन् जन्मदिनेऽथ वा ।
 तदभावे दिने मासि शुभे काले समाचरेत् ॥
 नृपाभिषेकवत्काल ।

इति । राज्ञा स्वाभिषेकानन्तरं स्वाङ्गभूतगजाश्वादिसङ्ग्रहशिक्षारोहणादि-
 कालमाह—

ऋक्षे क्षिप्रचरे हयादिदमनं स्थास्तौ तदारोहणं
 नागस्याङ्गशयोजनं शनिदिने लग्ने शनौ कारयेत् ॥
 सद्दारे शुभतारके शुभतिथौ लग्ने ससौम्ये शुभे
 सेनाकोशपरिग्रहादि निखिलं कार्यं विदध्यान्नृपः ॥

क्षिप्रचरमेषु हयगजादीनां दमनं—शिक्षां कुर्यात् । स्थास्तौ—
 स्थिरनक्षत्रे तेषामश्वादीनामरोहणं कुर्यात् । मृदुभान्यपि ग्राह्याणीति ।
 हस्तत्रितयं श्रवणत्रितयं च पौष्णपुनर्वस्वोर्द्वितयं च सौम्यं मैत्रं च तथा
 हयकुञ्जरकर्मसु श्रेष्ठमिति ॥ नारदेऽपि—

विष्णौ च चरमे क्षिप्रे मृदुमे स्थिरमेषु च ।

वाजिकर्माखिलं कार्यं सूर्यवारे विशेषतः ॥

दक्षेन्द्रदितिपुण्येषु करादित्रितयेषु च ।

गजकर्माखिलं यत्तत् विधेयं स्थिरमेऽपि च ॥

इति । सामान्येनाभिहितत्वात् । आचार्यस्तु क्षिप्रचरर्क्षेषु दमनं स्थिरर्क्षेष्वारोहणमिति विशेषेणोक्तवान् । सामान्यस्य विशेषनिष्ठत्वात् । स विशेषश्च

क्षिप्रचरस्थिराख्यनक्षत्रगुणैः सिद्ध्यति । स्थास्रौ तदारोहणमिति पुनरुक्ता
मिदं ; आरोहणे तयोर्ध्रुवमिति प्रागुक्तात्वादिति चेन्न, प्राक् नृपादीनां
गजाश्वारोहणविद्याविषयं ; साम्प्रतं नवानां गजाश्वानामारोहणविषयमुक्तं ।
अन्यैस्तद्योगाश्चोक्ता —

कृत्तिकाद्यंशके चन्द्रे गजाश्वदमनं शुभम् ।

नैर्ऋते शीतगौ लग्ने द्विरदारोहणं शुभम् ॥

कुर्याद्वैश्येन्दुलग्ने तु तुरगारोहणं बुधः ।

नूतनत्वे द्वयोरश्वसादिनोश्च शुभावहम् ॥

इति । शनिवारे शन्युदये शुभवारे शुभोदये वा शुभर्क्षे वा शुभातिथौ
गजानां शिरसि प्रथममङ्कुशयोजनं कार्यम् । तथा च गुरुः—

शुभतारासु सलग्ने शुभांशे शोभने तिथौ ।

अङ्कुशाः करिणां योज्याः शनिलग्नौ शने दिने ॥

तथा शुभवारे शुभर्क्षे सत्तिथौ सलग्ने शुभग्रहोदये सेनाया—बलस्य
सम्बन्धिनां गजाश्वभृत्यादीनां सङ्ग्रहं ; कोशस्य (धनसङ्ग्रहस्य) धनसञ्च-
यस्य सङ्ग्रहं आदिशब्देन राजचिह्नानां छत्रचामरान्दोलिकाकरङ्कध्वज-
यानानां परिग्रहं च कुर्यात् ॥ तथा च गुरुः—

शुभतारासु सर्वासु शुभवारे शुभांशके ।

शुभलग्ने शुभैर्दुष्टे शुभाख्यैस्तिथिभिर्युते ॥

एषु योगेषु कृत्यानि शुभान्याखण्डल शृणु ।

गजाश्वपशुभृत्यानां सङ्ग्रहं ग्रहवेशनम् ॥

एषामारोहणं चैव कर्मकर्तोर्द्वयोर्नवैः ।

राज्ञामास्थानपूर्वाणां मण्टपानां प्रवेशनम् ॥

..... नराणां बन्धुदर्शनम् ।

निर्गत्यानुप्रवेशश्च नृपानुग्रहसम्भवाः ।

चिह्नवाहनपूर्वश्च प्रतिपद्युदितास्तथा ॥

अन्ये त्वाहुः—

गुरुपवनविशाखापौष्णमैत्रोत्तराणि

श्रवणपितृनिर्ऋत्यादित्यसौम्यांशकेषु ।

गुरुसितबुधवारे विष्टिरिक्ताविवर्ज्ये-

प्वखिलतिथिषु लग्ने शोभने दन्तिकर्म ॥

दन्तिकर्म—दर्शनसङ्गाहादि । तत्र हस्तधनिष्ठारोहिण्यः सोमवारश्च

शस्ताः । तथा चोक्तम्—

श्रवणसवितृपुष्यस्वातिपौष्णोत्तराणां

पितृवसुशकटानां मैत्रसौम्यांशकेषु ।

सितगुरुशशिवारे सौम्यवारे च तिथ्याम्

यदि दशमितृतीया सप्तमी पञ्चमी च ॥

भवति शुभमुदारं दर्शनं सङ्ग्रहं वा

द्विरदवनकरीणां तैतिलानां नराणाम्? ॥

अत्र विशेषोऽर्णवेऽभिहितः—

शुभदृष्टियुते काले चन्द्रवृद्धिसमन्विते ।

उर्ध्वाननयुते रा(हौ)शौ शीर्षे गृहे ॥

गजस्वीकरणादीनि गजशिक्षादयस्तथा ।

आरोहणादयस्तस्य गजकर्माखिलं शुभम् ॥

गजानां स्थानारम्भकालोऽपि गुरुणोक्तः—

स्थानारम्भे द्विपानामदितिवसुहारिस्वातिमैत्रोत्तराणि

त्वाष्ट्रं पौष्णं च तिष्यं पितृवरुणयुतं पूज्यमुक्तं शशाङ्के ।

रिक्तावर्ज्येषु सर्वेष्वपि तिथिषु तथा विष्टिवर्ज्येषु वारे

शुक्रशार्केन्दुजीवे स्थिरगृह उदये सौम्यलग्ने शुभं स्यात् ॥

स्वोच्चे स्वर्क्षेऽथवा जीवे शुक्रे वा लग्नगे विधौ ।
 शुभतारांशके भूपो द्विरदागारमारभेत् ॥
 गुरौ शुभगृहे लग्ने स्वर्क्षे वा स्वोच्चगे सिते ।
 चन्द्रे केन्द्रे त्रिकोणे वा द्विरदागारमारभेत् ॥
 शुभनक्षत्रगे चन्द्रे शुभांशे शुभकर्मणि ।
 शुभे केन्द्रे स्थिरे लग्ने द्विरदागारमारभेत् ।
 शुभकेन्द्रे त्रिकोणे वा शुभर्क्षेषु शुभांशके ॥
 त्रिषडेकादशे पापे गजागारं प्रवेशयेत् ।
 आर्यमणर्क्षे च तल्लग्न्ये गजाश्वनिलयं शुभम् ॥
 हस्तस्थेन्दुविलग्न्ये वा तथाऽऽस्थानप्रवेशनम् ।
 नैर्ऋते शीतगौ लग्न्ये द्विरदानां प्रवेशनम् ॥
 शुभेषु वारयोगेषु तुरगागारमारभेत् ।
 तेषां स्थानप्रवेशं च स्थिरराशौ शुभेक्षिते ।
 केन्द्रत्रिकोणगे जीवे भवारिभ्रातृगे यमे ॥
 शुभनक्षत्रगे चन्द्रे हयकर्माखिलं शुभम् ।
 गुरुस्थानगते शुक्रे यमस्थानगते कुजे ॥
 विधौ कथितनक्षत्रे हयकर्माखिलं शुभम् ।
 सुनभादिषु योगेषु शुभनक्षत्रगे विधौ ॥
 गुरुकेन्द्रगते भानौ हयकर्माखिलं शुभम् ।
 राहौ मन्दांशगे लग्न्ये गजाश्वगारमारभेत् ॥
 आदानं च प्रवेशं च कुर्यात्तेषां प्रवृद्धये ।
 सौम्ये मन्दांशगे लग्न्ये नीचारातिग्रहैर्विना ॥
 गजाश्वोष्ट्रखरादीनां शालाकर्मप्रवेशनम् ।
 इत्यादयो गजाश्वशालानिर्माणतत्प्रवेशयोगा द्रष्टव्याः ।

हयकर्मसूक्तं —

उत्तमं स्थिरराशौ तु मध्यमं चोभये भवेत् ।
होरा चोर्ध्वमुखी मुख्या तथैव च शिरोदयः ॥
केन्द्रत्रिकोणगास्सौम्यास्त्रिषडायेषु पापकाः ।
शुभप्रदा ग्रहास्सर्वे रन्ध्रगास्तु न शोभनाः ॥
चन्द्रे सद्गुणसंयुक्ते हयगे वा विशेषतः ।
सुरेश्वरगते वाऽपि वेलावृद्धियुते तथा ।
स्वोच्चमित्रस्वगेहस्थे शुभोदयनिरीक्षणे ॥
सुदिने निर्गमे त्वर्के हयकर्माखिलं शुभम् ।
अश्वसंग्रहणादीनि तस्य शिक्षादयस्तथा ॥
आरोहणादिकं कुर्यात् तस्य सर्वसुखावहम् ।

इति । केचित् गजाश्वशालादिकर्मसु लवनवत्कालमाहुः । अर्णवे
अश्वहस्त्युष्ट्रशालासु रथपत्राङ्गुलादिना ।
समावृक्षेक्षणादीनां कालो लवनवत् स्मृतः ॥

इति । स्वरक्षार्थं खड्गादिशस्त्रकरणकालमाह —

वृषाद्यन्तपादस्थिते सोमपुत्रे कृपाणादिकं का-
रयेत् साधुशस्त्रम् । स्वहस्तस्थिते संयुगे तत्र शस्त्रे
न भीतिर्भवेज्जातुचित शत्रुशङ्कात् ॥ १६ ॥

बुधे वृषभराशिगे प्रथमान्त्यपादयोः प्रथमे चतुर्थांशे वा सति
लग्ने कृपाणक्षुरिकादीनि शस्त्राणि कारयेत् । शस्त्रमिति जातावेकवचनं ।
तेषु शस्त्रेषु स्वहस्तस्थितेषु सत्सु धारयितुर्नृपादेर्युद्धेऽपि कदाचित् शत्रुह-
स्तगतशस्त्रात् भीतिर्नोपपद्यते । शस्त्रकरणे अन्ये योगाश्च गुरुणोक्ताः—

शुक्रमन्दरवयो यदि याताः एकमंशमुदयं च गतास्ते ।

नौतटाकपरिखादिविशेषानायुधानि मुसलानि च कुर्यात् ॥
 एकांशगेषु रविचन्द्रकुजेषु लग्ने
 सच्छस्त्रवाहनपरिग्रहरक्षणाद्यम् ।
 कुर्यात् पुरस्य परिखावृत्तितोरणादि-
 यन्त्राणि शत्रुमरणाय च कर्म तत्र ॥
 एकांशस्थेष्वारचन्द्रैन्दवेषु
 सद्धारक्षे सत्तिथौ कर्म कुर्यात् ।
 वाहास्त्राणां पूर्णहारामरक्षां
 सौधारम्भं मन्दिरारम्भणं च ॥

गजाश्वादिरक्षामाह—

खादिरमायतमश्वद्विपशालाद्वारभुवि खनेत्की-
 लम् । भौमे मन्दांशगते गजतुरगाणामियं महा-
 रक्षा ॥ १७ ॥

मन्दांशगते कुजे लग्ने सति गजाश्चशालाद्वारभूमौ खादिरं हस्ता-
 यतं शङ्कुं खनेत् । गजाश्चानां महती रक्षा स्यात् । अत्र गुरुः—
 भौमे मन्दांशगे लग्ने खादिरं कीलमायतम् ।
 गजाश्चशालाद्वारेषु रक्षार्थं निखनेद्बुधः ॥

इति । अपिच —

मन्दार्कशशिनो लग्न एकमंशमुपागताः ।
 वाहनायुधराज्ञां च रक्षां कुर्यात्तदा बुधः ॥
 केतौ मन्दांशगे लग्ने मुखपुच्छविवर्जिते ।
 गोगजाश्चगृहे मध्ये पञ्चगव्यं विनिक्षिपेत् ॥
 बुधे मन्दांशगे लग्ने कीलं कारस्करं बुधः ।

निखनेदश्वशालायां यमाद्यग्न्यन्तादिक्षु च ॥
 व्याघ्रचोरादिरोगैश्च नास्त्यश्वोपद्रवः सदा ।
 जीवे मन्दांशगे लग्ने वेणुकीलान् सपर्णकान् ॥
 निखनेद्वारुणास्त्रेण क्षेत्राश्वगजगोरुभम् ।
 चोरादिमृगवाधाश्च न सन्त्य(भि)तिभयं तथा ॥
 चन्द्रे मन्दांशगे लग्ने ब्रह्मवृक्षस्य कीलकान् ।
 द्वारि द्वारि दिशि स्थाप्य भयरक्षा भविष्यति ॥
 स्वात्यारूढे रवौ काले व्याधिसम्पात एव वा ।
 द्विजैः शान्तिं नृपः कुर्यात् गजाश्वानां विवृद्धये ॥

अश्वादीनां रोगाद्युपद्रवागमे तच्छान्त्यै मातृशान्तिं कुर्यात् । तथा
 चाऽर्णवे—

कर्तव्या वाजिकार्येषु मातृशान्तिः शुभावहा ।
 त्रिषूत्तरेषु मैत्रे च पवने हस्तभे तथा ॥
 उत्तमं कृष्णपक्षं स्यात् मध्यमं शुक्लपक्षकम् ।
 अष्टम्यां च चतुर्दश्यां अमावास्यां तथैव च ॥
 द्वितीयाद्यष्टमान्तं वा क्षयपक्षे सुखावहम् ।
 भौमवारं प्रशसन्ति मातृशान्तिविधौ बुधाः ॥

इति । उक्तं च खड्गलक्षणे—

खड्गऋक्षग्रहान् गृह्य स्वात्म ऋक्षग्रहानपि ।
 ज्ञात्वाऽरीमित्रतां तेषां ततः खड्गं तु धारयेत् ॥

इति । तत् खड्गादिकं मध्यमाङ्गुलिपर्वणा विमाय ऋ(वृ)क्षाणि (?)

ग्राह्यम् । तथा च गुरुः—

नरस्य मध्यमं पर्व मध्यमाङ्गुलिसम्भवम् ।
 मानाङ्गुलमिति ख्यातं द्वितीयं पर्व मध्यमम् ॥

मानाङ्गुलमितं शस्त्रमस्त्रं च (वा)स्वा सिमेव वा ।
तन्मानं त्रिगुणीकृत्य ध्वजाद्या वसुखाण्डिताः ॥

तत्फलम्—

ध्वजे राज्यविवृद्धिस्स्यात् शत्रुपीडा विनाशनम् ।
आयुर्वृद्धिश्च भूपस्य कोशवृद्धिश्च जायते ॥
धूमे तु प्राणनाशस्स्यात् शत्रुवृद्धिश्च जायते ।
राज्ञा दण्ड्योऽसिधारी यः सर्वशास्त्रेष्वयं विधिः ॥
सिंहे सिंहपराक्रमो बहुधनी दीर्घायुरग्रयो नृणां
अल्पायुः शुनके शुचो बहुरिपुः स्यादर्थहानी रणे ।
दीर्घायुर्बहुविक्रमी बहुधनी रुद्रोपमो गोवृषे
नाशश्शत्रुगणैस्समस्तसमरे वित्तादिनां ? स्यात्खरे ॥
गजे मान्यस्सर्वैर्नृपतिभिरपि स्याद्रिपुपतिः
खगे रोगी नित्यं समरकृतभीत्या रिपुवशः ।
भवेदेवं सर्वायुधगणमिते यो(यो)ज्य नृपतेः
फलं वाच्यं वाज्रिन् गजतुरसङ्ख्यादिरचितम् ॥
ऋक्षसङ्ख्यासमं न्यस्य मुनिभिस्ताडयेत्ततः ।
सप्तविंशतिभिरिशष्टं नक्षत्रं तुरगादिकम् ॥
मेषसिंहहयाः क्ष(त्रा)त्रं वृषकन्यामृगान्त्यजाः ।
युग्मतौलिघटा वैश्याः कर्कटाक्षिझषा द्विजाः ॥

तत्फलम्—

विप्र आहाररहितः क्षत्रियो विजयी भवेत् ।
वैश्यो वाणिक् प्रवृत्त्यर्थी शूद्रः शशुभकरः स्मृतः ।
इति । अन्ये त्वाऽऽहुः—
अधमौ क्षत्रविप्रौ तु मध्यमो वैश्यसंज्ञितः ।

उत्तमः शूद्र इत्युक्तः एवं शस्त्रस्य लक्षणम् ॥
इति । केचिदङ्गुष्ठपर्वणा खड्गादिकं प्रमाय ग्रहान प्रकल्प्य फलं
वदन्ति ।

खड्गमङ्गुष्ठविमितं विश्वघ्नं मुनिभिर्हरेत् ।
शिष्टाङ्गुलैर्ग्रहा ज्ञेया विद्यात्तैस्तु शुभाशुभम् ॥
दुःखं सूर्ये शुभं चन्द्रे तेनैवात्मक्षति कुजे ।
बुधे बुद्धिगुरौ वित्तं शुके शक्तिश्शनौ मृतिः ॥

इति । अन्ये त्वाहुः—

तृतीयपर्वपर्यन्तं मानं यत् स्यादनामिकम् ।
ज्ञात्वा तत्तेन मानेन क्षुरिकां मुष्टिवर्जिताम् ॥
प्रमाय या भवेत् सङ्ख्या तां दिग्भिर्नवभिस्त्रिभिः ।
नवभिस्सप्तभिश्चापि चतुर्भिश्च क्रमेण तु ॥
निर्हृत्य रविभिश्चक्रैरष्टाभिस्तिथिभिस्तथा ।
त्रिघनैर्मुनिभिश्चापि हत्वा त्वायादिलभ्यते ॥
आयो व्ययश्च योनिश्च तिथिर्द्रुमादितारकाः ।
अर्कादिवाराश्चायुश्च षण्णामेषां समुच्चयः ॥

इति । खड्गादीनामृक्षं च ज्ञात्वा तेन भर्तुर्नामर्क्षस्य विवाहवत् योगा
विचार्याः । अपि च गृहवदायादि द्रष्टव्यम् । तेषामानुकूल्ये तच्छस्त्रं
शस्तम् ।

वितस्तिमात्रकामूनां मध्यमां द्विवितस्तिकाम् ।
त्रिवितस्त्युत्तमं शस्त्रमङ्गुष्ठेन तु मानयेत् ॥
अयुर्लक्ष्मी मृतिं चेति समुच्चार्य पुनःपुनः ।
आयुर्लक्ष्मीमृतिश्चेति गणयेद्देशिकोत्तमः ॥
अयुर्लक्ष्मीप्रदे शस्त्रे दूष्यं मृत्युप्रदं भवेत् ।

इत्यादिगणानां चानुकूल्यमास्ति चेत् तच्छ्रुत्वा धारयेत् । अन्यथा निकषै-
स्तदर्हप्रमाणमुक्तं युक्तं कार्यं । तथाच वराहमिहिरः—

निष्पन्नं न च्छेद्यं निकषैः कार्यं प्रमाणयुक्तं तत् ।

मूले प्रियते स्वामी पत्नी तस्याग्रतश्छिन्ने ॥

इति । तस्मान्न च्छेद्यमित्यर्थः । येषु दोषेषु सत्सु खड्गादय आयाद्यनु-
कूलतायामपि वर्ज्याः ते यथा—

खड्गपुत्रयोर्मानं गणयेत् स्वाङ्गुलेन तु ।

मानाङ्गुलेषु पर्यायानेकादशमितास्त्यजेत् ॥

शेषाणामङ्गुलानां च फलानि स्युर्यथाक्रमम् ।

मृत्युर्हानिः पुत्रनाशः स्त्रीलाभो गमनं शुभम् ॥

अर्थहानिश्चार्थवृद्धिः प्रीतिस्सद्भिर्जनस्तुतिः ।

विद्धं भग्नं स्फुटितपिटकं वारिमार्गं गतत्व-

ग्रेखायुक्तं सुतजल(लवं)जड¹ सीधुलं वक्रधारम् ।

व्याधिं दु खं मरणमथनं कीर्तिनाशं दारिद्र्यं

कुष्ठं वीर्यच्युतिमथ तथा बन्धुपुत्रक्षयं च ॥

गतत्वग्रेखायुक्तमिति कर्कशत्वं ।

(?) जलजडत्वं श्वेतवर्णकम् एकाङ्गनामितं ।

हीनप्रसरं रूपकृष्णकं काठिनं सक्षतं खड्गमीदृशं वर्जयेन्नरः ।

स्फुटितं ह्रस्वं कुण्ठं वंशच्छिन्नं न दृढनोऽनुगतम् ।

अस्वनमिति चानिष्टमिति प्रोक्तविपर्यस्तु फलम् ॥

इति । दुष्टाकृतिव्रणयुक्ताश्च वर्ज्याः । अथ—

कृकलासकाककङ्ककव्यादकबन्धवृश्चिकाकृतयः ।

खड्गव्रणा न शुभदा वंशानुगतासमुन्नताश्च स्युः ॥

शुभाकृतिव्रणा ग्राह्या एव । यत उक्तम्—

व्रणयुक्तोऽपि निस्त्रिंशो बि(ल)ल्वपङ्कजकुण्डलै ।
वर्धमानध्वजच्छत्रस्वस्तिकाद्यैर्व्रणैश्शुभः ॥
शिवलिङ्गधनुश्शस्त्रदेवताप्रतिमादिभिः ।
व्रणै र(स्थै)थैश्शुभाकारैर्व्रणैर्वा पारिपूजिताः ॥
भृङ्गारासनवाजिकुञ्जर (कुण्डल) रथश्रीवित्सयूपेषुभिः
मालामण्डलचामराङ्कुशयवैर्वज्रैर्वैस्तोरणैः ।
मत्स्यस्वस्तिकवेदिकाभिरमलैश्शङ्खातपत्रादिभिः
खड्गे पाणितले नरा नृपतयो यान्ति स्त्रियो राज्ञिताम् ॥

इति । खड्गगुणाश्चोक्ताः—

सुस्निग्धं कूर्मपृष्ठाभं कृष्णत्वं १ लाघवं दृढम् ।
सोकम्पन(परं)वरं(?) प्रोक्तमीदृशं खड्गमुत्तमम् ॥
करवीरोत्पलगजमदधृतकुङ्कुमकुमुदचन्दनसुगान्धि ।
शुभदमनिष्टं गोमूत्रमेदपङ्कामिषसगान्धि ॥
कूर्मवसासृक्क्षारोपमश्च भयदुःखदो भवति ।
गन्धो (दग्धो)(?) वैडूर्यकनकविद्युत् प्रभोजयारोग्यवृद्धिकरः ॥
गोजिह्वासंस्थानं नीलोत्पलवंशपत्रसदृशं च ।
करवीरपत्रशूलाग्रमण्डलाग्राणि शस्त्राणि ॥

खड्गे व्रणे सति सत्रणविषमाङ्गुलस्थाश्चेत् शुभफलप्रदः । एतदुक्तं
भवति । वराहमिहिरेण—

पुत्रमरणं धनाप्तिः धनहानिस्सम्पदश्च बन्धश्च
एकाद्यङ्गुलसंस्थैः व्रणैः फलं निर्दिशेत् क्रमशः ॥
सुतलाभकलहहस्तिलब्धयः पुत्रमरणधनलाभाः
क्रमशो विनाशवनितासिचित्तदुःखानि(?) ॥

षट्प्रभृतिलब्धहानिल्लिलब्धयो वधो वृद्धिमरणपरितोषाः(?) ।
 ज्ञेयाश्चतुर्दशादिषु धनहानिश्चैकविंशे स्यात् ॥
 वित्ताप्तिर्निर्याणं धनागमो मृत्युसम्पदो (न्व^१) सत्वम् ।
 ऐश्वर्यमृत्युराज्यानि च क्रमात् त्रिंशदिति यावत् ॥
 परतो न विशेषफलं विषमस्थास्तु पापशुभफलदाः ।
 कैश्चिदफलदाः प्रदिष्टाः त्रिंशत्परतोगमिति(?) यावत् ॥
 इति । एवमादिगुणयुक्तं खड्गं स्वीकुर्यात् । यथाऽऽहुः—
 बहुलक्षणसंयुक्तं स्वल्पदोषं तु यद्भवेत् ।
 तत्खड्गं धारयेत् प्राज्ञः तत्र दोषो न विद्यते ॥
 इति । समदोषगुणे सदोषे वा खड्गे यत्र मनोऽभिरतिः स्यात् खड्ग-
 पूजां कृत्वा तं धारयेत् । यथाऽऽहुः—
 बहुदोषयुतं खड्गं रम्यमुष्टिमनोहरम् ।
 बलिपूजादिकं कृत्वा तं खड्गं धारयेत् सुधीः ॥
 इति । पूजाक्रमश्च तच्छास्त्रोक्तो यथा—
 शुभलक्षणसंयुक्तं शुभग्रहयुतं तथा ।
 खड्गं सिद्धादिने पूज्यं सर्वदोषप्रशान्तये ॥
 इत्युपक्रम्योक्तं — गोमयेन चतुरश्रं समं स्थण्डिलमालिख्य तन्मध्ये साष्ट-
 (पत्रा)कर्णिकं पद्मं विलिख्य तत्र खड्गं निधाय क्रोधमुद्रां प्रदर्श्य
 “ओन्नमो भगवति खड्गरूपिणि मण्डले अवतर” अनेन मन्त्रेण
 कलां तत्राऽऽवाह्य ध्यायेत् ।
 नीलाम्बुरुहसङ्काशां नीलेन्दीवरलोचनाम् ।
 त्रिशूलाभयसंयुक्तां ध्यात्वा खड्गे प्रपूजयेत् ॥
 मूलमन्त्रेणावाहनमुद्रां प्रदर्श्य पाद्यादीनुपचारांश्च प्रकल्प्य खड्गं नम-
 स्कृत्य धारयेदिति । एवमनुकूलं सकललक्षणं वीरेण धृतमपि शस्त्रं

कणिताद्यौत्पत्तिकदोषयुक्तं चेत् ताज्यं अनिष्टत्वात् । तथा च वराह-
मिहिरः—

कणितं रमणायोक्तं पराजयायाप्रवर्तनं कोशात् ।
स्वयमुद्ग्रीर्णे युद्धं स्वालिते विजयो भवति खड्गे ॥

इति ।

इदमौशनसं शस्त्रपान(?)

रुधिरेण प्रियमिच्छतः ? प्रदीप्तम् ।

हविषा गुणवान् सुखाभिलिप्सोः

सलिलेनाक्षयमिच्छतश्च वित्तम् ॥

बडबोष्ट्रकरेण दुग्धपानं

यादे पापं न समीहतेऽर्थऽसिद्धिः ।

झषवित्तमृगाश्चवस्तदुग्धैः

करिहस्तच्छिदये सुताळगर्भैः ॥

आर्कं पयो(?) भु(सु)डुविषाणमषीसमेतं

पारावताखुशकृता च युतः प्रलेपः ।

शस्त्रस्य तैलमथितस्य ततोऽस्य पानं

पश्चाच्छित्तस्य न शिलासु भवेत् विघातः ॥

क्षारे कदलया मथितेन युक्ते

दिनोषिते पायितमायसं तत् ।

सम्यक् शितं चाश्मनि नैति भङ्गं

न चान्यलोहेष्वपि तस्य कौण्ठ्यम् ॥

एवं पानादिकमन्तरेणाकारणं शाणनिकषणघट्टनादि वर्जयेत् । यथाऽऽहुः—

नाकारणं विहृणुयात् न विघट्टयेच्च

पश्येत् न तत्र वदनं न वदेच्च मूल्यम् ।

देशं न चास्य कथयेत् प्रतिमानयेच्च

नैव स्पृशेन्नृपतिरप्रयतोऽसियाष्टिम् ॥

इति । प्रश्नलभ्यवशादपि शुभाशुभं वदेत् । यथा—

आरूढव्ययगः पापो द्रव्यनाशस्य सूचकः ।

लम्बास्तव्ययरन्ध्रारिगतो धराणिनन्दनः ॥

स्वयमेव स्वशस्त्रेण क्षतं? विध्वर्कयुक् स्फुटम् ।

लाम उच्चादिगो भूजः शत्रुं हत्वा स्वहस्ततः ॥

शस्त्रस्य लब्धिदौ श्रेष्ठबलौ तराणिभूमिजौ ।

षष्ठस्थौ कर्मगौ वाऽपि ब्रुवते शत्रुघातनम् ॥

अर्कस्य क्षेत्रदृष्टिभ्यां भयं स्यादौष्ण्यतो नृपात् ।

जलात् भीतिं चन्द्रमसो वस्त्रसिद्धिं च भार्गवे ॥

द्रव्यसिद्धिर्बुधे जीवे वसना(स)शनलब्धयः ।

मुषितत्वं शनेस्ताभ्यां बलादपहतं कुजे ॥

राहोर्दृष्टे च लग्ने च मलिनत्वं विनिर्दिशेत् ।

अपिच । प्रष्टुः शुभयुतिदृष्ट्युपेतराश्यारोहः शुभकृत् । प्रागादिदिक्-
तुष्टयारोहश्च । अन्यथा— अशुभकृत् । अङ्गस्पर्शेनापि राशिवशात्
फलमुक्तम्—

शीर्षं ललाटं वदनं च कण्ठं

बाहू च हृत्क्रोडकटीद्वयं च ।

ऊरुद्वयं जानुयुगं च जङ्घे

पादद्वयं मेषमुखाः क्रमेण ॥

मरणमथ धनागमं विनाशं

शुभफलमात्मजसम्भवः स्वहानिः ।

सुलभधनमथो बहुप्रचिन्ता

रिपुगणनाशविनाशमन्दिरासिः ॥

इति । अपिच—शीर्षाद्यङ्गेषु स्पर्शनात् खड्गस्यैकाङ्गुलिद्वयङ्गुलीषु मालिन्यं कण्डूयनात् छेदं ताडनात् भेदं वदेत् राशिवशात् यदि भवति । पापग्रहसमग्रदर्शने उपरिभागे च्छेदः । अर्धेनार्धे पादेन पादे । इति । पादेति पादः व्रणादिकं युग्माङ्गुले शुभं इतरत्राशुभमिति ब्रूयात् । प्रश्नारूढाङ्गे स्पर्शांशकेषु त्रिष्वपि चरेष्वायुधमस्यास्थिरं स्थिरेषु स्थिरं द्वन्द्वेषु कतिपयकालं स्थिरं स्यात् । अङ्गसन्धिषु दृढस्पर्शे शस्त्रसन्धानं यदङ्गस्पर्शे रक्तोद्गमः तत्समस्थानछिद्रं वदेत् । पादसन्धिकण्डूयने नवद्वारस्पर्शे सरन्ध्रं प्रश्नकालर्क्षेऽन्धे तच्छस्त्रं परशस्त्रं वारयितुं न क्षमम् काणे कथंचन वारयति । विलोचने शत्रुशस्त्रेण न वार्यते । जन्मर्क्षेऽपि तद्वत् । प्रष्टा नैकत्र तिष्ठति । प्रहृतमन्यकरात् सङ्गृह्य ददाति च शस्त्रव्यत्यासो भवति । मालिनजीर्णवासाश्चेत् वसनस्यापि दुर्लभत्वं स्यात् । व्यतिषज्य मिथो बद्धयोर्हस्तयोरुरसि स्थित्यां मध्ये शस्त्रसन्धानं (स्यात्) ब्रूयात् । ऊर्ध्वबाहुश्चेत् शस्त्रं दीर्घं । न्यग्बाहुश्चेत् शस्त्रं ह्रस्वमिति ।

अथ शस्त्रलब्धिर्देशकालदा वर्णादि मूल्यादीनि वाच्यानि ।

यथा—प्रष्टा नीचस्थश्चेत् उच्चः । उच्चस्थश्चेत् नीचो देश इति ।

ध्वजादिषु दिनं रात्रिः वर्षादौ तेन नाडिकाः ।

एकैकस्मिन् सप्त सार्धा ज्ञातव्याः लाभकालजाः ॥

अपिच—पूर्वाह्णेऽपराह्णमपराह्णे पूर्वाह्णमिति वदेत् । बलिनः सूर्यादेरुपचयाद्यवस्थाने तद्वर्णनृपादितस्तल्लभः । स्वप्रष्टृविपरीतवर्णवेषादियुतो वाच्यः । यथा—केशवति खलतिः खलतौ केशवान् कृष्णे श्वेतः श्वेते कृष्ण इत्यादि यावन्तः पुरुषास्तत्र सन्ति स्वाभिमुखस्थिताः तावत्सङ्ख्यैर्वर्णैः लब्धिः । शिशवः शेषसूचकाः । अतीतरात्रावादे-

ष्टुर्यादृशं स्वस्य भोजनं शस्त्रिणोऽपि तथा वाच्यम् । गजाश्वालोकनस-
ङ्ग्रहसंज्ञाहादिकर्माण्याह—

विश्वर्क्षे हिमगूदये गजशिरस्यावेशयेदङ्कुशं
विष्णौ पट्टनिबन्धमश्वगजयोरालोकनं संग्रहम् ।
आदध्यादसुभे जयध्वजधनुः खड्गादिकस्वीकृतिं
भाद्रर्क्षे धनसञ्चयं रिपुमहा सेनाप्रवेशं नृपः ॥ १६

विश्वर्क्षे चन्द्रोदये शिक्षार्थं गजस्य मस्तके प्रथममङ्कुशं न्यसेत् ।
श्रवणे चन्द्रोदये अश्वगजयोः प्राधान्यार्थमलङ्कारार्थं वा प(द)द्वयबन्धम् ।
एकांशस्थितयोः शशाङ्गकुजयोर्लग्ने स्ववर्गस्थयोः
युद्धं प्रारभते तदा यदि नृपो युद्धे जयं विन्दते ।

राशिद्वेक्षाणादावेकांशगतयोश्चन्द्रकुजयोरुदये युद्धं प्रारभेत जयो
भविष्यति । गुरुः—

यदैकमंशकं यातौ चन्द्रभौमौ स्ववर्गौ ।

तदा युद्धं प्रगृह्णीयात् संग्रामे विजयोः भवेत् ॥

युद्धारम्भे योगान्तराण्याह—

भौमस्थाहि कुजोदये विषघटीकालेऽपि वा
सायकं तोयं वाऽग्निमयं विचिन्त्य विसृजेत् भ्रा-
तृव्यसेनां प्रति । विष्टेरभ्युदये तदीयदिशि च स्थि-
त्वा विमुञ्चन् शरान् विद्राव्यारिवरूथिनीं जयमथ
प्राप्नोति पृथ्वीपतिः ॥ १७ ॥

कुजवारे कुजोदये अथ सर्वतारासु विषघटीकाले वा विजिगीषुः
शत्रुसेनां प्रति शरमग्निमयं ध्यात्वा तदभावे जलं वा अग्निमयं विचिन्त्य
विसृजेत् । अथवा तत्कालविष्टुदये तद्विष्टिदिशि स्थित्वा शत्रुसेनां प्रति
शरान् विमुञ्चेत् । शत्रुसेनां विद्राव्य स्वयं जयं लभते । अत्र गुरुः—

यस्यां दिशि यथालाभं गुळिकार्कजविष्टयः ।

स्थितास्ताद्विस्थितो मुञ्चेदभिवैरि शरान् नृपः ॥

तद्विया कण्टके वृक्षे वाऽपि शत्रुर्विनश्यति ।

दिने दिने विषाख्यासु घटीष्वरिबलं प्रति ॥

विकिरोद्विपुनाशाय बालुकाम्बुशरानपि ।

स्वनामपक्षिणोऽतिवृद्धत्वकाले युद्धं कार्यमित्यन्ये । ज्योतिषार्णवे—

पञ्चमांशेन पूर्वार्धे चरन्ति च खगाः क्रमात् ।

अपरार्धे तथा केचित् तदारभ्य तृतीयगः ॥

मरणेऽप्यतिवृद्धत्वे शत्रोर्नामाक्षराधिपे ।

तत्काले समरं कार्यमात्मनो जयमिच्छता ॥

तत्तदग्रे तिथौ तत्तन्मुहूर्तं याति सङ्करम् ।

कैश्चित्तर्ध्वभागेषु मुहूर्तद्वयमिष्यते ॥

त्रिषडन्त्यांशगे जीवे षट्सप्तदशमे भृगौ ।

बलहीने वासरान्ते समरं च समारभेत् ॥

बृहस्पत्यंशगे चन्द्रे जीववारेऽस्य चोदये ।

रिक्तायां तस्य भुक्तौ वा समरे विजयावहम् ॥

मन्दांशकगते चन्द्रे मन्दवारे मृदूदये ।

रिक्तायां मन्दभुक्तौ वा समरे विजयावहम् ॥

वारक्षयोगे तिथिवारयोगे

तिथ्यर्धराशिग्रहलाभयोगे ।

सर्वेषु योगेषु शुभेषु नित्यं

बाणप्रयोगे विजयो रणे स्यात् ॥

इति । रणारम्भयोगान्तराण्युक्तानि गुर्वादिभिः—

यदैकांशोदितौ चन्द्रदेवाचार्यौ विलग्नौ ।

वैद्य विवादं^१ कर्तव्यं नीरोगित्वं जयो भवेत् ॥

पुण्याद्यांशे द्वितीयांशे जीवचन्द्रौ विलग्नौ ।

पुण्ययोगे गुरोर्वारे समरे विजयावहम् ॥

एकांशाभ्युदितौ यदा स्वभवने स्वोच्चत्रिको-
णेऽथवा जीवाकौ कनकं तदा सुमतिना ग्राह्यं न
न देयं क्वचित् ॥ १८ ॥

गुरुसूर्यौ द्वौ द्वयोरेकतरस्य स्वर्क्षतुङ्गत्रिकोणराशिषु एकांशगता-
बुदये यदा स्तस्तदा सुधिया-कनकवृद्धिमिच्छता नरेण कनकं ग्राह्यं
स्यात् । तदा क्वचिदन्यस्मै स्वर्णं न देयं भवति । तदा स्वर्णं यदि
दद्यात् हानिः स्यादित्यर्थः । गुरुः—

यदैकांशकमायातौ स्वर्क्षे तुङ्गत्रिकोणयोः ।

जीवाकौ हाटकं ग्राह्यं न देयं यस्य कस्यचित् ॥

षट्पद्मध्रुवतीक्ष्णभेषु धनं कस्मैचिन्न दद्यादिति श्रीपतिः—

साधारणोऽध्रुवदारुणारुख्यै

धिष्ण्यैर्यदत्र द्राविणं प्रयुक्तम् ।

दत्तं च विन्यस्त(मध)मुत प्रणष्टं

न लभ्यते तन्नियतं कदाचित् ॥

इति । त्रिपुष्करयोगेऽपि न देयम् । तत्र व्ययितस्य त्रैगुण्यसम्भवात् ।
यथोक्तं रत्नकोशे—

. . . वारे भद्रायां . . . विषमपादमृक्षं चेत् ।

योगः त्रिपुष्करोऽयं त्रिगुणफलो द्विगुणकृच्च यमलक्षः ॥

इति । शुक्रादि वारांशे एकोदयदृष्टियोगे च न देयम् । यथोक्त मर्णवे—

भृग्वङ्गारकसूर्याणां अंशके दिवसोदये ।

लभ्ये द्रेक्काणभागेषु शुक्रेण च निरीक्षिते ॥

न दद्यात् सञ्चितं कोशं यदीच्छेद्वृद्धिमात्मनः ॥

इति ।

आरामोपगतौ सुचामरसितच्छत्रादिसल्लक्षण
स्वीकारे गजवाजिदर्शनविधौ तत्सङ्ग्रहारोहयोः ।
सद्वर्मायुधकार्मुकादिभरणे स्वर्णाद्यमन्त्राशने शंस-
न्त्येषु नवेषु भुक्तिसदृशं कालं सदा सर्वशः ॥ १९
इति । राज्ञो अन्यस्य वा विहाराद्यर्थमारामस्योपवनस्य उपगतावभिगमे
तथा चामरश्वेतच्छत्रादिराजचिह्नस्य स्वीकारे आदिशब्दादान्दोलिकाकर-
ङ्कादिस्वीकारे च अन्यस्य वा देशसिद्धस्य प्रभुसामन्तादिस्थानोचितस्य
लक्षणस्य स्वीकारे गजवाजिनां दर्शनविधौ तेषां सङ्गृहे तदारोहे च
सद्वर्मणः कवचस्य अयुधानामसिक्षुरिकादीनां कार्मुकस्य आदिशब्दाच्च
सद्वर्मगोधादीनां भरणे स्वर्णरजतका ।¹

देवप्रतिष्ठापनभूमिपाल राज्याभिषेकादिविधा-
नशंसी । सैकैः कृतो विंशतिभिः सुपदैः एका-
दशाध्याय इहैष पूर्णः ॥ २० ॥

इति विद्यामाधवीये एकादशाध्यायः.

¹अत्र कियानपि ग्रन्थो गलितः.

अथ द्वादशोयात्राध्यायः ।

अथ राज्ञोऽभिषेकादिगुणयुक्तस्य पृथिवीं जिगषिमाणस्य राज्योद्यमसाधककालकथनपूर्वकं तदङ्गविषयतत्तन्मुहूर्तं वक्तुं यात्राध्याय उपक्रम्यते—

अभीष्टदारे निजवर्णनाथे बलाधिके लग्नपतौ नरेन्द्रः । प्रयाणमत्याज्यगणे विदध्यान्मूर्धोदयो-
ध्वास्यचरेषु भेषु ॥ १ ॥

नरेन्द्रो—राजा स्वकीयवर्णाधिपे ग्रहे स्वतुङ्गादौ शुभगोचरश्चेत् ; तथा जन्मपतौ—स्वस्य जन्मराश्यधिपे जन्मलग्नाधिपे च स्थानादिबलसंपन्ने शुभगोचरस्थे च यात्रां विदध्यात् । पूर्वोक्तं त्याज्यगणं परित्यज्य (हृत्य) तदन्यगणे तत्रापि भेषु—राशिषु मूर्धोदयेषु ऊर्ध्वास्येषु वा । परेषु राशिषु त्याज्यगणेष्वपि यायात् । तथाच वराहमिहिरः—

जन्मोदयपौ बलान्वितौ उपचयकण्टकगौ शुभप्रदौ ।

क्रूरावपि नित्यमेव तौ सौम्यैरेव समावुदाहृतौ ॥

इति । अथवा यात्रा नृपादिना स्वेनोदिता वर्णाः—प्रश्नाक्षरवर्णा इत्यर्थः । तैर्नाथ्यते समर्थ्यते साध्यत इति निजवर्णनाथः—प्रश्नलग्नं । तस्मिन्नभीष्टफलगोचरे; तथा जन्मशब्देन जन्मकालग्रहैः दत्तमायुर्गृह्यते । तस्य दातृत्वेन पतिः जन्मपतिः दशापतिरिति यावत् । तस्मिन् बलाधिके यात्रां कुर्यात् । उक्तं च वराहमिहिरेण—

आरोहिशुभैष्यदशां पाणिपतौ बलयुते च भूपालः ।

यायात्तद्विपरीतं द्वैधीभावं तु मित्रदशा ॥

इति । आश्रयादिकाला अप्युक्ताः । तथा च तेनैवोक्तम्—

रिक्तोपहतदशायां जन्मोदयनाथशत्रुपाके च ।

स्वदशे(शकारसदृश)शतरे(?)कदशासंश्रयणीयो नरेन्द्रपतिः ॥

रिक्कारिष्टदशानिर्णयमद्विजिगीषुणा समुच्छेद्यः ।

अवरोहि दश पीड्यः कर्शयितव्यस्तथाऽऽरोही ।

न सदृशदशो(हि)भियोज्यो सन्धानं तेन भूपतेन्यर्घ्यम् ॥

अशुभैष्यासन्नदश शुभैष्यपाकेन सन्दध्यात् ।

श्रे(यान्)यांसि प(र्याये)र्ययेऽपि ग्रहैस्तथाऽऽरोहिशुभैष्यदशः(?) ॥

आसीत यदा शत्रो शुभैष्यपाकेऽपि दूरस्थः ।

इति । अत्र जन्मपतेर्बलाधिक्यं तत्फलदातृत्वं । एष उत्तमो यात्राकालः
अथाज्ञातजातकस्य प्रश्नोदयनिमित्ताद्यैर्जातकवत् सदसत्फलानि निरूप-
येत् । तथाच श्रीपतिः—

अज्ञातजन्मनोऽप्यन्यैर्यानं योज्यमिति स्मृतम् ।

प्रश्नोदयनिमित्ताद्यैर्विज्ञाते सदसत्फले ॥

इति । स्यादेतत्—जन्मकालः प्राणिनां पुराकृतस्वकर्मरूपेण दैवेन
प्रयुक्तः । प्रश्नफालस्तु नृणां स्वप्रयत्नरूपेण दैवेन साध्यः कथं फलसाम्य-
मिति, उच्यते—यथा प्राणिनां जन्मकालः स्वकर्मरूपेण दैवेन प्रयुज्यते
तथा प्रश्नकालोऽपि स्वकर्मानुसृतमनोरूपेण दैवेनैव साध्यते । उक्तं च—

दैवज्ञस्य हि दैवेन सदसत्फलवाञ्छतः ।

अवशो गोचरान्मर्त्यः सर्वान् समुपनीयते ॥

इति । अतः न कश्चिद्दोषः । प्रश्नविधिस्तु प्रागुक्तः । तत्फलं
शास्त्रान्तरोक्तमत्राभिधीयते । तत्र श्रीपतिः—

मनोरमा भूर्यदि पुच्छतः स्यात्

सुमङ्गलस्य श्रुतिदर्शने स्तः ।

यद्यादारात् पृच्छति च ग्रहज्ञं

तदादिशेदस्ति जयस्तवेति ॥

अङ्गस्पर्शे विशेषफलमुक्तं भृगुणा—

चिबुकस्तननासाग्रस्पर्शं वैरकरं परम् ।

पलायनं वदत्येव पादस्पर्शेऽपि भीषणम् ॥

शिरोभिर्धावनं यातुः सिन्ति? प्रश्ने विनिन्दितम् ।

गुह्यपादकरस्पर्शो विदधाति पराजयम् ॥

ऊरुमध्यस्य संस्पर्शः कार्यस्थितिकरः परः ।

स्पर्शे दक्षिणहस्तस्य क्लेशपूर्वं फलं भवेत् ॥

वामाङ्घ्रिस्पर्शे निगलं दक्षिणे गमनं भवेत् ।

उदरस्पर्शः शुभः सिद्धये जानुस्पर्शो मृतिप्रदः ।

आसनं शयनं प्रश्ने त्याज्यमुत्थानमुत्तमम् ॥

अङ्गुलीनां गतिः पार्श्वे भेदकृद्बलवद्गतिः ।

वैरागतिः प्रधानं स्यात् गमनं सर्वसम्पदः ॥

मूर्धोदयं शुभसुहृद्युतिवीक्षितं च

लग्नं शुभाश्च बलिनः शुभवर्गलग्नम् ।

सिद्धिप्रदं भवति नेष्टमतोऽन्यथा यत्

जन्मप्रयाणफलयुक्तिरतोऽन्यदूह्यम् ॥

नारदः—

जन्मोदये जन्मभे वा तयोरीशस्थभेऽपि वा ।

ताभ्यां त्रयायारिकेन्द्रेषु यातुः शत्रुक्षयो भवेत् ॥

वराहमिहिरः—

उदयमुदयपं वा जन्मभं जन्मपं वा

तदुपचयगृहं वा वीक्ष्य लग्ने यियासोः ।

विनिहतमरिपक्षं विद्धि शत्रोरिदं वा
यदि हिबुकसमेतं पृच्छतः सुस्थितं वा ॥

अन्यत्र—

यदि(?) जन्मराशिहिबुके वाऽस्तगृहेऽरिपापदृष्टौ ।
विललावधिकौ तयोर्यदा तौ यदि यायादसंशयं(?) स यायात् ॥
तयोरष्टमे षष्ठमे वा विलम्बे
तदष्टारिभेशौ यदा वा तनुस्थौ ।
यदा तत्पती दुर्बलौ तौ तथा हि
प्रयाणं विषग्रासतुल्यं करोति ॥
करोति राशिर्गमनं शुभं च परो विलम्बे शुभदृष्टियुक्तः ।
स्थिरोदये स्याद्गमनं न जातु शुभं शुभैर्दृष्टियुतेऽत्र वाच्यम् ॥
द्विभूर्तिराशावुदयं प्रपन्ने क्रूरग्रहैर्युक्तनिरीक्षिते च ।
प्रयाति यद्यप्यबुधस्तदानीं निवर्तते शत्रुजनाभिभूतः ॥
केन्द्रत्रिकोणेषु शुभस्थितेषु पापेषु केन्द्राष्टमवर्जितेषु ।
सर्वार्थसिद्धिं प्रवदेन्नराणां विपर्ययत्वे तु विपर्ययस्स्यात् ॥
जीवज्ञार्कि(सि)सुतापरैः सुतसुहृद्वाश्चित्कलम्नायगैः
सिद्धार्थोऽरिगणा(न्विजित्य)न्निहत्य नचिरात् प्राप्तस्समेत्यालयम् ।
लगे वा कुजमन्दयोः सुतगते जीवे रवौ कर्मगे
लाभे कर्मणि वा सितेन्दुतनयौ प्रश्ने जयो निश्चितः ॥

बादरायणः—

लम्बे यमारौ खे सूर्यः शुक्रो मूर्तौ सुते गुरु ।
लाभे कर्मणि वा सौम्ये योगेऽस्मिन् निश्चितो जयः ॥
गुर्वर्कशनिभिः सिद्धिर्लग्नारिदशमस्थितैः ।
तद्वल्लग्नारिबन्धुस्थैर्जीवशुक्रदिवाकरैः ॥

सुखे वाऽपि गुरोर्वारे कर्मण्यासितशुक्रयो ।
 चतुर्थे ज्ञेऽष्टमे चन्द्रे जयस्थे वा सितेज्ययो ॥
 कर्मण्याये रवावाये तृतीयस्थेऽर्कनन्दने ।
 षष्ठे चन्द्रे विलम्बस्थैः शेषैः प्रष्टुर्जयो ध्रुवम् ॥

षट्पञ्चाशिकायां—

झषालिकुम्भकर्कटा रसातले यदि स्थिताः ।
 रिपोः पराजयस्तदा चतुष्पदैः पलायनम् ॥

अशुभयोगाश्च वराहमिहिरेणोक्ता —

युद्धे भङ्गो यमेन्द्रारैः नवमात्मजलग्नैः ।
 शशाङ्कयमयोर्लम्बे मृत्युर्भूपुत्रदृष्टयो ॥
 सवक्रे निधने मन्दे मृत्युर्लम्बे दिवाकरे ।
 सचन्द्रे व्यायमृत्युस्थे ससूर्ये वा वदेद्बुधः ॥
 शुक्रज्ञशशितद्भूने प्रष्टुर्नाशोऽपि गच्छतः ।
 क्षुन्मारशत्रुवृद्धिश्च लम्बे माहेयशुक्रयोः ॥
 चन्द्रावनीजयोर्मूर्तौ षष्ठे शशिजशुक्रयोः ।
 निधनस्थे सहस्रांशौ विज्ञेयो मन्त्रिणो वधः ॥
 दूननैधनयोश्चन्द्रलम्बे याते दिवाकरे ।
 विपर्यये वा तस्यैव त्रासभङ्गवधागमः ॥
 द्वित्रिकेन्द्रस्थितैः पौषैः सौम्यैः केन्द्राष्टवर्जितैः ।
 अष्टमस्थे निशानाथे प्रष्टुर्वन्धवधात्ययाः ॥
 कुजचन्द्रमसौ दूने स्वभेदोऽर्कबुधोदये ।
 तद्वन्मन्दारयोर्युद्धे भङ्गस्सौम्यार्कयोस्तथा ॥
 सर्वेऽ(च)पि नवमे राजन् भ्रान्ति मन्त्रिपुरोहितान् ।
 योगेऽस्मिन्नुदये चन्द्रे सुतस्थपतिदेशिकान् ॥

यात्रायां अशुभायोगाः

अर्कार्किसुतयोर्लभे दृष्टयो क्षितिसूनुना ।
चन्द्रेऽस्ते विबलैस्सौम्यै प्रष्टुस्सन्पतेर्वधः ॥
निधने वक्रयमयोः चन्द्रेऽस्ते लग्नगे रवौ ।
ज्ञे तृतीयेऽपि वाऽऽक्रम्य समन्त्री हन्यते नृपः ॥
निधनहिबुकहोरासप्तमर्क्षेषु पापा

न शुभफलकराः स्युः पृच्छतां मानवानाम् ।

दशमभवनयुक्तेष्वेषु सौम्या प्रशस्ताः

सदसदिदमशेषं यानकाले विचिन्त्यम् ॥

इति । प्रश्नकाले ये शुभाशुभयोगा उक्ताः ते यात्राकालेऽपि भवन्ती-
त्यर्थः । भट्टपादेन यात्राप्रतिबन्धकृद्योग उक्तः—

अस्तंगते च लग्ने चन्द्रार्किसितेन्दुपुत्रसन्दृष्टे ।

यात्रा नास्तीति वदेन्नियमात्तैरेव संयुक्ते ॥

इति । अथ स्वप्रसङ्गप्राप्तायां शब्वागमनपृच्छायां षट्श्चाशिकाद्युक्त-
मभिधीयते—

स्थिरे शशी चरोदये न चागमो रिपोर्यदा

तदाऽऽगमं रिपोर्वदेत् विपर्यये विपर्ययम् ।

स्थिरे तु लग्नमागते द्विदेहगोऽथ चन्द्रमाः

निवर्तते रिपुस्तदा सुदूरमागतोऽपि सन् ॥

चरे शशी लग्नगते द्विदेहे

पथोऽर्धमागत्य निवर्तते रिपुः ।

विपर्यये चागमनं द्विधा स्या-

त्पराजयस्स्यादशुभेक्षिते तु ॥

प्रष्टुः पराजय इत्यर्थः ।

अर्कार्किज्ञसितानामेकोऽपि चरोदये यदा भवति ।

प्रवदेत्तदाशु गमनं वक्रगतैर्नेति वक्तव्यम् ॥
 सुतशत्रुगतैः पापैः शत्रुर्मार्गान्निवर्तते ।
 चतुर्थगैरपि प्राप्तः शत्रुर्मार्गान्निवर्तते ॥
 स्थिरोदये जीवशनैश्चरेक्षिते
 गमागमौ नेति वदेत्तु पृच्छतः ।
 त्रिपञ्चषट्स्था रिपुसङ्गमाय
 पापाश्चतुर्थे विनिवर्तनाय ॥
 नागच्छति परचक्रं यदाऽर्कचन्द्रौ चतुर्थभवनस्थौ ।
 बुधगुरुशुक्रा हिबुके यदा तदा शीघ्रमायाति ॥
 अजधन्विसिंहवृषभा यद्युदयस्था भवन्ति हिबुके वा ।
 शत्रोरपसरणं स्यात् ग्रहयुक्ता वा वियुक्ता वा ॥
 द्विर्द्वादशगैश्चन्द्रालम्बाद्वा चन्द्रपुत्रगुरुभृगुजैः ।
 गमनं वाऽप्यागमनं नास्तीति विनिर्दिशेत् प्रष्टुः ॥
 जामित्रे त्वथवा षष्ठे ग्रहाः केन्द्रेऽथ वाक्पतिः ।
 प्रोषितागमनं विद्यात् त्रिकोणे ज्ञे सितेऽपि वा ॥

अन्ये त्वाहुः—

निर्यातस्य निवृत्तिः स्स्यालम्बाधिपमयूखगैः ।
 समानदिवसैः पश्चात् पुनर्निर्गमनं भवेत् ॥
 स्थिरराशौ यद्युदये शनिर्गुरुर्वा समागमो न स्यात् ।
 उदये रविर्गुरुर्वा चर रिपोरागमो भवति ॥

विपक्षादीनामागमनदिनप्रमाणं च तेनैवोक्तं—

उदयर्क्षाच्चन्द्रर्क्षं भवति च यावद्दिनानि तावाद्भिः ।
 आगमनं स्याच्छत्रोर्यदि मध्ये न ग्रहः कश्चित् ॥

तन्मध्ये ग्रहे स्थिते सति तत्संख्यैर्दिनैरागमनं वाच्यम् । यातुर्निवृत्ति-
कालप्रमाणं च तत्रैवोक्तम्—

ग्रहस्सर्वोत्तमबलो लग्नाद्यस्मिन् गृहे स्थितः ।
मासैस्तत्तुल्यसंख्याकैर्निवृत्तिं यातुरादिशेत् ॥
चरांशस्थे ग्रहे तस्मिन् कालमेतद्विनिर्दिशेत् ।
द्विगुणं स्थिरभागस्थे त्रिगुणं द्वायात्मकं गते ॥
षष्ठुर्विलम्बाज्जामित्रभवनाधिपतिर्यदा ।
करोति वक्रमावृत्तेः कालं तं ब्रुवते परे ॥

कृष्णः---

गत(ग्रह)भवना(त्मा)वि(')यधिपादिशान्तराले कियन्ति ऋक्षाणि ।
तावद्भिरेव दिवसैः पुनरागमनं प्रयातस्य ॥
तानि च द्रेक्षाणसङ्ख्यया गुणयेदित्युपदिशन्ति ।
ग्रहो विलम्बाद्यतमे गृहे तु तेनाहता द्वादश राशयस्तु ।
तावद्दिनान्यागमनस्य विन्धान्निवर्तनं वक्रगतैर्ग्रहेन्द्रैः ॥
इति । प्रोषितागमनप्रश्नेष्वयं विधिः । तत्र कृष्णः—
मेषूरणोदयौ द्वौ सौम्यग्रहवीक्षितौ यदि स्याताम् ।
भवति तदाऽभ्यागमनं प्रोषितनृणां कृतार्थानाम् ॥
षाष्ठत्रिंशेणयोर्वा जामित्रे वा निरीक्षिते क्रूरे ।
षष्ठोदये विलम्बे भङ्गोऽस्तीत्यादिशेन्मतिमान् ॥

षट्पञ्चाशिकायाम्—

पृष्ठोदये पापनिरीक्षिते वा
पापास्त्रिकोणे रिपुकेन्द्रगे वा ।
सौम्यैरदृष्टा वधबन्धदास्त्युः
नष्टा विनष्टा मुषितास्तु वा स्युः ॥

अष्टमस्थे निशानाथे कण्टकैः पापवर्जितैः ।
 प्रवासी सुखमायाति ससौम्यैः लाभसंयुतैः ॥
 द्वितीये वा तृतीये वा गुरुशुक्रौ यदा स्थितौ ।
 आश्वेवागच्छति चमूः प्रवासी वा न संशयः ॥
 दुश्चित्कधनसमेतौ बुधभृगुपुत्रौ यथोप्सितावाप्तिः ।
 बन्धूपगतावेतौ गृहप्रवेशं हि तत्क्षणात्कुरुतः ॥
 हिबुकं ग्रहे प्रविष्टे गृहप्रविष्टं प्रवासिनं विन्धात् ।
 हिबुकास्तमयान्तरगैर्ग्रहैस्तु पथि वर्तते पुरुषः ॥
 इति । अत्र ग्रहारूढराशिर्यादृशस्तादृशेन यानेनाऽऽयातीत्याहुः । तथा
 च कृष्णः—

द्विपदचतुष्पदविहगास्थलाम्बुविचराश्च राशयः कथिताः ।
 तेषां यादृक्ष(१)णगृहे गतस्तादृशेनाऽऽयाति ॥
 इति । अस्मिन् प्राप्तानां रिपूणां पौराणां च कथमिति प्रश्ने तत्फलमुक्तं
 षट्पञ्चाशिकायां—

दशमोदयसप्तमगाः सौम्या नगराधिपस्य विजयकराः ।
 आरार्किज्ञगरुसिताः प्रमङ्गदा विजयदा नवमे ॥
 पौरास्तृतीयभवनाद्धर्माद्वा यायिनश्शुभैश्शुभदाः ।
 व्ययदशमाये पापाः पुरस्य नेष्टाः शुभा यातुः ॥
 धर्माद्यैश्चक्रदलैः यायिजना नागरास्तृतीयादौ ।
 येषां भागे सौस्यास्तेषां विजयोऽपरे भग्नाः ॥
 नृराशिसंस्था ह्युदये शुभाः स्युः
 व्ययायसंस्थाश्च यदा भवन्ति ।
 तदा सुसिद्धिं प्रवदेन्नराणाम्
 पापैर्द्विदेहोपगतैर्विरोधम् ॥

रत्नकोशे—

नरभवने शुभयुक्ते सन्धानं भूमिपालानाम् ।
दशमोपगतैस्सौम्यैर्वित्तं दत्त्वा परो याति ॥
विषयी ददाति वित्तं यदि सप्तमराशिगो भवेत् क्रूरः ।
क्रूरे लग्नोपगते न कृतो विश्रियते सन्धिः ॥
क्रूर लग्नोपगते बुधे तृतीये चतुर्थगे सूर्ये ।
युद्धं भवति नृपाणां विषयी च विनश्यते तत्र ॥

केशवीये—

लग्ने)भातृतीये चाक्षर्यारौ छत्रे शत्रुर्न (जा) जीयते ।
गुरुणा स च मित्रं स्यादिति प्राह स्म केशवः ॥

कार्यसिद्धिलाभप्रश्ने षट्पञ्चाशिकायां —

केन्द्रोपगताःसौम्याः सौम्यैर्दृष्टाः नृलग्नाः प्रीतिम् ।
कुर्वन्ति पापदृष्टाः पापास्तेष्वेव विपरीतम् ॥

त्रिपञ्चलाभास्तमयेषु सौम्याः

लाभप्रदा नेष्टफलाश्च पापाः ।

तुला (थ) च कन्या मितुनं घटश्च

नृराशयस्तेषु शुभं वदन्ति ॥

स्थानप्रदा दशमसप्तमगाश्च सौम्याः

मानार्थदाश्च (स्व) सुतलग्ना भवन्ति ।

पापव्ययायसाहिता न शुभप्रदाः स्युः

लग्ने शशी न शुभदो दशमे शुभश्च ॥

इन्दुर्द्विसप्तदशमायरिपुत्रिसंस्थः

पश्येद्गुरुं शुभफलं प्रमदाकृतं स्यात् ।

लग्नत्रिधर्मसुतैर्नधनगास्तु पापाः

कार्यार्थनाशभयदाः शुभदाःशुभाः स्युः ॥

केशवः—

लग्नात्तृतीये चाये च ग्रहैर्ब्रूयाच्छुभाशुभम् ।

पञ्चमे नवमे छत्रे लाभस्स्यात् प्रोषितागमः ॥

आरूढादुदयं यावल्लग्नं तावच्छत्रमिति । षट्पञ्चाशिकायां—

योयो भावः स्वामिदृष्टो युतो वा

सौम्यैर्वा स्यात्तस्यतस्याभिवृद्धिः ।

पापैरेवं तस्य भावस्य हानिः

निर्देष्टव्या पृच्छतां जन्मतो वा ॥

कृष्णः—

यस्मिन्यास्मिन् भावे द्विर्द्वादशसप्तमस्थिताः सर्वे ।

सौम्याः तस्मिंस्तस्मिन्(?) वृद्धिस्थितैस्तद्वत् ॥

द्विपदे चतुष्पदे वा भवने लग्नोपगो ग्रहः पापः ।

तिष्ठति तन्नाशकरं ज्ञेयं सौम्यैश्च वृद्धिकरम् ॥

लग्नाधिपतिः केन्द्रे तन्मित्रं वा व्ययाष्टकेन्द्रेभ्यः ।

अन्यत्र गताः पापाः तत्रापि शुभं वदेत् प्रश्ने ॥

इति । एवं विचारिते प्रश्ने शुभे लग्ने “प्रयाणमत्याज्यगणे विदध्यात्”

इति सामान्येनोक्ते विशेषेणात्याज्यर्क्षे सर्वदा दिशः प्रयायादिति प्राप्ते विशेषमाह—

अग्रयादीनि हि सप्तसप्त निवसन्त्यृक्षाणि दिक्षु
क्रमात् तत्तद्विड्निहितैः प्रयातु ककुभं तांतां शुभै-
स्तारकैः । माहेन्द्र्यनरयोर्माम्बुपदिशोस्तद्व्यत्ययो
वा शुभो वायव्यानलकोणगोऽस्ति परिधो याता
न तं लङ्घयेत् ॥ २ ॥

कृत्तिकादीनि सप्तसप्तर्क्षाणि साभिजिन्ति प्रागादिदिक्षु क्रमान्नि-
वसन्ति । तेषु तत्तद्दिगतैस्तैस्तैः शुभैस्तारकैरत्याज्यनक्षत्रैस्तांतां दिशं
प्रयातु । माहेन्द्रचुत्तरयोः—प्रागुदीच्योः यमाम्बुपादिशोः दक्षिणाप्रतीच्योश्च
द्वयोः दिशोस्तद्व्यत्यस्तद्दिङ् नक्षत्रवैपरीत्यं वा शस्यते । तद्यथा—प्राचीदि-
गतैर्भैरुदीचीं उदीचीं गतैः प्राची दक्षिणां गतैः प्रतीचीं प्रतीची गतै-
र्दक्षिणां दिशं यायादित्यर्थः । एतदुक्तं भवति—कृत्तिकादीनि सप्तर्क्षाणि
प्राच्यां स्थितानि मघादीनि सप्त याम्यायां । अनूराधादीनि साभि-
जिन्ति सप्त वारुण्यां । धनिष्ठादीनि सप्त उदीच्यां भवन्ति । तत्र
प्रागतैर्नक्षत्रैः पूर्वा दिशमुत्तरां वा गच्छेत् । उदगतैरुत्तरां प्राचीं वा
गच्छेत् । दक्षिणागतैर्दक्षिणां प्रतीची वा गच्छेत् । प्रत्यगतैः प्रतीची
दक्षिणां वा गच्छेत् । प्रागुदगतैः याम्यवारुण्यौ न यायात् । दक्षि-
णावारुणीस्थैः प्रागुत्तरे दिशौ न यायात् । यतस्तन्मध्ये वायव्यानलको-
णगवायव्याग्नेयी संस्पृश्य तिर्यक्स्थितः परिधो नाम दण्डोऽस्ति याता तं
दण्डं न लङ्घयेत् । लङ्घयित्वा न व्रजेदित्यर्थः । उक्तं च वराहमि-
हिरेण—

दिशि च हुतभुगाद्याः सप्त ताराः प्रवृत्ताः

पवनदहनदिक्स्थं तिर्यगुद्यम्य दण्डम् ।

सुरपतिरपि कृच्छ्रं याति तं लङ्घयित्वा

ननु भवति विरोधो दिक्षु दण्डैकगासु ॥

इति । यवनेश्वरोऽपि—

आग्नेयपूर्वाणि च सप्तसप्त

क्रमेण पूर्वादिषु भानि दिक्षु ।

द्वारेषु मुख्यान्यनुकल्पितानि

तेषु प्रयाणेषु दिशां जयस्स्यात् ॥

प्राचीमुदगद्वारिभिरभ्युपेयात् प्राग्द्वारिभिश्चोडुभिरप्युदीचीम् ।
 तथैव याम्यामपराश्रितैश्च याम्याश्रितैरप्यपरां प्रयायात् ॥
 अथाऽन्यथाऽयं परिधापभेदं कुर्वन् जयैषां नृपतिर्न यायात् ।
 स भूरिनागाश्चबलोत्कटोऽपि सङ्ग्रामदुर्गाम्भासि नाशमेति ॥

अल्पयात्रायां कार्यातुराणां स्त्रीणां गवां च परिधलङ्घनदोषो नेत्याह—

**आत्ययिकं यत्कार्यं प्रयाणमपि यच्च योजना-
 दर्वाक् । परिधातिक्रमदोषो न तत्र न च गोस्त्रि-
 योर्जातु ॥ ३ ॥**

कार्यं—स्वोदयार्थमनिष्टप्रतीकारार्थं वा यदात्ययिकमवश्यकार्यं तत्र
 यातुः कार्यातुरतया गच्छतः परिधातिक्रमदोषः नास्ति । यत् प्रयाणेऽपि
 योजनादर्वाक् स्वपरग्रामादेकदेश एव स्यात् तत्रापि च परिधातिक्रम-
 दोषो नास्ति । तथाच गुरुः—

एकद्वारिगतैस्तारैः ग्रामात् ग्रामान्तरं विना ।

यात्रा चैवं विशेषेण योजनाद्देशमन्तरा ॥

दण्डलङ्घनदोषोऽपि गवां स्त्रीणां विशेषतः ।

इति । चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः । तेन दिक्शूलानि विहाय लग्नानु-
 कूलतया गच्छेदित्युक्तम् । तथा च श्रीपतिः—

प्राग्योजनेष्वात्ययिकेषु भूपतिः

विलङ्घ्य रेखामपि पारिधी व्रजेत् ।

विहाय दिक्शूलसमाह्वयामुडुं

यदि स्वदिग्लग्नविशेषमाप्यते ॥

इति । दिग्लग्नानि—‘प्रागादीशाः क्रियवृषनृयुक्कर्कटाः सत्रिकोणाः’

इति तेषां ग्रहसंस्थित्या यातुरानुकूल्यं च । गौश्च स्त्री च

गोस्त्रियौ । जातावेकवचनं । गोस्त्रीणामित्यर्थः जातु—कदाचिदपि । तासां स्वभर्तृभिर्नीयमानानां अस्वातन्त्र्यात्परिधलङ्घनदोषो नास्तीत्यर्थः । ये तु स्वातन्त्र्येण गच्छन्ति तेषामेवेत्यर्थः । उक्तंच सर्वसिद्धौ—

परिधो नाम दण्डोऽस्ति वायव्योऽग्नयकोणगः ।

तदतिक्रमणं कष्टं नराणां न तु गोस्त्रियोः ॥

इति । अथ दिक्शूलानि दिक्शुभानि सार्वदिग्द्वारकाणि भान्याह—

दिक्शूलानि विपत्प्रदानि बलभिद्भद्राजतारा-
भगाः पुष्यस्तीक्ष्णकरोऽञ्जुतोऽश्वयुगपि श्रेष्ठानि
दिक्षु क्रमात् । सर्वास्वेव रवीन्दुमित्रमुराजिद्वस्वन्त्य-
मित्रान् शुभान् जीवो वक्ति वरं वराहमिहिरः पुष्या-
र्कमित्राश्विनः ॥ ४ ॥

बलभिदिन्द्रः तस्य तारा—ज्येष्ठा । भद्रतारा—पूर्वाप्रोष्ठपदा । अज-
तारा रोहिणी । भग उत्तराफल्गुनी एतानि चत्वारि नक्षत्राणि प्राच्या-
दिदिक्षु शूलानि । यातृणां विपत्प्रदानि शत्रुभिः पराभवादिविपत्कारीणि
भवन्ति । तस्मादात्ययिके कार्येऽपि प्रागादिदिग्गमने भान्येतानि वर्जयेत्
उक्तं च—

ज्येष्ठा प्राक् प्रोष्ठपदा रोहिण्यथ चोत्तरा च फल्गुन्यः ।

शूलानि प्राच्यादिषु भेषु गतोऽभ्येति यदि चित्रम् ॥

शूलर्क्षगमनफलं च दर्शितं वराहमिहिरेण—

ज्येष्ठायां पुरुहूतदिङ्मुखगतः प्राप्तो बलिर्बन्धनम्

याम्यामाजपदे मुरश्च गतवान् यातो मुरारेर्वशम् ।

रोहिण्यां नमुचिः प्रतीच्याभिगतः पूर्तिं गतो वज्रिणा

सौम्यामुत्तरफल्गुनीषु गतवान् मृत्योर्वशं शम्बरः ॥

इति । आत्ययिकेषु दिक्शूलभानि वर्जयेदेव । यस्माद्यवनेश्वरः—

ऋक्षेष्वथैतेषु यथोक्तकाष्ठां

न भूतिकामो मनसाऽपि यायात ।

मोहाद्य उल्लङ्घ्य यदि प्रयायात्

सराष्ट्रमृत्यो न चिराद्विनश्येत् ॥

पुण्यहस्तश्रवणाश्विन्यश्वतस्तारा, प्राच्यादिदिक्षु गमने श्रेष्ठाः स्युः ।

तथा च गुरुः—

उत्तमं पुण्यमं प्राच्यां मध्यमं सोमदेवतं ।

उत्तमं मध्यमं याम्यां हस्तत्वाष्ट्रे क्रमादुभे ॥

चशब्दोऽत्रानुक्तसमुच्चयार्थः । तेन मृगशिरश्चित्रानुराधाधनिष्ठाश्वतस्ताराः प्राच्यादिदिक्षु मध्या इत्युक्तं । तथा च गुरुः—

उत्तमं मध्यमं (मध्यमे यामे) याने वारुण्या विष्णुमित्रभे ।

वैष्णवं मध्यमं चोदक् उत्तमे वासवाश्विभे ॥

इति । केचिद्वनिष्ठामुदीच्यामुत्तमामाहुः । तत्र रेवती मध्यमामाहुः ।

तथा च वराहमिहिरः—

पुण्योऽथ हस्तः श्रवणं धनिष्ठा

प्राच्यादिमुख्यान्युदगाश्वयुक्च ।

नैशाकरं त्वाष्ट्रमग्वानुराधाः

पौष्णं च मध्यानि तथाऽऽहुरेके ॥

इति । रवीन्दुमित्रमुरजिद्वस्वन्त्यपुण्याश्विभमिति समाहारे द्वन्द्वैकवद्भावः । हस्तमृगशिरोऽनूराधाश्रवणश्रविष्ठारेवतीपुण्याश्विनीनक्षत्राष्टकं ज्योतिषार्णवे विशेष उक्तः—

रोहिण्यादित्यातिष्येन्दुभेषु प्राच्यां शुभावहम् ।

उत्तरास्वातिहस्तेषु याम्याशायां शुभावहाः ॥

प्रतीच्यां मित्रमूलख्यविश्वभेषु च सौख्यदाः ।

कौबेर्या दिश्यहिर्बुध्न्यं श्रविष्ठापौष्णवारुणम् ॥

इति । ज्योतिषार्णवेऽपि—

ऐन्द्रोपेन्द्रश्रविष्ठासु न गच्छेदिन्द्रदिक्प्रति ।

ब्राह्मेन्द्रभाजपातपैत्रदस्त्रे याम्यां दिशं तथा ॥

ब्रह्मादित्यगुरुष्वेव प्रतीच्यां न व्रजेद्बुधः ।

स्वात्युत्तरेषु हस्ते च उदीच्यां न व्रजेद्दिशि ॥

इति । सर्वास्वेव दिक्षु वरं श्रेष्ठं जीवो-बृहस्पतिर्वक्ति—वदति ।

हस्तादीनीमान्यष्टौ नक्षत्राणि सार्वद्वारिकाणीति गुरुणोक्तमित्यर्थः । तथा च तद्वाक्यं—

पुष्याश्विहस्तमैत्राणि पौष्णवैष्णवसौम्यभम् ।

देवेन्द्रदिक्षु सर्वासु यात्रायां शोभनान्यमी ॥

एतन्नक्षत्राणां सार्वद्वारिकत्वमवश्यप्रयाणेष्टुक्तं । ज्योतिषार्णवे यथोक्तं —

सर्वशास्त्रप्रशस्तास्स्युर्यात्रा चावश्यिका यदि ।

इति । वराहमिहिरः—पुष्यहस्तानुराधाश्विनीनक्षत्राणि चत्वारि सार्वद्वारिकाणि स्युः । उक्तं च—

सार्वद्वारिकसंज्ञं नक्षत्रचतुष्टयं विनिर्दिष्टम् ।

पुष्यो हस्ताश्विन्यौ नक्षत्रं मित्रदैवतं चेति ॥

ननु कथं श्रवणाश्विनीपुष्यहस्तानां सार्वद्वारिकत्वमुक्तं गर्गादिभिस्तेषां प्राच्यादिदिक्षु शूलत्वेन वर्ज्याभिधानात् । उक्तं च—

प्राक्शूलं श्रवणज्येष्ठे भाद्रक्षाश्विनिदक्षिणे ।

पश्चाद्रोहिणिपुष्यं च हस्तफलगुनि चोत्तरे ॥

इति । अपि च—धनिष्ठोत्तरार्धरेवत्योश्च याम्यादिगमने वर्ज्यत्वाभिधानात् ।

तथा च नारदः—

वासवाद्यादिपञ्चर्क्षे(१) सङ्ग्रहं तृणकाष्ठयोः ।

याम्यदिगमनं गेहे चोपनं च विवर्जयेत् ॥

इति । वसिष्ठादिभिर्विरचितेषु ज्योतिःशास्त्रेषु तेषां सार्वद्वारिकत्वश्रवणादिति । तद्गर्गनारदादिप्रोक्तेषु प्राक्तनशास्त्रेषु तेषां कासुचीदिक्षु वर्ज्यत्वश्रवणात् प्राच्यादिदिक्शूलत्वं नाभिहितम् । बहुभिः सार्वद्वारिकतया मतत्वात् तन्मतमेवाश्रित्य तेषां सार्वद्वारिकत्वमुक्तमित्याविरोधः । अथ स्वेष्टे श्रेष्ठे नक्षत्रे वाऽसति प्रयाणस्यापरिहार्यत्वेन बहुगुणलग्नयोगत्वेन अनुक्तेष्वपि तेषु त्याज्यर्क्षवर्जितेषु यात्राविधयेति श्रीपतिना त्याज्यक्षार्णि दर्शितानि—

चित्राविशाखानलयाभ्यसार्पवायव्यपित्र्येश्वरदेवतानि ।

यात्रास्वनिन्धान्यपराणि भानि स्मृतानि नेष्टानि न निन्दितानि ॥

अत्रिणा चोक्तं—

ज्येष्ठार्द्रापूर्वयाम्याहीन्यानेऽप्यात्ययिके त्यजेत् ।

यात्रायोगे खलु गतौ सर्वताराः शुभावहाः ॥

कार्यातिपत्तौ सत्यामात्ययिके याने यात्रायोगवशात् गच्छतामप्यवश्य-
त्याज्यनक्षत्रांशा वराहमिहिरेण दर्शिताः—

विवर्जयेत्त्वाष्ट्रमोरगाणां

अर्धं द्वितीयं गमने जयेत्सुः ।

पूर्वार्धमाग्नेयमघादिभानां

स्वार्तिं मतेनोशनसः समस्तम् ॥

इति । नृयानात्मककालवशान्नक्षत्राणां ताज्य (त्व)मुक्तं श्रीपतिना । तथा च—

पूर्वाह्णे ध्रुवमित्रभेन गमनं क्रूरैर्न मध्यान्दिने

श्रेष्ठं नाऽपरवासरे च लघुभिर्मैत्रैर्न रात्रेर्मुखे ।

उग्राख्यैर्न च मध्यरात्रसमये नेष्टा निशान्ते चरैः ।

सर्वेष्वेव करैन्दवेज्य हरिभिः कालेषु यात्रा शुभा ॥ .

इति । अथ यस्मिन् यस्मिन् नक्षत्रे यद्यत्कर्मोक्तं तत्तद्यात्रायां तत्तत्कर्मोक्तन-
क्षत्रं स्ववर्ज्यकालं परिहृत्य शुभमित्युक्तं वराहमिहिरेण । तथा च—

स्वेस्वे कर्मणि पूजितानि मुनिभिः शुद्धानि सर्वाण्यपि

त्यक्त्वाऽर्कोदयमानलेति^(१)विषयं यात्रादिधक्षो. शुभा ।

रोहिण्यां त्रिषु चोत्तरासु विजयो यातुर्विशाखासु च

त्यक्त्वा वासरपूर्वभागमवदद्वाग्योऽधिराज्यार्थिनः ॥

मूलेन्दूरगशङ्करेप्वरिवधे यायादिनार्धं विना

भृत्यर्थं पवनाश्विसूर्यगुरुभेष्वहोऽपरार्धं विना ।

रात्र्यादौ तु न पौष्णभिन्नशशिभे त्वाष्ट्रेषु चाजद्रुतिं

रात्रौ मध्यमपास्य पूर्वभरणीपित्र्येषु हन्तुं मुराः ॥

अथ प्रतिशुक्रोदयदोषमाह—

यद्विग्भेष्ववतिष्ठते भृगुसुतः तां यो दिशं वाम-
तः(कृत्वावापुरतः) तं कृत्वाऽप्यथ संप्रयातु स ततो
नावर्तते दुर्मतिः । दुर्भिक्षादिमहोपसर्गजनने यानेऽ-
प्यदूरे तथा शुक्रादस्ति न दूषणं न च पुनस्त-
स्मिन् स्वभोच्चस्थिते ॥ ५ ॥

प्रतिदिशमाग्नेयादीनि सप्तर्क्षाणि स्थितानित्युक्तम् । तेषु यद्विक्-
सम्बन्धिषु भेषु शुक्रस्तिष्ठति तां दिशं यो दैवजवचनमनादृत्य दुर्मतिः
नष्टबुद्धिस्सन् संप्रयाति सम्मुखं प्रयाति; अथवा तं शुक्रमग्रतः कृत्वा
याति स पुमान् नातिवर्तते न निवृत्तिमेति—विपद्यत इत्यर्थः । एतदुक्तं

भवति— कृत्तिकादिसप्तके स्थिते शुक्रे प्राची न गच्छेत् । मघादिसप्तके स्थिते दक्षिणां । अनूराधादिसप्तके स्थिते प्रतीची । धनिष्ठादिसप्तके स्थिते उदीचीं नो गच्छेदिति । तत्तत्पूर्वोत्तरयोरपरयाम्ययोरैक्यं केचिदिच्छन्ति ।

तथा च रल्लः—

ज्योतिर्गणं भृगुसुतश्चरति यदा वासवादि सप्तान्तम् ।

न तदोत्तरां न पूर्वा यायानृपतिर्विजयमन्विच्छन् ॥

पिच्यादिवैष्णवान्त नक्षत्रगणं यदा चरति शुक्रः ।

न तदा यायाद्याम्यां दिशमवनिपतिः प्रतीची च ॥

समासयात्रायां^(?) प्राच्यादि सप्तसप्तक्रमेण धिष्ण्यानि कृत्तिकादीनि अनुलोमान्येकत्वं पूर्वोत्तरयोरपरयाम्ययोश्च । अथवा शुक्रस्य द्वावुदयौ स्तः प्राक् पश्चाच्च । तत्र प्राच्यामुदिते शुक्रे पूर्वोत्तरे न व्रजेत । प्रतीच्यामुदितेऽपरयाम्ये इति । तथाचायमेवार्थः ऋषिपुत्रेणोक्त —

पश्चादभ्युदिते शुक्रे यायात्पूर्वोत्तरे दिशौ ।

पूर्वतोऽभ्युदिते वाऽपि प्रयायादक्षिणापरे ॥

इति । अथशब्दः पक्षान्तरद्योतनार्थः । तेन शुक्रस्योदयलग्नं प्राच्यां कृत्वा दिक्चक्रगतलग्नादिद्वादशराशिभ्रमणेन तत्काले यस्यां दिशि शुक्रस्तिष्ठति तमग्रतः कृत्वाऽपि न यायात् । तथा चोक्तं—

लग्नेऽन्त्यलाभयोः स्वे धर्मे मरणाख्ययोः स्थितेऽस्ते च ।

रिपुसुतयोः पाताले नेयात्सहजार्थयोश्च पूर्वाद्ये ॥

इति । लग्नस्थे शुक्रे प्राची न गच्छेत् । द्वादशैकादशस्थे आग्नेयीं दिशं । दशमस्थे दक्षिणां । अष्टमनवमस्थे नैर्ऋती । सप्तमस्थे प्रतीची । इत्यादि । एवं त्रिविधं प्रतिशुक्रत्वं । तेषूदयादिङ्मुखत्वमेव प्रयाणे वर्ज्यं । तथा च मासयात्रायां—

उदयो यतो यतश्च भ्रमणं यद्वारभेषु(चरभ्य) वारश्च ।

तन्निविधं प्रतिशुक्रत्वं त्याज्यस्तत्रोदयो लग्नात् ॥

इति । अन्ये तां यो दिशं वामस्थां कृत्वा यायादिति पठन्ति ।
तत्रायमर्थः—तं शुक्रं संमुखं प्रयाति अथ वा वामतः—वामभागे कृत्वा
प्रयातीति । तथाचात्रिः —

सख्यगोऽनर्थकृच्छुक्रो लाभकृत्पृष्ठदक्षिणे ।

यद्दिङ्मुख स्थितः शुक्रः स त्याज्यः सर्वदाऽग्रतः ॥

इति । प्रतिशुक्रं यातस्य फलं तूक्तं —

न प्रतिशुक्रे सिद्धिः स्वरूपोऽप्यर्थः प्रयाति यातृणम् ।

इति । तथा शुक्रस्यास्तमयादौ न व्रजेत् । उक्तं च —

नीचभे ग्रहजितेऽस्तमिते वा

प्रास्थितो नरपतिः प्रबलोऽपि ।

क्षिप्रमेव वशमेऽति रिपूणां

भार्गवे कलुषितेऽस्तमिते वा ॥

प्रतिशुक्रे कथंचित् यानमनुज्ञातं शुक्रास्तमेय न कथं चित्प्रयायादित्युक्तं ।

कामं व्रजेत्प्रतिभृगु विजिगीषुर्नास्तगे शुक्रे ।

अस्तमिते तत्रैव वसतिं कृत्वा पुनस्तदुदये यायात् ॥

तथाचोक्तं ऋषिपुत्रेण —

प्रयात्यन्तर्हिते शुक्रे तत्रैव निवसेत्पथि ।

कृत्वा स्वस्त्ययनं राजा दृढप्राकारतोरणः ॥

ततश्चाभ्युदिते यायाद्यदि शुक्रोऽनुलोमगः ।

अथ चेत्प्रतिलोमस्तु न तत् प्रतिपथं व्रजेत् ॥

प्रतिलोमप्रसन्नेन शुक्रेण क्षीणतेजसा ।

जयप्राप्तेन यो यायात्सबलः स च नश्यति ॥

आदित्यस्यानुलोमेन शुक्रेणास्तमितेन च ।

यायात् स्वविषयं राजा कृतकौतुकमङ्गलः ॥

शुक्रेऽस्तमिते स्वराष्ट्रायानुज्ञाता । परराष्ट्र एव निषिद्धा । गुरुः---

परराष्ट्रे न कर्तव्या यात्रा शुक्रेऽस्तमागते ।

स्वके तु विषये राज्ञो यात्राकर्म विधीयते ॥

परराष्ट्रं व्रजेद्राजा भार्गवेऽस्तमिते तु यः ।

हतसैन्यो निवर्तत हारयित्वा तु साधनम् ॥

इति । प्रतिबुधगमनं च प्रतिषिद्धम् । तथा च वराहमिहिरः---

दिग्वर्गविलोमगे हते सन्ध्याकोपहते विदीधितौ ।

शुक्रे प्रवसन्नेर्वशं सौम्ये वाऽपि विलोमसंस्थिते ॥

इति । अन्ये च---

प्रतिशुक्रं प्रतिबुधं प्रतिभौमं गतो नृपः ।

बलेन शक्रतुल्योऽपि हतसैन्यो निवर्तते ॥

इति । शुक्रे विलोमगेऽपि बुधस्यानुकूलेऽनुयानं कार्यं । तथाच समा-
सयात्रायां---

एवं विधेऽपि शुक्रे यायाद्यदि चन्द्रजोऽनुकूलस्थः ।

प्रतिबुधयानस्यान्येन परित्राणेन^(१) ग्रहाव्यक्ताः ॥

प्रतिशुक्रे न गन्तव्यं बुधो यद्यनुकूलगः ।

विजिगीषोः मुराचार्यो बुधवत्परिकीर्तितः ॥

इति । एवं प्रतिषिद्धस्य शुक्रस्य कचिदनुज्ञानं दर्शयति -- 'दुर्भिक्षादि
महोपसर्गजनन' इत्यादिना । दुर्भिक्षं धान्यौषधीनां दुर्भिक्षत्वं—अन-
र्वता निष्पत्त्यभावो वा । आदिशब्देन परचक्रमयं मारिक्लेशादिभयं वा ।
एतदादीनां महतामपरिहार्यत्वेन गुरूणामुपसर्गाणामुपद्रवाणां जनेन
उद्भवे प्रतिशुक्रदूषणं नास्ति । तथा च गुरुः---

सङ्कुले सभये याने राजदुर्भिक्षपीडने ।

समूलकुलयात्रायां शुक्रदोषो न विद्यते ॥
तथा च । अदूरे गव्यूतेरेकग्रामे वा शुक्रदोषो नास्ति ।
आगव्यूतेस्तथाऽर्वाग्वा गमनागमने शुभे ।

नारदश्च—

एकग्रामे विवाहे च दुर्भिक्षे राष्ट्रविग्रहे ।
द्विजक्षोभे नृपक्षोभे प्रतिशुक्रो न विद्यते ॥

गुरुश्च—

आत्मीयग्रामपूर्वेश्मभर्तृवेश्मप्रवेशने ।
नृपेण प्रेषिते तीर्थे पुरश्शुक्रो न दोषकृत् ॥
तथा च तस्मिन् शुक्रे स्वभे स्वक्षेत्रे स्वोच्चे च स्थिते तस्माद्दोषो
नास्ति । तथा च गुरुः—

सिते स्वतुङ्गे स्वक्षेत्रे युक्ते दोषो न विद्यते ।
चतुष्पदां विशेषेण न दोषः शुभगोचरं ॥
इति । चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः ॥ तेन बालातुरादीनां स्त्रीणां केषांचित्
गोत्रजादीनां गवां च शुक्रदोषो नास्तीत्युक्तं । तथाचात्रिः—

बालानां चातुराणां च गमने रक्षणाय च ।
प्रतिशुक्रफलं नास्ति स्त्रीणां भर्तृगृहं प्रति ॥
यज्ञकर्मणि चोद्वाहे एकग्रामे विशेषतः ।
पुरो वा वत्सवासिष्ठकाश्यपाङ्गिरसां भृगोः ॥
एतेषां पञ्चगोत्राणां शुक्रदोषो न विद्यते ।

आत्ययिककार्यवशादावश्यककार्ये अत्रिणा विशेष उक्तः—

दैत्यमन्त्री दिवाकीर्तिरुशना भार्गवः कविः ।
ऋषिः श्वेतो माण्डलिको नैगमो विगमः कृती ॥
वीधीहन् शुक्रनामानि नमोऽन्तस्सप्तसप्त च ।

प्रतिशुक्रगतौ जप्यादस्यप्रनामृचं तथा ॥

भार्गवो वा भरद्वाजः पूर्णकुम्भधरो द्विजः ।

गव्यूतिमार्गं गत्वाऽग्रे शुक्रदोषं व्यपोहति ॥

इति । एवं प्राच्यादिदिक्षूक्तान् शूलपरिधप्रतिशुक्रादिदोषान् तदन्यांश्च गुणांश्चाग्नेयादिदिक्ष्वतिदिशति । प्राच्यादिदिक्ष्वैरुडुभिर्नक्षत्रैः क्रमेणानलादिकोणानाग्नेयादिविदिशं प्रयायात् । प्राच्यादिदिक्षु निषिद्धैर्नक्षत्रैराग्नेयादिविदिशो न यायात् इति । उडुग्रहणमुपलक्षणं । तिथि वारादिभिराग्नेयादिकोणान् व्रजेत् । प्राच्यादिदिक्षु निषिद्धैस्तैराग्नेयादिकोणं व्रजेदिति । तथाच वराहमिहिरः—

प्राग्द्वारिकैरनलदिङ्गं निरोधमेति

शेषा प्रदक्षिणगताः विदिशं प्रकल्प्याः ।

इति । अथ प्राच्यादिदिग्यानेषु प्रशस्ततिथिराह —

**नन्दादयस्तास्तिथयः प्रशस्ता दिक्षु प्रयाणे
क्रमशो विरिक्ताः ॥ ६ ॥**

रिक्ताविवर्जिता नन्दादयश्चत्वारस्तिथयः प्राच्यादिदिक्षु क्रमेण प्रशस्ताः स्युः । तथाच सर्वसिद्धिकार आह—

नन्दा भद्रा जया पूर्णा प्राच्यादौ तिथयः शुभाः ।

इति । तिथिफलमुक्तं—

नन्दायां नन्दते याता धनधान्यजयादिभिः ।

भद्रायां भद्रतां गच्छेन्महालक्ष्म्यादिशक्त्या ॥

जयायां जयमाप्नोति लब्ध्वा सर्वा रिपोः श्रियम् ।

रिक्तयां रिक्ततां गच्छेद्धतश्रीः शत्रुणा हतः ॥

पूर्णायां पूर्णतां याति यतस्तत्सर्वसम्पदः ।

नन्दाद्यास्तिथयः पञ्च तेऽधमा मध्यमोत्तमाः ॥

अन्ये त्वाहुः—

प्राच्यां शूलाष्टमी यातु. षष्ठी याम्ये विशेषतः ।
प्रतिपत्पश्चिमे यातुर्द्वादश्यां चाऽशुभा बृदक् ॥
शुक्ले कृष्णे प्रतीपेन तिथिः साधारणो मतः ।

तत्रापि विशेषस्तेनैवोक्तः—

नृपस्य षष्ठ्यामष्टम्यां द्वादश्यां च विशेषतः ।
सर्वेषां प्रथमाख्यायां द्वादश्यां च विवर्जयेत् ॥
पञ्चदश्यां विशेषेण पर्वयोरुभयोरपि ।

षष्ठ्यादयो न केवलं नृपस्येष्टाः तथा सर्वेषां तथाच—

षष्ठ्यां तिथौ तथाऽष्टम्यां द्वादश्यां यस्तु गच्छति ।
सोऽपि चित्तलयं लब्ध्वा क्षिप्रमेव विनश्यति ॥

देवलश्च—

शुक्लपक्षे प्रतिपदि पञ्चदश्यां तथैव च ।
न याति याता स्वगृहं वित्तनाशं तथाऽश्रुते ॥

एवं शुक्लप्रतिपत्पञ्चदशयोः कैश्चिदशुभमित्युक्तं कैश्चिच्छुभमिति अतस्ते
मध्ये । तथा च वराहमिहिरः—

प्रतिपदमलमेके पञ्चदश्यां च नेष्टं
जगुरिदमिति तज्ज्ञैः वाच्यते(?) वावधार्यम् ।
किमपिकिमपि नूनं तैः समीक्ष्योक्तमेवं
समवचनविधाते युक्तता केन चिन्त्या ॥

इति । कैश्चित्प्रतिपत्तिथिफलमुक्तं—

क्लेशं ज(द्व)यं लाभविपाच्छ्रयं च
दुःखं जयं रोगमृतिं कुलानाम् ।
क्रोधं च नाशं धनमाक्षिरोगं
नाशं च दद्युस्थितयः क्र(मेण)माद्धि ॥

इति । करणेषु विष्टिर्वज्या गरवणिजे मध्ये । यत उक्तं यात्रायां
गरवणिजविष्टिपरिवर्जितानि करणानि यातुरिष्टानि ।
गरमपि कैश्चिच्छस्तं वणिजं हि वणिक्क्रियास्वेव ॥

इति । अक्रमादागता भद्रा भद्रा । तथाऽऽह गुरुः—
विष्टिस्तु सर्वदा वज्या क्रमेणैवागता तु या ।
अक्रमेणागता विष्टिः सर्वत्र शुभदा मता ॥

वसिष्ठः—

गरं शुभप्रदं याने वणिजां वणिजं तथा ।
विष्टिस्तु सर्वदा वज्या यातुः प्राणार्थनाशिनी ॥

इति । यात्रादावपि यदा तिथिनक्षत्रे शुभे स्तः तदा शुभम् । तथा च गुरुः—
नक्षत्रे यातृगे शुद्धे तिथौ च गुणसंयुते ।
याता धनानि लभते विपरीते विपर्ययः ॥

तयोरेकतरस्य अनिष्टत्वे यात्रायामुक्तम्—

गुणवति तिथावृक्षेऽनिष्टे दिवा गमनं हितं
निशी च भगुणे यानं शस्तं तिथौ गुणवर्जिते ।
(^१)भतिथिगताद्दोषात्प्राप्नोत्यतः प्रतिलोमतः
गुणमपि तयोः सम्यग्यातुर्जगाद् भृगुर्मुनिः ॥

इति । प्रागादिदिक्षु शुभान्वारानाह—

न प्रार्चीं रविशुक्रयोः क्षितिभुवो वारैण याम्यां
दिशं मन्देन्दोरपि पश्चिमां न विशतात्सौम्यां न
जीवज्ञयोः । प्राच्यादीन् क्रमशः कुजस्य शशभृ-
च्छन्योर्बुधाचार्ययोः भास्वद्भार्गवयोर्दिशं प्रविशता-
दित्याह वाचस्पतिः ॥ ७ ॥

रविशुक्रयोर्वारे प्राची दिशं न विशतात् -- न व्रजेत् । क्षिति-
भुवः—कुजस्य वारे याम्यां—दक्षिणां दिशं मन्देन्दोर्वारे पश्चिमां प्रतीचीं
दिशं जीवज्ञयोर्वारे सौम्यामुदीची दिशं न व्रजेत् । अथ कुजवारे
प्राचीं व्रजेत् । चन्द्रमन्दयोर्वारे याम्यां, बुधजीवयोर्वारे प्रतीचीं,
रविशुक्रयोर्वारे, उदीची इति । प्राच्यादिदिशः क्रमेण प्रविशतात्—
व्रजेत् । यद्यपि विशधातुः प्रवेशनार्थं वर्तते; तथाऽपि दिगुपपदसाम-
र्थ्याद्भित्त्यर्थः प्रयुक्तः । एवं वाचस्पतिर्गुरुराह । तथा च तद्वाक्यं—

सितार्कवारयोः प्राच्यां न गच्छेद्दक्षिणां दिशम् ।

भौमवारे तथा चन्द्रयमयोः वारुणी दिशम् ॥

गुरुचन्द्रजयोर्वारे न यायादुत्तरां दिशम् ।

एवं दिगीशशूलेषु प्रवसन्मृत्युमाव्रजेत् ॥

अङ्गारकदिने प्राची दक्षिणां चन्द्रमन्दयोः ।

गुरुज्ञयोस्तु वारुण्यां उत्तरां सितसूर्ययोः ॥

यात्रायां शुभदा वारा वारेशे दक्षिणां गते ।

सुशुभं यातुरेव स्याज्जयश्चैव भाविष्यति ॥

इति । दिक्शूलवारानाह—

मन्दनिशाकरयोस्सुरराजगुरोः शुक्रदिवाकरयो-
बुधभूसुरयोः । दिक्षु गतौ वधबन्धकरा दिवसाः
श्रीपतिना तु पदक्रमतो गदिताः ॥ ८ ॥

श्रीपतिना—आचार्येण मन्दनिशाकरयोरित्यादिसुबन्तपदक्रमेण
प्रागादिदिक्षु दिवसाः—ग्रहवाराः यातुर्वधबन्धकरा उक्ता । इदमुक्तं
भवति—मन्देन्दुवारौ प्राच्यां गमने वधबन्धकरौ गुरुवारे याम्यायां
न शुभं । शुक्रादित्यवारौ प्रतीच्यामनिष्टौ बुधकुजवारानुदीच्यां न
शस्ताविति ।

तथा च श्रीपतिः—

शुक्रादित्यदिने न वारुणादिशं न ज्ञे कुजे चोत्तरां
मन्देन्द्रोरपि शक्रसंज्ञककुभं याम्यां गुरौ न व्रजेत् ।
शूलानीति विलङ्घ्य यान्ति मनुजा ये वित्तसौख्याशय-
भ्रष्टाशाः पुनरापतन्ति यदि ते शक्रेण तुल्या अपि ॥
इति । एवं सूर्यादिवारेषु यातव्यदिगुक्ता । अन्यदिक्षु फलं यात्राया-
मुक्तम्—

उदरनयनरोगश्चापदारण्यबाधाः

सवितृदिवसयाता ह्यश्रुतेऽर्घक्षयं च ।

अनिलकफजरोगाच्छक्तिपानान्नहानिं

सलिलजनितपीडां चाह्नि यातो हिमांशोः ॥

केचित् सोमदिने शुभफलमाहुः । तथा च यवनेश्वरः—

साध्वङ्गनापुष्पफलान्नपानं

द्रव्यैर्मनोजैर्जलसंभवैश्च ।

संयुज्यते चन्द्रदिने प्रयाता

रतिक्रियार्थैरभिवाञ्छितैश्च ॥

एवं विधिप्रतिषेधव्यवस्थान्यायाः यथा—कृष्णपक्षे कष्टफला यात्रा शुक्ल-
पक्षे शुभफला स्यादिति । यच्चन्द्रस्य पापसौम्यत्वानिबन्धना(?) ।

ज्वलनवधविपाऽसृक्शत्रुपीडामसह्या-

मवनिजदिनयाता साद्यते शत्रुसङ्घैः ।

अहनि सवितृसूनोः दैन्यमामोति गच्छन्

स्वजनजनवियोगं मृत्युबन्धामयांश्च ॥

बुधदिवसगतोऽरीन् बाधते मन्त्रशक्त्या

श्रवणसुखकथास्त्रीशिल्पमित्रागमांश्च ।

क्षितिजयवररत्नस्त्रीप्रतापप्रमोदान्
नरकुलमचिरेण स्वीकरोत्यहि सूरः ॥
प्रवरयुवतिशय्यावस्त्रगन्धान्नपान-
स्मरसुखधनरत्नान्यहि भुङ्क्ते सितस्य ॥

इति । एतदेव सूर्यादीनामंशके लग्ने च फलं वदेत् । यस्मादुक्तमने-
नैव योगयात्रायां—

दिनकृद्विसेऽथवांशके वा यात्रा लग्नगते स्वेरपीति ।
इति । केषुचित्तिथिषु वारेषु केषुचिदिक्षु यात्रादौ कार्यविघातयोगिन्यादि-
देवताप्रातिमुख्यपरिहारणाय तदारूढदिकस्थानमाह—

योगिन्यः प्रथमादिकासु तिथिषु क्षमाशैलनेत्रा-
म्बुधिनिषङ्गभकुशैलदृग्युगगुणब्रह्माङ्गादिक्षु क्रमा-
त् । क्षमाशैलादिदिशासु सप्तसु वसन्त्यर्कादिवा-
रेषु ताः यात्रादौ फणियोगिनीदिनकराः पृष्ठस्थिता
स्सिद्धिदाः ॥ ॥

क्षमा भूमिः इमा गजाः कुर्भूमिः दृशौ नेत्रे ब्रह्माणे पञ्च प्रथमा-
दिकासु पञ्चदश्यन्तासु पञ्चदशसु तिथिषु ब्रह्माण्याद्याः योगिन्यः क्रमात्
क्षमाशैलादिसङ्ख्यागतासु पूर्वोत्तराग्नेय्यादिदिक्षु वसन्ति । एतत्सङ्ग्राम-
विजयपद्धत्यामुक्तम्—

पूर्वस्यामुदयो ब्राह्मणाः प्रथमे नवमे तिथौ ।
माहेश्वरी चोत्तरस्यां द्वितीया दशमी तिथौ ॥
एकादश्यां तृतीयायां कौमारी वह्निदिग्गता ।
चतुर्थे द्वादशे चैव वैष्णवी निर्ऋतौ स्थिता ॥
वाराही दक्षिणामेति पञ्चमे च त्रयोदशे ।

षष्ठ्यां चैव चतुर्दश्यामिन्द्राणी पश्चिमे स्थिता ।

पौर्णमास्यां च सप्तम्यां वायव्यां चण्डिका स्थिता ॥

नष्टचन्द्रादिनेऽष्टम्यां महालक्ष्मीः शिवालये ।

दक्षपृष्ठे जया चेमा तद्वत्तत्कालयोगिनी ॥

इति । एषा तु स्थिरा । सञ्चारिणी पुनर्योगिनी तिथ्योदेरारभ्य यामार्धं स्वोदयदिगाद्यासु दिक्षु तिष्ठन्ती तेन मार्गेण भ्रमति । उक्तं च—

यत्रोदयगता देशे भवेद्यामार्ध(भोगिनी)भुक्तिदा ।

भ्रमन्ती तेन मार्गेण भवेत्तत्कालयोगिनी ॥

इति । ताः पुनः ब्रह्माण्याद्याः सप्त योगिन्यः सूर्यादिवारेषु सप्तसु क्रमात् क्षमाशैलादिदिक्षु पूर्वोत्तरादिषु सप्तसु दिक्षु तिष्ठन्ति । अष्टमी महालक्ष्मीः सर्वदा ईशान्यां तिष्ठति । तथा च नरपतिः—

इन्द्रचन्द्राभिनैर्ऋत्ययमतोयानिले हरौ ।

सूर्यादिषु च वारेषु पर्यटोद्वारयोगिनी ॥

पर्यटोदित्यभिधानात् तेषामपि सूर्योदयादारभ्य यामार्धमुदयदिगादित एकैकस्यां दिशि तिष्ठन्तीत्यभिहितम् । तथाच पद्धतौ—

प्रागुदग्बहिनैर्ऋत्ययमाम्बुमरुदीशदिक् ।

अष्टौ चरन्ति योगिन्यः यामार्धेषु दिवानिशम् ॥

इति । यात्रादौ कार्ये यात्रायुद्धनृपदर्शनेषु फणिनो—राहवः । योगिन्य उक्ताः । दिनकरः सूर्यः एते पृष्ठास्थिताः कार्यसिद्धिदाः स्युः । सम्मुख-दृष्टिगताः कार्यप्रातिघातकराः स्युः । योगिन्यः स्वस्वदिक्स्थानात् सम्मुखदिग्दृष्टयः तत्रस्थं नाशयन्ति । अन्यगतं रक्षन्ति तथाचोक्तं—

दिक्स्थानां सम्मुखे दृष्टिः(द्वित्रको)दिक्स्थके दारुणा मता ।

कोणस्थानाच्च कोणेषु तिथीनामुदय(क्रमात्)क्रमः ॥

ब्रह्मस्थानं समुल्लङ्घ्य पतन्ति स्थितादिङ्मुखाः ।

एतद्वृष्टिगतान् पुंसो भक्षयेद्योगिनी तु तान् ॥

पृष्ठे तु शुभमायाति स्थितान्तं तस्य जीवितम् ।

इति । ज्योतिषार्णवे —

योगिन्यासि(श्रि)तदिक्सौख्यं दक्षिणं च जयावहम् ।

कटाक्षं च मुखं चैव वामं चैव विवर्जयेत् ॥

इति । अथ ऋक्षमासपक्षखण्डयामार्धमुहूर्तादिभेदेन बहुधा राहुरुक्तः ।

तत्र कृत्तिकादिदिङ्मनक्षत्रेषु राह्वक्रान्तदिग्गतो नक्षत्रराहुरित्याहुः । तथाच

नरपतिः —

सप्तरेखाङ्किते चक्रे कृत्तिकादि न्यसेच्छुभम् ।

धिष्ण्ये तस्मिन् स्थितो राहू ऋक्षराहुस्स उच्यते ॥

मासाराहुश्च तेनैवोक्तः —

द्वादशोरेऽपसव्येन मासं चैत्रादिकं न्यसेत् ।

(^१)वहन्मासस्थितो राहुर्मासराहुःस्स उच्यते ॥

पक्षराहुः सङ्ग्रामपद्धतावुक्तः —

यः पूर्वोत्तरयोः कृष्णे शुक्ले पश्चिमदक्षयोः ।

कृष्णादितिथितः सप्तसप्तभा वह्निकोणतः ॥

इन्द्रचन्द्रक्षकालाशाभ्राम्यो(^२) राहुरिति क्रमात् ।

खण्डराहुः सङ्ग्रामजयार्णवेऽभिहितः —

ऐन्द्र्यां कृष्णे तृतीयायां सप्तम्यां शूलिनो दिशि ।

दशम्यां धनदाशायां वायव्यां भूतवासरे ॥

शुक्ले चतुर्थ्यां बारुण्यां अष्टम्यां निर्ऋतेर्दिशि ।

एकादश्यां तु याम्यायामाग्नेय्यां पूर्णिमातिथौ ॥

ग्रहोऽष्टम उदयेष हन्ति तत्पञ्चमीं दिशम् ।

मासेष्टाभोदयस्त्वेवं खण्डराहुः प्रकीर्तितः ॥

यामार्धराहुर्नरपतिनोक्तः—

इन्द्रवायुयमेशानतोयामिशशिराक्षसे ।

यामार्धमुदितो राहुः भ्रमत्येव दिशि क्रमात् ॥

ब्रह्मयामले विशेष उक्तः—

भानुर्भौमोऽङ्गिराः सौम्यसितमन्देन्दुराहवः ।

इन्द्रादीशानपर्यन्तमर्धयामगता इमे ॥

उदेति पश्चिमं राहुर्दिशि वारग्रहस्य तु ।

स्यादस्य दिक्षु सञ्चारे चतुर्नाडिकसंस्थितिः ॥

इन्द्रनैर्ऋतचन्द्राग्निजलेशप्रेतमाहतिः ।

एवं राहोर्दिवा मार्गो यामार्धाष्टमकल्पितः ॥

निश्शेषं वैपरीत्येन रात्रावपि गतिस्तथा ।

एषा गतिस्सिते पक्षे कृष्णे पक्षे त्वसौ पुनः ॥

इन्द्रवायुयमेशानजलाग्निशशिनैर्ऋतीः ।

दिशो याति दिवा राहुर्दिशि व्युत्क्रमतो गतिः ॥

इत्येवं सूर्यादिवासरे स तथाचाऽन्यत्र भावयेत् ?

अन्यास्मिन् ग्रहवारादि वारग्रहदिशो भवेत् !

उदयोऽस्य गतिश्चैव क्रमायाता यथोदिता ।

इति ।

यस्यामनेन यातव्यं तां हन्यात् सम्मुखे दिशि ।

यथा—

ऐन्द्र्यां स्थितः सितः हन्यान्मारुतीं नैर्ऋतीस्थिते ।

अतोऽर्धयामगमनाच्चिन्तयेत्तद्दिशोदितम् ॥

इति । अथ मुहूर्तराहुर्नरपतिनोक्तः—

ईशानयमवातेन्द्ररक्षस्सोमाग्निवारुणे ।

पूर्वार्धेऽह्ना भ्रमत्येवमपरार्धे त्वयं क्रमः ॥
जलाभिसोमनैर्ऋत्यशक्रानिलयमे शिवे ।
पूर्वरात्रौ भ्रमत्येव अपरार्धे ह्ययं क्रमः ॥
दिनपञ्चदशांशेन मुहूर्तः पारिकीर्तितः ।
एवं मौहूर्तिको राहुः(ज्ञा) हातव्यः स्वरेवेदिभिः ॥
इति । अन्ये त्वाहुः । दिनरात्रयोः पूर्वार्धयोरिति । तथा च ब्रह्मयामले—
ईशकीनाशवायव्यपूर्वनैर्ऋतवित्तपान् ।
हुताशनजलाधीशानुदयं सेवते तमः ॥
यावद्भवति मध्याह्नं व्यस्तमस्य ततो गतिः ।
जलसोमनैर्ऋत (१) शक्रानिलयमासु च ।
तां चेद्दिशं याति (?) रात्रावपि यथा दिने ॥
प्रोक्तो मौहूर्तिको राहुर्महूर्ता दश पञ्च च ।
इति । एतान् वामसम्मुखगतान् । तथाचोक्तं—
सम्मुखा वामसंस्था वा यस्येयं राहुमण्डली ।
पराजयो भवेत्तस्य वादद्वृत्तरणादिषु ॥

अन्यत्र—

राहोर्मुखं कटाक्षं च वामं चैव विवर्जयेत् ।

इति ।

यस्य दक्षिणपृष्ठस्था सैषा राहुपरम्परा ।

सहस्रं वा तदेकोऽपि परसैन्यं निवृन्तति ॥

इति । दिनकरस्य भ्रमणोदयचारवशात् त्रिविधं पृष्ठगत्वं । तत्र प्रा-
गादिदिग्ललराशिचक्रवशेन यस्यां दिशि स्थितोऽर्कः स यातुः
पृष्ठतश्चेत् सिद्धिकरः । तथा च प्राग्लग्नस्थोऽर्कः प्रत्यङ्मुखः स्यात्
अस्तलग्नस्थः उदङ्मुखस्य पृष्ठगः स्यात् । एवं विदिक्षु बोध्यम् ।

तथा च देवलः—

लग्नस्थे वरुणाशां हिवुकगते दक्षिणां रवौ यायात् ।

सप्तमगे पूर्वाशां मेपूरणसंस्थिते सौम्याम् ॥

इति । अथवा प्रागादिदिक्षु भानुर्यस्यां दिशि दृश्यते सा दिक् पृष्ठतः कार्या । यथा पूर्वयामे प्राच्यां दिश्यको दृश्यते । द्वितीये आग्नेय्यां तृतीये याम्यायां इत्यादियामाष्टके प्रागादिदिगष्टके भानुस्तिष्ठतीति प्रसिद्धिः । अनेनैवाभिप्रायेण नरपतिः—

प्रत्यहं दृश्यते यस्यां भानुविभ्वं दिशि स्थितम् ।

दक्षपृष्ठस्थिता सा दिक्कर्तव्या जयकाङ्क्षिभिः ॥

इति । गोचरेण भानुर्यास्मिन् राशौ तिष्ठति स राशिर्दिग्ग्राशिचक्रे पृष्ठतः शुभः । तथा च नरपतिः—

भास्करो यत्र सन्तिष्ठेत् द्वादशारे प्रतिष्ठितः ।

स राशिदिक्षु पृष्ठस्थो यात्रादौ जयदो मतः ॥

इति केचिद्दिनगतग्रहणं क्रूराणामुपलक्षणमाहुः । तेन पृष्ठस्थाः क्रूराः शुभा इत्युक्तं । तथा च ब्रह्मयामले—

दक्षपृष्ठस्थिताः क्रूराः मेषादिद्वादशारके ।

यात्रादौ जयदाः प्रोक्ताः सौम्ये वामेऽथवा पुरः ॥

इति । अत्र सौम्यौ—बुधजीवौ द्वावेव । बुधशुक्रयोः सम्मुखत्वा शुभत्वात् । यथोक्तं योगयात्रायां—

प्रतिशुक्रबुधा शशिपृष्ठगता दिग्धः कुरुते नृपतिं गमने ।

मदिरामुदिता मदनाकुलिता प्रमदेव कुलं परवेश्मगता ॥

इति । अत्रोदयमासपक्षदिनराशिवशेन पञ्चविधं चन्द्रस्य सम्मुखत्वं शुक्लद्वितीयां नक्षत्रगश्चन्द्रो दृश्यते । तद्व्यादिगतं स्यात् । वर्तमान-मासपूर्णिमान्तचन्द्रमाः यदिङ्क्षत्रे स्थितः सा मासचन्द्रदिक् ।

तथा च—

चक्रे सप्तशलाकाख्ये वसन् मासर्क्षगः शशी ।

मासचन्द्रो भवेदेव हातव्यः स्वरवेदिभिः ॥

इति । शुक्लप्रतिपदादिसाधसप्तदिनानि प्रागादिचतुर्दिक्षु अपसव्येन चरति । तथाच नरपतिः—

पूर्वोत्तरगत शुक्ले कृष्णे पश्चिमदक्षगः ।

एष भुक्तिप्रमाणेन पक्षचन्द्र इहोच्यते ॥

इति । सप्तशलाकाचक्रे प्राचीमध्येरेखायामर्काक्रान्तं न्यस्य ततोऽपसव्येन चन्द्रर्क्षं स्यात् । तथाऽऽह—

चक्रे सप्तशलाकाख्ये प्राच्यां मध्येऽर्कं न्यसेत् ।

ततो वामेन चन्द्रर्क्षं दिनचन्द्र इहोच्यते ॥

इति । मेषादिराशिगतश्चन्द्रो यदिग्राशो च तिष्ठति सा दिक्सचन्द्रा । तथा च नरपतिः—

दिशि यस्यां स्थितश्चन्द्रो सव्यमार्गेण राशिगः ।

राशिचन्द्रस्स विज्ञेयः सर्वदा स्वरवेदिभिः ॥

इति ।

वामसम्मुखगश्चन्द्रो यात्रादौ विजयप्रदः ।

इति । गुरुरपि बुधवदित्यन्ये । तथा च नन्दी—

प्रतिशुक्रेऽपि गन्तव्यं बुधो यद्यनुलोमगः ।

विजिगीषो मुराचार्यः बुधवत्परिकीर्तितः ॥

इति । गुळिकविष्ट्यादिस्थितादिशो न यायादित्याह—

यस्यां दिशि स्थिता नित्या गुळिकार्कजविष्टयः । न तां प्रति दिशं यायात् पृष्ठगास्ते शुभप्रदाः
गुळिकः—प्रसिद्धः । अर्कजो—मन्दःकालश्च । विष्टिर्भद्रानित्याः

स्थिरागुलिकादयो यस्यां दिशि तद्दिने स्थिता तां दिशं न प्रयायात् ।
सम्मुखो न गच्छेत् । ते गुलिकादयः पृष्ठगाः जयप्रदाः । अतः तां
दिशं पृष्ठतः कृत्वा यायात् । सूर्यादयः प्रागादिदिक्षु स्ववारेषु ।

भानुः सोमः कुजः सौम्यः गुरुः शुक्रश्शनिस्तमः ।

ऐन्द्र्यादीशान्यपर्यन्तं अर्धयामोदयाः स्मृताः ॥

दिनवारोदया ज्ञेया स्वयिस्वीयदिशः क्रमात् ।

तस्मिन् गुलिकजो राहुः स्थाने तत्र शनैश्चरः ॥

इति । शनैश्चरश्च त्रिविधः—स्वोदयदिक्स्थः आरूढदिक्स्थः प्राग्ल-
भादिभावगतदिक्स्थश्च इति । एष पृष्ठतश्च कार्यः । तथा च ब्रह्मयामळे—

रविराहुकुजान् मन्दं कृत्वा दक्षिणपृष्ठतः ।

सम्मुखं च निशानाथं समराभिमुखो भवेत् ॥

इति । सूर्योदये वाराधिपः प्राच्यामुदितो यामार्धभुक्त्या अपसव्यं
भ्रमति । तद्वितीयाद्यास्तद्वत् । आग्नेयादिष्विति यत्र मन्दः तत्र कालः ।

तथा च सङ्ग्रामविजये—

तस्य स्थानं वक्ष्ये प्राच्यामुदितं दिनाधिपं न्यम्य ।

अपसव्यक्रमयोगात् सङ्गज्य वदेत्तमो भ्रमणम् ॥

यत्रास्ते सूर्यमुतः तत्रासौ कालसंज्ञितो गुलिकः ।

सोऽर्धप्रहरविभोक्ता विज्ञेयो भूमिचक्रतः सव्यम् ॥

इति । अन्ये त्वाहुः—

अर्कारजीवज्ञभृगुमन्देन्दुदिवसेष्वपि ।

प्रागादितः सव्यगामी तस्मादक्षिणगोऽन्तकः ॥

इति । नरपतिश्च—

वरोऽहि पूर्वदिग्भागे ततः सव्येन मन्दगः ।

यस्य यत्तत्र कालस्य पाशः स्यात्तस्य सम्मुखम् ॥

दक्षिणस्थः शुभ कालः पाशो वामदिगाश्रयः ।
यात्रायां समरे श्रेष्ठः ततोऽन्यत्र न शोभनः ॥
इति । विष्टिश्चतुर्थ्यादितिथिगता वारुण्यादिदिशि तिष्ठतीति प्रागुक्तं ।
एतत्सङ्ग्रामपद्धतौ स्पष्टमुक्तं—

भूताष्टवाजितिथ्यर्धादिशा रुद्रगणाः क्रमात् ।
प्रागादिविष्टयः प्रोक्ता जयदा दक्षपृष्ठयोः ॥
इति । अन्ये तु पूर्णिमादिविष्टीनां आग्नेयादिषु वा अर्धतिथिषु त्रय-
मपसव्येन स्थानमाहुः । चतुर्दशी भद्रायां सार्धपञ्चकं—
सम्मुखी वामगा वर्ज्या यात्रायां समरे तथा ।
पुरग्रामगृहादीनां प्रवेशे शुभमिच्छता ॥

इति ।

हस्तोत्तराश्विनसुविष्णुसुरे (ङ्य) ज्यपौष्ण-
मूलाजमित्रशशिभेषु तथा च रिक्ते ।
राजाश्रिते रविपुरन्दरपूज्यसौम्य-
शुक्रोदयांशदिवसेषु नृपः प्रयायात् ॥
यदा रवेर्मण्डलमेति काव्यो विनष्टतेजाः गुरुरप्यथैव ।
कालस्स दीक्षाव्रततीर्थयात्राविवाहयज्ञोत्सवनाशहेतुः ॥
अत्र केचित्स्वेचरगोचरतारादिवलानुगुण्ये सत्यपि भूवलचक्रवधादिसान्नि-
वेशादिरेव ? गुण्ये लक्षणमनर्थकमित्याहुः—
विशुद्धलम्बे शुभदैवगोचरेऽप्यनर्थकं लग्नमचक्रशुद्धिमत् ।
चक्रेषु शुद्धेषु शुभे च गोचरे शुभप्रदं लग्नमिहैष योगवत् ॥
इति । तस्मात् प्राक्तनैरुक्तानि चक्राणि कानिचिद्वक्ष्ये—
तत्रादौ तुम्बुरुचक्रम् । तत्रापि प्रस्तारतुम्बुरुचक्रम्—
त्रयोदशार्धवगा रेखा दश रेखाश्च तिर्यगाः ।

भवेयुः कोष्ठगास्तत्र सङ्ख्यास्त्वष्टोत्तरं शतम् ॥
 कवर्गं नवधा लिख्यात् कोष्ठकप्रथमाष्टके ।
 द्वितिये सप्तमे चाद्यान् सकृन्नवस्य तृतीयके ॥
 रेखास्वस्याग्न्याश्रिपडष्टके ।
 यशवर्गे चतुर्थे च (अ) जवर्गं पञ्चमेतथा ॥
 नवधा दशके नाड्यं शेषा नाड्यो द्विकोष्ठके ।
 चतुरक्षरसंयोगे अश्विन्याद्याः क्रमेण च ॥
 ज्ञेया नवाङ्गवर्णानां यथा वा राशिमण्डले ।
 भौमं शुक्रं बुधं चन्द्रं रविं सौम्यं सितं कुजम् ॥
 गुरुं सौरि शनिं जीवं दद्यात्तत्कोष्ठकोपरि ।
 कोष्ठनक्षत्रभो ज्ञेयः चन्द्रस्तत्कालसंभवः ॥
 तदर्धानं फलं सर्वं लाभालाभजयादिकम् ।
 क्रूरर्क्षेणाश्रिते चन्द्रो न शुभस्सर्वकर्मसु ॥
 शुभर्क्षे तु शुभाद्येवं प्रस्तारे चन्द्रनिर्णयः ।
 नाडीफल्यशोवर्गैः कवर्गादिफलोदयः ॥
 एकपक्षेण मानेन (८) षडतुर्यायिनां जयः ।
 प्रश्नकाले विवाहे च यात्रायामपि जन्मानि ॥
 शशाङ्कस्य फलं श्रेष्ठं सर्वशास्त्रेषु गोपितम् ।
 द्वादशारं लिखेच्चक्रं नाड्यैकैका त्रिधा कृता ॥
 पञ्चमेपञ्चमे स्थाने तिर्यग्वेधं तथा कुरु ।
 अष्टोत्तरशतं चैव नाडीसंख्या प्रजायते ॥
 अंशाक्षराणि चक्रस्य नाड्यैकाग्रेषु विन्यसेत् ।
 क्रूरवेधाक्षरे चन्द्रो यदा तत्कालसंभवः ॥
 तदा तस्य फलं वक्ष्ये विवाहादौ शुभाशुभम् ।

विवाहे क्रूरवेधेन वैधव्यं च विशीलता ॥
यात्रायां च भवेद्धानिः मृत्युभङ्गो महान् भवेत् ।
सर्वहानिकराः कृराः ग्रहा सौम्याः फलार्धदाः ॥
व्याधौ वेधो भवेद्यस्य मृत्युस्तस्य प्रजायते ।
प्रस्तारे द्वादशारे च ऋक्षवर्णक्रमेण च ॥
नवांशराशिमात्रेण चक्रं भवति तुम्बुरो ।
यत्र क्षेमादिराशिस्थः तत्कालेन्दुः प्रजायते ॥
ग्रहदृष्टिवशात् सर्वं ज्ञेयं तस्य शुभाशुभम् ।
उच्चस्थानास्थितश्चन्द्रः भौमादित्यौ प्रपश्यतः ॥
समस्थाने च गुर्विन्दू नीचस्था राहुसूर्यजाः ।
बुधशुक्रौ त्रिकोणे च चन्द्रं तत्कालसंभवम् ॥
अन्यत्रस्था न पश्यन्ति जात्यन्धा इव खेचराः ।
क्रूरदृष्टियुते चन्द्रे सर्वं भवति शोभनम् ॥
क्रूरदृष्टियुते हानिर्भयं मिश्रे विमिश्रितम् ।
तत्कालेन्दुफलं सर्वं यदुक्तं ब्रह्मयामले ॥
गोपितं त्वन्यशास्त्रेषु मया चात्र प्रकाशितम् ।

इति । नाडीचक्रं प्रवक्ष्ये—

आर्द्रादिकं लिखेच्चक्रं मृगान्तं च त्रिनाडिकम् ।
भुजङ्गसदृशाकारं मध्ये मूलप्रतिष्ठितम् ॥
यादिने त्वेकनाडीस्था नामचन्द्रर्क्षभास्कराः ।
तदिने वर्जयेत्तस्य विवाहे निर्गमे रणे ॥

इति । नरपतिनोक्तं अन्यैरुक्तं च लिख्यते—अथ पथराहुचक्रं—

पञ्चोर्ध्वास्तियर्गष्टौ च लिखेदेका ऋजूरिदम् ।
फलं राहोर्भवेच्चक्रं अष्टाविंशतिकोष्ठकम् ॥

धर्मार्थकाममोक्षाख्याश्चतस्रः सप्तकोष्ठकाः ।
 पङ्क्तयस्तासु दक्षादिफणिगत्या समालिखेत् ॥
 क्रमाद्धर्मस्थिते राहौ तत्रस्थे सर्वनाशनम् ।
 धनस्थे जायते भङ्गः स्मरस्थे दारविच्युतिः ॥
 मोक्षगे धनलाभस्स्यादथ वित्तगते रवौ ।
 तत्र द्वयोस्स्थितो (१) धर्मे सर्वार्थसिद्धयः ॥
 अर्थस्स्याद्विफलं सर्वं कामे कार्यार्थसिद्धयः ।
 युद्धयात्राविवाहादौ नगरादिप्रवेशने ॥
 सर्वेषु शुभकार्येषु पथराहुः फलप्रदः ।

अथ (कालानलकाल) राहुचक्रम् —

शलाकासप्तकाचक्रं ईशादौ कृत्तिकादिकम् ।
 साभिजित्सव्यमालिग्न्य अष्टाविंशतितारके ॥
 यत्रर्क्षे संस्थितो राहुस्तस्मात्पञ्चदशर्क्षगः ।
 केतुमाहुर्बुधाः केचिदेषु शास्त्रप्रमाणतः ॥

नरपतिः—

यत्रर्क्षे संस्थितो राहुर्वदनं तन्निगद्यते ।
 ऋक्षाधारगतो राहुस्सर्परूपेण संस्थितः ॥
 मुखाच्चतुर्दशे ऋक्षे तस्य पुच्छं विनिर्दिशेत् ।
 एकोत्तरशतं यत्र केतवः समुपास्थिताः ॥
 राहुभुक्तानि ऋक्षाणि जीवपक्षस्त्रयोदश ।
 त्रयोदशाथ भोग्यानि मृतपक्षः प्रकीर्तितः ॥
 मृतपक्षे गुदं तस्य मुखं जीवाङ्गमाश्रितम् ।
 एवमङ्गद्वयो राहुर्जातव्यः स्वरपारगैः ॥
 जीवपक्षस्थिते चन्द्रे कार्यं स्यादमृतोपमम् ।

मृतपक्षे मृतं ज्ञेयं यत्र चन्द्रबलं बलम् ॥

पद्धतिः—

सर्वं यात्रादिकं कार्यं जीवपक्षेऽर्थसाधकम् ।

सजीवजीवहीनं तु मृतपक्षे विनिर्मितम् ॥

राहुणा केतुनाक्रान्तनक्षत्रं गुलिकं भवेत् ।

कर्तरीति द्वयं चक्रं तत्र नामानुगं फलम् ॥

चन्द्रार्कौ मृतपक्षस्थौ दुर्बलौ गुलिकेऽपि च ।

बलवन्तौ च जीवस्थौ याने वा रणकर्मणि ॥

यानं चन्द्रबले प्रोक्तं स्थानं सूर्यबले सति ।

यायी चन्द्रो रविः स्थायी तद्दलाबलिनौ हि तौ ॥

अथास्मिन्नेव चक्रे मुखोदरगुदपुच्छकपालाग्न्यपञ्चाङ्गकल्पनया फल-
मुक्तं नरपतिना—

अथ पञ्चाङ्गभेदेन राहुचक्रं वदाम्यहम् ।

मुखोदरगुदं पुच्छं कपालं तस्य पञ्चकम् ॥

इति । अन्यैर्मुखहृदयजठरगुदपुच्छमुखार्धस्य षडङ्गकल्पनयोक्तम् ।

वदनात्सप्तभुक्तानि हृदयं जठरं ततः ।

वदनात्सप्तभो (ज्या) ग्यानि मूर्धा पुच्छं ततश्च षट् ॥

इति । पञ्चाङ्गपक्षे तु वदनाज्जठरं ज्ञेयं भुक्तर्क्षाणि त्रयोदश इति ।

सूर्यरुद्राङ्गगे चन्द्रे रवौ कामाङ्गमागते ।

यातुर्भङ्गो जय स्थातुः विज्ञेयं भूबलं हि तत् ॥

भानौ कपालसूर्याङ्गे चन्द्रे सम्पुटवर्तिनि ।

स्थातुर्भङ्गो जयो यातुरीशवाक्यप्रमाणतः ॥

रुद्राङ्गं च कपालं च

मूर्धा सूर्याङ्गं पुच्छं च पृष्ठं कामाङ्गसम्पुटम् ।

जीवाङ्गमुदरं चन्द्रे कपाली सूर्याङ्गे^१ कर्तर्यामास्थिते रवौ ॥
 बलद्वयं क्षयं यायि यायी किञ्चिज्जयान्वितः ।
 सूर्याङ्गमस्तकाङ्गस्थे रवौ कर्तरिगे विधौ ॥
 उभयोर्वलयोर्नाशो यायी किञ्चिज्जयान्वितः ।
 मन्मथाङ्गं गते चन्द्रे कर्तरीसंस्थिते रवौ ॥
 समयुद्धं भवेत्तत्र स्थायी किञ्चिज्जयान्वितः ।
 सम्पुटस्थे सहस्रांशौ कर्तर्यामास्थिते विधौ ॥
 समयुद्धं प्रजायेत स्थायी किञ्चिज्जयो भवेत् ।
 मुखे सूर्ये गुदे चन्द्रे विनाशो यायिनो जयः ॥
 गुदे भानौ मुखे चन्द्रे विध्वंसो यायिनो जयः ।
 कामाङ्गे हिमतिग्मांशौ सन्धिदा बलयोर्द्वयोः ॥
 अर्केन्दू मूर्धपूर्वस्थौ रणे यायिजयप्रदौ ।
 पृष्ठस्थौ मस्तकस्थौ वा पृष्ठमस्तकगौ तथा ॥
 कर्तरीस्थौ यथा याने रविचन्द्रौ विवर्जयेत् ।

इति । कर्तरी—गुदं मुखं च । अथास्मिन्नेव चक्रे^१ राह्यादि एकत्रिचतु-
 स्रयास्त्रिकैकत्रितयंचतुष्टयात्रिकसङ्ख्यनक्षत्रैः शिरःपुष्पितफलितनिष्फलस्फु-
 टित(सुखद)गुदराजसतामसशुभमृतसंज्ञदशाङ्गभेदकल्पनया फलमुक्तम्—

^२ अध्वाङ्गतश्च रागश्च राहुऋक्षे प्रजायते ।
 पुष्पितं फलितं त्रीणि क्षेमवाहकराणि च ॥
 शत्रुभङ्गो भवेद्युद्धे यात्रामासेन सिद्धिदा ।
 फलितान्यथ चत्वारि मासार्धेन फलन्ति च ॥
 गजवाजिधनं देशं प्रियासङ्गः सुखं यशः ।
 निष्फलानि त्रिधिष्ण्यानि सर्वमेषु प्रपीड्यते ॥

^१ राहुभादि.

^२ अवदागतश्च

व्याधिपीडामनोदुःखपुत्रनाशधनक्षयैः ।
 कलहो मित्रभेदश्च विपदश्च पदपदे ॥
 बन्धनं भूमिनाशश्च स्फुटितैस्तैस्ततस्त्रिभिः ।
 गुदेऽथ लभते कन्यां प्रियां सुखधनानि च ॥
 विपदो ब्रह्महत्या च मुखरोगश्च भूतिकम् ।
 ब्राह्मणादिप्रजापीडा राजसार्वभौस्ततस्त्रिभिः ॥
¹ शाकिनी चेष्टवेतालैः पीडा तामसभत्रये ।
 अशुभाह्वानि चत्वारि भीतिहानिप्रदानि च ॥
 सर्वनाशकराण्याहुः यात्राकाले न संशयः ।
 मृतानि त्रीणि धिष्ण्यानि तानि मृत्युप्रदानि च ॥
 इति । केचिद्राहारूढतारांशादारभ्य चतुर्भिश्चतुर्भिरंशैः एकैकमक्षं परि-
 कल्प्य तैर्दशाभेदैः प्रतिभांशफलमामनन्ति—
 आरभ्य राहुणाक्रान्तभांशादङ्गचतुष्टये ।
 क्रमादेकैकऋक्षस्य दशांशफलमुच्यते ॥
 शिरोभे शत्रुभिश्चित्तव्यथा सौम्यधनागमः ।
 पुष्पिताद्ये दशत्रीशत्रिपञ्चाशैर्धनाप्तयः ॥
 मध्यमेत्त्युत्त(म)रश्चैष्टमध्यमाग्न्यैरसिद्धयः ।
 अन्येऽरिभी रिपुक्षोभ (विजय) विज्ञेयं क्षिप्रसिद्धयः ॥
 फलिताद्वैर्गजाप्तिर्भूलाभार्थाप्तिश्च रोगिता ।
 द्वितीये गजलाभार्थलाभगोलाभभीतयः ॥
 तृतीयेऽर्थाप्तयभिभवविपुभिर्भृत्यसङ्गमः ।
 तुर्येऽर्थलाभोऽर्थसिद्धिः साफल्यं बन्धुबन्धनम् ॥
 निष्फलं बन्धनाद्धीतिः शत्रुभीः प्राणसंशयः ।

द्वितीये मरणं रोगः सैन्यहानिः सुहृत्क्षयः ॥
 १ अन्त्ये स्वहानिः कलहो नावृत्तिः शत्रुपीडनम् ।
 स्फुटितेऽरिष्वयो युद्धात् स्थानं मृत्युः पराभवः ॥
 बन्धो निवृत्तिरिपुभीर्गतिस्तम्भश्च मध्यमे ।
 अन्त्ये कृच्छ्रं वित्तहानिः प्रजानाशोऽरिपीडनम् ॥
 गुदे स्थानाप्तिरवाप्तिर्भूमिलभार्थासिद्धयः ।
 राजसाद्ये धर्मघातो देशनाशः कलिर्मृतिः ॥
 मध्ये स्थानच्युतिर्मित्रहानिर्भद्रं धनागमः ।
 अन्त्ये मृत्युः कार्यनाशो देशभ्रंशः कुलक्षयः ॥
 तामसे कार्यनाशेष्टमृतिर्द्वितयपातकम् ।
 मध्यमे मरणं भूतदैवरक्षोभयानि च ॥
 अन्त्येन्दौ च क्षोभवन्धगुरुद्रोहप्रणाशनम् ।
 अशुभाद्ये धनावाप्तिर्मृत्युभीर्मरणं जयः ॥
 द्वितीये राष्ट्रभेदोऽर्थलाभो रत्न (समा) धनागमौ ।
 तृतीये गजलाभोऽश्वलाभो मृत्युक्रियाफलम् ॥
 तुर्ये भङ्गो देशनाशो मुहृत्पुष्टिः शुभोदयः ।
 मध्ये रोगः सुहृन्नाशः शत्रु (सुत) नाशोऽखिलक्षयः ॥
 अन्त्यमे विहतिर्हानिः २ शत्रुभिस्तीव्रपीडनम् ।
 एवं नक्षत्रपादेषु ३ प्रारभ्यारियुताङ्गतः ॥
 चन्द्रे सिते दशाङ्गास्वभेदेन फलमीरितम् ।
 इदं स्थिरचक्रं । चरचक्रे तु तत्कालचन्द्रसूर्यौ कृत्वा ज्ञातव्यम् । सूर्येन्द्रो-
 रिष्टनक्षत्रनाडिका (नखैः) नवभिर्हित्वाऽऽप्तानि भानीति गुणविशेषघ-
 टिका युक्ता । अश्विन्यास्स्वभुक्तयुक्तानि तात्कालिकानि स्युः ।

१ अन्त्येऽर्थहानिः ।

२ शत्रुभीतिः प्र.

३ प्रारभ्यारियुताशकम् ।

अत्र नरपतिः—

स्थिरचक्रे पुरः प्रोक्तं चन्द्रादित्यफलं यथा ।
 चरचक्रे च तेनैव प्रकारेण फलं वदेत् ॥
 सर्वेषु शुभकालेषु यात्राकाले विशेषतः ।
 प्रश्नकाले शुभश्चन्द्रो ज्ञेयो राहुगुदोदरे ॥
 मुखपुच्छकपालस्थे शशाङ्के राहुचक्रगे ।
 धनहानिश्च मृत्युश्च सर्वकार्येषु जायते ॥
 गुदसम्पुटगे चन्द्रे विवाहे नन्दधुर्व्रयोः ।
 नैस्त्वं द्वेषश्च वैधव्यं मुखे पुच्छे च मस्तके ॥
 पुष्पिते फलिते शून्ये प्रश्नकाले शशी शुभः ।
 अफले पुष्पिते हानिर्मृत्युः शेषे म (मृ) त बुधः ॥

इति । परचक्रफलं च द्रष्टव्यम् । इदं खेचरं । स्थिरं तु भूचरं । द्वयोः
 सन्निपाते राहुकालानलं नाम चक्रं । तथा चोक्तं—

ऊर्ध्वं तु खेचरं चक्रं अधो भूचरमेव च ।
 उभयोः सन्निपातेन राहुकालानलं मतम् ॥
 न लोभैः न भिया स्नेहैः न देयं कार्यकारणैः ।
 कालानलमिदं चक्रं गोपनीयं प्रयत्नतः ॥
 चिरकालस्थितं शिष्यं सुपरीक्ष्य पुनःपुनः ।
 तस्य शिष्यस्य दातव्यं चक्रं कालानलात्मकम् ॥

इति । अथ सर्वकालानलं चक्रम्—

ऊर्ध्वगास्त्रिशूलाग्रत्रिरेखास्तिर्यगायताः ।
 द्वेद्वे नाड्यौ स्थिते कोणे शृङ्गयुग्मं तथैकया ॥
 मध्यशू (मृ) लाऽथ दण्डस्थभानुभाद्यं भ्रमण्डलम् ।
 साभिजित्तत्र दातव्यं सव्यमार्गेण सर्वदा ॥

नामर्क्षं संस्थितं यत्र ज्ञेयं तत्र शुभाशुभम् ।
 अधोगतैस्त्रिनक्षत्रैः विद्यात्तु वधबन्धनम् ॥
 रेखाष्टके जयो लाभः ऋक्षषट्के तथा पुनः ।
 शृङ्गयुग्मे रुजाभङ्गो मृत्युः शूलत्रये स्फुटम् ॥
 विवाहे विग्रहे युद्धे रोगातौ गमने तथा ।
 सर्वकालानलं चक्रं ज्ञातव्यं च प्रयत्नतः ॥

अथ चन्द्रकालानलचक्रं—

चन्द्रकालानलं चक्रं व्योमाकारं लिखेद्बुधः ।
 चतुर्दिक्षु त्रिशूलानि मध्यभिन्नानि कारयेत् ॥
 पूर्वत्रिशूलमध्यस्थदिनऋक्षादिविन्यसेत् ।
 त्रिशूलबाह्यमध्यस्थं मध्यबाह्यत्रिशूलगम् ॥
 नामर्क्षं संस्थितं यत्र ज्ञेयं तत्र शुभाशुभम् ।
 त्रिशूले (च) न भवेन्मृत्युर्मध्यमं बहिरष्टभम् ॥
 लाभक्षेमजयप्रीतिं चन्द्रगे(हं)भे न संशयः ।
 वर्जनीयं प्रयत्नेन प्रथमाष्टत्रिपञ्चमम् ॥
 ऋक्षं द्वादशकं चात्र कालरूपी न संशयः ।
 लाभालाभौ सुखं दुःखं जयं चैव पराजयम् ॥
 चन्द्रकालानले चक्रे विद्यात्संशयवर्जितम् ।

इति । अथ घोरकालानलं—

शलाकासप्तकं चक्रं लिखित्वा चन्द्रभादितः ।
 त्रिषुत्रिषु च ऋक्षेषु नव सूर्यादयो ग्रहाः ॥
 यदङ्गे नामनक्षत्रं फलं तत्र यथाक्रमम् ।
 भानुना शोकसन्तापौ शशाङ्कः क्षेमलाभदः ॥
 भूसुतो मृत्युमाधत्ते बुधे प्रज्ञा प्रजायते ।

जीवे लाभः शुभं शुक्रे सूर्यपुत्रे महद्भयम् ॥
 राहुणा घातपातं च केतौ मृत्युर्न संशयः ।
 यात्राजन्मविवाहेषु सङ्ग्रामे विग्रहेऽपि वा ॥
 घोरकालानलं चक्रं ज्ञात्वा कर्म समारभेत् ।

अथ गूढकालानलं—

सप्तारे वा भवेच्चक्रे चान्द्रभाद्यन्तमण्डलम् ।
 लिखित्वा कल्पयेत्तत्र षडङ्गं जयकाङ्क्षिणा ॥
 यत्रर्क्षे संस्थितश्चन्द्रः तदादि त्रीणि गूढकम् ।
 सम्पुटं नव भान्यत्र कर्तरी तु ततस्त्रिभम् ॥
 दण्डधिष्ण्यानि च त्रीणि कपालं सप्तऋक्षकम् ।
 वज्राङ्गं धिष्णियान्येवं षडङ्गं निर्णयक्रमात् ॥
 यदङ्गे नामनक्षत्रं फलं तत्र शुभाशुभम् ।
 गूढस्थे विभ्रमो युद्धे जयो भवति सम्पुटे ॥
 कर्तर्या सजयं युद्धं दण्डे भङ्गो न संशयः ।
 कपालस्थे भवेन्मृत्युः वज्रे तस्य महद्भयम् ॥
 गूढकालानलं चक्रं द्रष्टव्यं स (म) सराशिषु ।

इति । अथ सूर्येन्दुकालानलं—

द्वादशारं लिखेच्चक्रं मेषादिद्वादशान्वितम् ।
 क्षेत्रयुग्मं च तत्रैव ज्ञातव्यं सूर्यचन्द्रयोः ॥
 सिंहादि मकरान्तं च भानुक्षेत्रमुदाहृतम् ।
 कुम्भादिक (र्कि) कर्पर्यन्तं चन्द्रक्षेत्रं न संशयः ॥
 चन्द्रक्षेत्रं गते सूर्ये चन्द्रे तत्रैव संस्थिते ।
 यातुर्मृत्युर्जयस्स्थातुः इत्युक्तं ब्रह्मयामले ॥
 सूर्ये सूर्याङ्गसंयुक्ते चन्द्रे चन्द्राङ्गसंयुक्ते ।

तदा काले भवेत्सन्धिः युद्धं तस्य विपर्यये ॥
 कर्तर्या यदि चन्द्रार्कौ संहारः सैन्ययोर्द्वयोः ।
 यात्रायां युद्धकाले च चक्रमेतद्विलोकयेत् ॥

इति । अथ फणिचक्रं—

चक्रं फणीश्वराकारं त्रिनाडीगततारकम् ।
 अश्विन्यादि च पौष्णान्तं फणिगत्या समालिखेत् ।
 क्रूरैर्युक्ता नाडिका पीडिका स्यात्
 तस्यां संस्थे जन्मभे मृत्युर्भातिः ।
 राज्ञां पीडाऽर्थक्षयो विप्रयोगः
 सौम्यैर्युक्ता सौख्यसम्पत्प्रदा स्यात् ॥

इति । अन्ये त्वाहुः—

अश्विन्यां नवकं मूलान्त्यार्धचत्वारिकं(?) तथा ।
 नक्षत्राणि शशाङ्कस्य भानोः शेषाणि योजयेत् ॥
 सूर्यभौमौ यदि स्यातां शत्रुसैन्यविनाशनौ ।
 चन्द्रभे यद्युभौ स्यातां स्वसैन्यस्य विनाशनम् ॥
 स्वस्वभे यद्युभौ स्यातां समं प्रोक्तं तदा बुधैः ।

इति । अंशचक्रम्—

अष्टाविंशोर्ध्वगा रेखा अष्टाविंशतितिर्यगाः ।
 अंशचक्रं भवत्येवं यदुक्तं ब्रह्मयामले ॥
 कृत्तिकादीनि भान्यत्र पादवर्णक्रमेण च ।
 सामिजिन्ति न्यसेद्वक्ष्यष्टाविंशतिसङ्ख्यया ॥
 यो ग्रहो यत्र ऋक्षांशे तं तत्रैव न्यसेद्बुधः ।
 वेदयेत्सम्मुखं वर्णं क्रूरो वाऽपि शुभोऽपि वा ॥
 आद्यंशेन चतुर्थांशं चतुर्थांशेन चादिमम् ।

द्वितीयेन तृतीयं तु तृतीयेन द्वितीयकम् ॥
 यस्य नामाक्षरं विद्धं अंशचक्रक्रमेण तु ।
 क्रूरेऽनिष्टं शुभे हा (ग्ला) निर्द्वयोर्मृत्युर्न संशयः ॥
 क्रूरोभयकृते वेधे भवेन्मृत्युर्न संशयः ।
 शुभोभयस्थिते वेधे व्याधिपीडा च बन्धनम् ॥
 वैधव्यं तु विवाहे स्याद्यात्रायां तु महद्भयम् ।
 योगे मृत्यू रणे भङ्गः क्रूरवेधे न संशयः ॥
 अद्रयः सागरा नद्यो दिशो (देशे) ग्रामपुराणि च ।
 क्रूरवेधे विनश्यन्ति किं पुनर्मनुजा भुवि ॥

इति ।

चन्द्रऋक्षांशको विद्धो भवेद्यद्यपरग्रहैः ।
 तन्मानं तद्दिनं वर्ज्यं सर्वत्र शुभकर्मणि ॥

इति । अथ ग्रहफणिचक्राणि—

ग्रहर्क्षाणि लिखेद्यत्र फणिचक्रे त्रिनाडिके ।
 नामऋक्षस्थितं यत्र ज्ञेयं तत्र शुभाशुभम् ॥
 हानिर्मृत्युश्च रोगश्च नाडिवेधगते ततः ।
 वर्जयेत् सर्वकार्येषु युद्धकाले विशेषतः ॥
 निर्वेधमृक्षमध्यस्थं यस्य नाम प्रजायते ।
 सिद्ध्यन्ति सर्वकार्याणि सङ्गमे विजयो भवेत् ॥
 न्यसेत् सजन्ममारभ्य मूर्धाक्षिगलबाहुषु ।
 पार्श्वयोः पादयोः युद्धे सर्वस्वायुधवीक्षितः ॥
 पापग्रहस्थितर्क्षेषु युद्धे शत्रूदिभिः क्ष (ज) यः (सह) ।

इत्यादीनि बहूनि वर्णितान्यप्यत्र द्रष्टव्यानि । वामसम्मुखगा इत्यत्र कचि-
 दपवादमाह ।

यात्रा शुभदा दक्षिणभागे दिग्धीशे केन्द्रे च
तथा तद्भवनस्याभ्युदये च । वाराधिपतिं दक्षिणसं-
स्थं शुभमस्यां शंसन्ति विलम्बे (वो) चोपचयस्थ
(स्यच) स्थितवारम् ॥ ११ ॥

यियासितदिक्पतौ ग्रहे यातुर्दक्षिणभागस्थिते ग्रहे सा यात्रा
शुभदा भवति ॥ पृष्ठभागे च शुभा यथोक्तं—

पृष्ठदक्षिणगे यात्रा दिग्धीशे विजयप्रदा ॥

इति । वामसम्मुखगे दिग्धीशे यात्रा न शुभदेत्यर्थादेव सिद्धं ॥ उक्तं
चान्यैः—

वामसम्मुखगे तस्मिन् यातुः प्राणार्थहारिणी ॥

इति । तत्रापि संमुखे विशेषतः । तथा च सर्वसिद्धार्थो यात्राकारः—

दिशि यस्यां योऽधिपतिः (तथा) तत्स्थे तस्मिन् न तां दिशम् ।

विजिगीषुः प्रतिष्ठेत कार्येऽप्यात्ययिकेऽपि ॥

इति । अत्रापि प्रागल्भादिराशिचक्रभ्रमणेन सम्मुखगो ललाटग इत्युच्यते ।

तथा च नारदः—

लग्नस्थो भास्करः प्राच्यां दिशि यातुर्ललाटगः ।

द्वादशैकादशे शुक्र आग्नेय्यां तु ललाटगः ॥

दशमस्थः कुजो लग्नात् याम्यायां तु ललाटगः ।

नवमाष्टमगो राहुः नैऋत्यां तु ललाटगः ॥

लग्नात्सप्तमगः सौरिः प्रतीच्यां तु ललाटगः ।

षष्ठपञ्चमगश्चन्द्रो वायव्यां तु ललाटगः ॥

चतुर्थस्थानगः सौम्य उदीच्यां तु ललाटगः ।

द्वित्रिस्थानगतो जीव ऐशान्यां तु ललाटगः ॥

ललाटगं तं संत्यज्य जीवितेच्छुः व्रजेन्नृपः ।

दिगीश्वरे ललाटस्थे यातुर्न पुनरागमः ॥

इति । दिग्धीशे केन्द्रे च स्थिते तथा यात्रा । याता यां दिशं जिग-
मिषति तद्दिगीशं ग्रहं तत्काललग्ने केन्द्रे कृत्वा व्रजेदित्यर्थः । तथा
चोक्तम् —

ललाटगे न प्रविशेद्दिगीशे गन्तव्यमस्मिन् खलु कण्टकस्थे ।

इति । अपि तु यात्रालग्नकेन्द्रभेषु यत्र राशौ यो ग्रहो यियासितदिग-
र्धाशः पूर्णदिग्बलः स्यात्तत्काललग्नकेन्द्रे तद्राशौ " परिहरेन्मनसापि न
दिग्बलान्वितदिगधिपे (१) ताम् " इति वचनात् । तथा याता प्रार्चा गन्तु-
मिच्छन् तदधिपतौ सूर्ये दिशामभिदिग्बलान्विते याता लग्नकेन्द्रे दशमे
राशौ स्थिते सति तां दिशं मनसापि न गच्छेत् । एवमग्नेयी गच्छन्
शुके चतुर्थस्थे तां न गच्छेत् । एवमन्याश्च स्वाधिपतिषु पूर्णदि-
ग्बलस्थानेषु गतेषु न व्रजेत् । तथा तस्य दिक्पतेर्भवनस्य राशेरुदये च
यात्रा न शुभदा । याता यां दिशं गन्तुमिच्छति तद्दिक्पतेर्ग्रहस्य राश्यु-
दये तां ययात् । तथा च गुरुः—

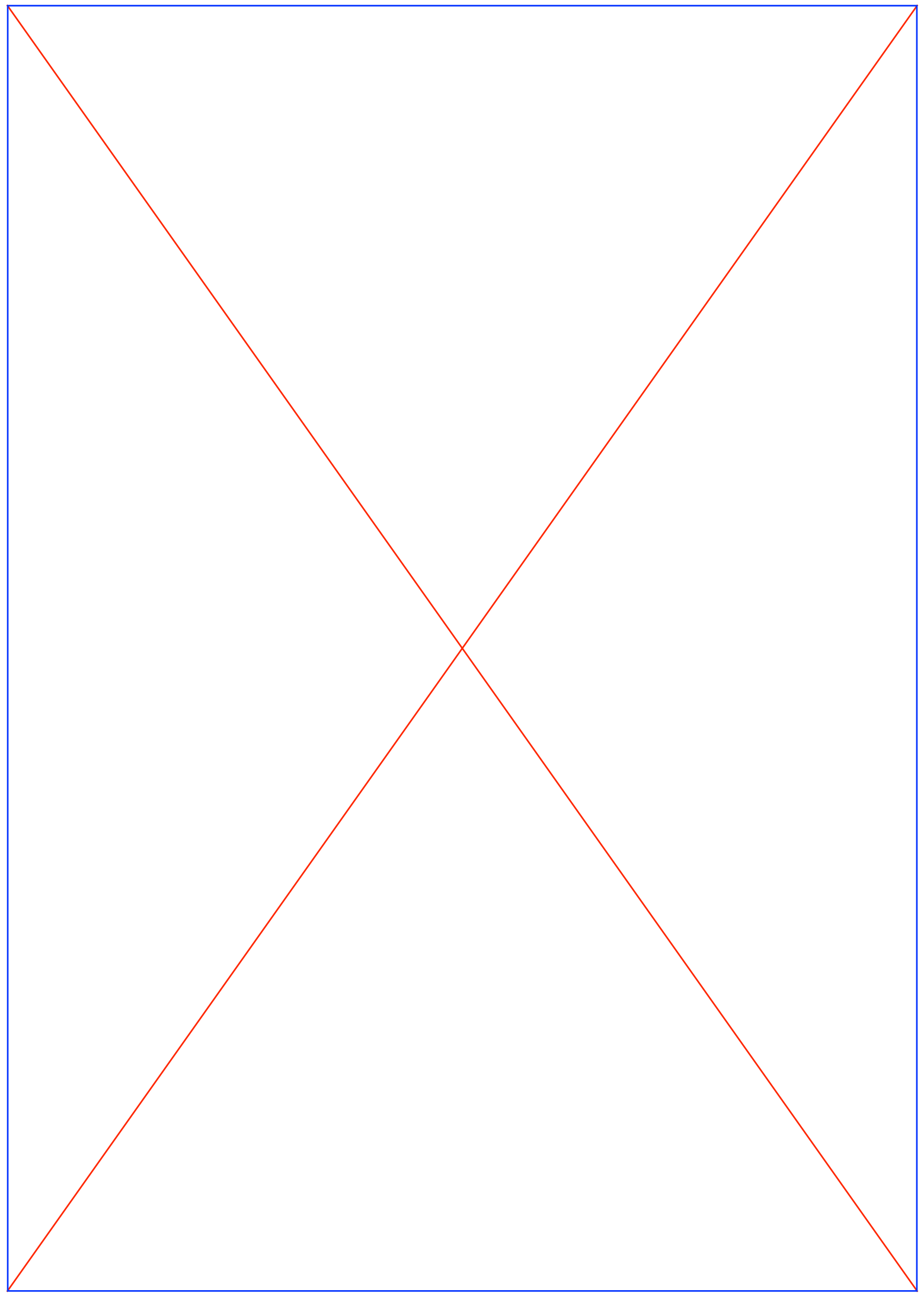
यतो दिगीशगे यात्रा शोभना प्रतिलोमगा ।

अशोभना नृपस्तस्मात् दिगीशर्क्षोदये व्रजेत् ॥

इति । अथवा यातुर्यियासितस्थितदिग्ग्राशेरुदये यात्रा शुभदेति । दिग्ग्रा-
शिस्तु वराहमिहिरेणोक्तः—

प्रागादीशाः क्रियवृषनृयक्कर्कटाः सत्रिकोणा ।

इति । तत्तद्दिग्ग्राश्युदये तत्तद्दिग्गमनं शुभदं । प्रतिराश्युदये मेषसिंह-
चापानां पूर्वदिग्ग्राशीनामुदये पूर्वा दिशं यायात् । तत्प्रतिदिग्ग्राशीना-
मुदये न व्रजेत् । दक्षिणादिगगतानां वृषकन्यामकरराशीनामुदये दक्षिणां
दिशं व्रजेत् । तत्प्रतिदिग्गतानां कर्कटकवृश्चिकमीनराशीनामुदये दक्षिणां



तथा च श्रीपतिः—

यस्य जन्मानि शुभग्रहाश्रितो यस्य राशिरिह वे (श्च) शिसंज्ञितः ।
यश्च शत्रुभवनाधिनैधनो लग्नगः स गमने शुभावहः ॥

इति । वराहमिहिरोऽपि—

सौम्योऽपि जन्मानि लयं शुभपुष्टिदाता
स्थानेन तस्य शुभदं व्रजतो विलम्बे ।
पापोऽपि यः शुभफलं प्रकरोति पुसां
स्थानं विलम्बगतमिष्टमुशान्ति तस्य ॥

अथवा यातुर्जन्मविलम्बयोर्विधेयतया अनुकूलस्य राशेरुदये यात्रा
शुभदा । तथा च वराहमिहिरः —

सविपस्यतामुपेते(?) स्वलम्बर्क्षयोर्विलम्बर्क्षे ।
अपचयकरेऽपि यदा यातुर्जयधनमानगाः क्षि(प्राः)प्रम् ॥

गशीनां विधेयत्वं च तेनैवोक्तं—

स्थलजलसरीसृपास्त्वकानां बलमभिवीक्ष्य विधेयतां भजन्ते ।
विषमगृहवशे सगा द्युसंस्था निशि विषमाः समवर्तिनः समानाः ॥
इति । स्वजन्मलग्नयोरविधेयराशौ यात्रा धनक्षयायासकरीत्युक्तमेव ।
यदुक्तं—

अविधेयं भवनं यत्स्वजन्मलग्नर्क्षयोः प्रयातृणाम् ।
अप्यनुकूलं लग्नं धनक्षयायासदं भवति ॥

इति । यात्राया विषये तद्दिनवाराधिपतिर्यातुर्दक्षिणसंस्थः शुभः । ग्रंथमन्ति
वदन्ति । यथाऽऽह गुरुः । नारदेवाभिप्रायेण (?)

यात्रायाश्शुभदा वारा वारेशे दक्षिणे गते ।
शुशुभ यातुरेव स्याज्जयश्चैव भविष्यति ॥

अथवा सर्वभावेषु प्रशस्तत्वात्सममिति लग्नमुच्यते ॥ तत्र स्थितः संस्थः

(लग्न) अनुकूलो दक्षिणो अनुकूलः सुहृत् संस्थितो यस्य तं दक्षिणसंस्थं लग्नस्थग्रहसुहृदं वाराधिपं शुभमाहुः । लग्नस्थग्रहस्य सुहृद्वारे यात्रा शुभ-
देत्यर्थः । तथा च महायात्रायां —

रिपुदिवसो यस्य भवेत्सौम्योऽपि विलग्नगो न शुभदानम् ।

पापोऽपीष्टं जनयति मित्रं स्वदिने विलग्नस्थः ॥

इति । विलग्नयात्रालग्नस्य उपचयस्थानगतस्य वारं शुभं वदन्ति ।
वाराधिपतेर्लग्नादुचयस्थाने श्रेष्ठ इत्यर्थः । तथाहात्रिः—

प्रशस्तफलदाः क्रूराः यात्रासूपचयं गताः ।

सन्तोऽप्युपचयस्थाश्चेत् स्ववारेऽपि न शोभ(ने)नाः ॥

इति । अथवा यातुर्विलग्नगो जन्मलग्नक्षयोरुपचयगः^१ स्थितस्य वारं
शुभमाहुः । यातुः स्वजन्म^(१)भीष्टस्य वारे यात्रा कार्येत्यर्थः । दिनभांशवि-
धिस्तथा स्यादिति । दिनादेः ग्रहवदतिदेशात् ॥ लग्नदोषानाऽऽह—

यातुर्जन्मविलग्नयोर्मृतिगृहे लग्नेऽथवा शत्रुभे
यद्वा षष्ठपतौ तयोर्मृतिगृहेऽधीशोऽथ वा लग्नगे ।
तद्भ्रूवर्लहीनयोरथ तयोः पापग्रहारूढयोः निर्वी-
योसु दिगीशसौम्यतनुषु प्राणान् प्रयाण हरेत् ॥१२

यातुर्जन्मराशि जन्मविलग्नयोर्मृतिगृहेऽष्टमराशौ शत्रुभे षष्ठराशौ
वा यात्रालग्नौ सति । यद्वा—तयोर्जन्मविलग्नराश्यां षष्ठराश्यधिपे वा
यात्रालग्नौ सति । अथवा तयोस्तद्भ्रूवर्लहीनयोरथ तयोः पापग्रहारूढयोः निर्वी-
योसु दिगीशसौम्यतनुषु प्राणान् प्रयाण हरेत् । दिगीशो—यातव्यदिक्पतिः सौम्या शुभग्रहाः तनुर्या-
त्रालग्नं तासु दिगीशसौम्यतनुषु यथोक्तवलवर्जितासु यात्रा यातुः प्राणान्

यात्राया लम्बदोषा

हरेत्—विनाशयेत् एवंविधे लग्ने यदि यात्रा क्रियते सा प्राणा-
नपि नाशयति किमुत धनादिकमित्यर्थः ॥ अत्र गुरुराह—

यस्य जन्मनि चन्द्रस्थराशिर्जन्मर्क्ष एव च ।

हिबुकास्तगतौ पापदृष्टियुक्तौ न शोभनौ ॥

तयोरेवाधिपौ तद्वदस्तौ वा बलवार्जितौ ।

तदा यातो नरो नश्येत्प्राणसंशयमात्रजेत् ॥

होराष्टमे लग्नगृहाष्टमे वा

तच्छत्रुभे शत्रुगृहोदये वा ।

तद्राशिवैरागमनं विलम्बे

स्तुल्यं नराणां विषमक्षणेन ॥

इति । गुरुः—

सौम्यग्रहाः विलम्बं च यदा वीर्यविवर्जिताः ।

लग्नकेन्द्रं च शून्यं चेत् तदा यातुर्विषोपमम् ॥

इति ।

स्वाष्टलग्नेष्टराशौ वा यात्राभात् षष्ठपोऽपि वा ।

तेषामाशिस्थराशौ वा यातुर्मृत्युर्न संशयः ॥

इति । जन्मलग्नप्रभृतिषु द्वादशसु स्थानेष्वपि लग्नगतेषु फलमुक्तम्
महायात्रायाम् —

क्लेशाद्विनाफलमरिक्षयमर्थासिद्धि

प्राप्नोति लग्नसहितं प्रवसा(न्) स्वलग्ने ।

अर्थक्षयं सममनर्थमतो द्वितीये

कल्याणसौख्यविभवागममाहुरेके ॥

भृत्यार्थवाहनसहायजयस्तृतीये

गन्धार्थनाशभयसैन्यलयाश्चतुर्थे ।

मन्त्रोपजापविपदात्मजभेऽरिभीतिः

षष्ठेऽरिवित्तबलदीप्तजयागमाश्च ॥

द्युनेऽध्ववाहनविपत् क्षुदतिश्रमार्ति-

बन्धो वधः परिभवो निधने रुजश्च ।

धर्मेऽर्थनाशगदकार्यविपद्भयानि

कार्यं विना बलभयं दशमे क्षयश्च ॥

कोचिद्वदन्त्युपचयोपगृहीतमेत-

त्तस्माच्छुभं दशमभे गमनं विलम्बे ।

अर्थाप्तिदीप्तिशुभसन्धिजयं च लाभे

रिप्पे छलं व्ययमवे विजितेऽपि भेद ॥

इति । जन्मराशिप्रभृति द्वादशसु स्थानेषु लग्नगतेष्वप्येवं फलमुक्तम् ।

क्वचित्क्वचिद्विशेषोऽस्ति । स चोक्तः—

रोगाज्जन्मगृहोदये मुतवधूसिद्धिश्च तत्पञ्चमे

द्युने क्लेशमवाप्य जन्मभवनात् प्राप्नोति पश्चात् सुखम् ।

मार्गादेव निवर्तनं नवमभे भेषूरणेऽर्थागमः

शेषर्क्षेषु यथैव लग्नभवनात् तद्वत् फलं जन्मतः ॥

इति । अभियोज्यस्य शत्रोर्जन्मलग्नाभ्यामष्टमे राशौ यातुः शत्रुक्षयः

ताभ्यां षष्ठभे स्वनाशः यथाऽऽह सत्यः—

रिपुनिधनशत्रु(वधो) बाधः रिपुषष्ठे लग्नगे यातुः ।

इति । जन्मलग्नेशौ क्रूरौ चेदुपचयस्थौ शुभौ चेतकेन्द्रस्थौ बलिनौ

चान्यत्र बहलीनौ अशुभौ स्तः । यथोक्तम्—

जन्मोदयपौ बलहीनौ उपचयकण्टकगौ शुभप्रदौ ।

इति । यदा जन्मलग्नेशौ सूर्यद्वितीयराशिस्थौ पश्चात्सांघिगथौ सूर्यद्वादश-

राशिस्थौ प्राक्सन्धिगतौ वा सूर्यमण्डलेऽस्तमितः तदा नशुभप्रदौ

शुक्रमन्दौ तादृशावपि शुभप्रदौ । यथाऽऽह बादरायणः—

सन्ध्या सवितृच्छन्ना (१) नेष्टाः स्वदशाकाले विलम्बेशाः ।

अन्यत्र भृगुराशिभ्यां रविमण्डलनिस्सृतान्तः (२) ॥

इति । जन्मलग्नयोः पापग्रहारूढयोरिति कथनं ग्रहदौस्थ्योपलक्षणार्थं ।

तेन जन्मलग्नयोः क्रूरग्रहदौस्थ्ये यात्रां न कुर्यादित्युक्तम् । यथाऽऽह
रत्नः—

ग्रहदौस्थ्ये विश्वासं परगृहगमनं च दूरतो यानम् ।

साहसमकालचर्या मृगयां हयवाहनं त्यजेद्भूपः ॥

इति । बलवति दिक्पतौ यात्रा शुभदेत्युक्ता । तथा च गुरुः—

शत्रोर्विक्रमजन्मेशौ विबलौ च सजन्मपे ।

विबले दिक्पतौ स्वस्थे व्रजेदनभिवक्र(ता)गे ॥

इति । तस्मिन् बलहीने सापि शुभदा । सौम्यग्रहेषु निर्वीर्येषु नीचारातिगेषु लग्ने च निर्वीर्येऽष्टकवर्गादिशुद्धिहीने यात्रा न शुभदा । सा समाधमा । अत्र षट्प्रकारां यात्रामाहुः । अत्र वराहमिहिरः—

मध्यमाधमोत्तमसममध्याधमोत्कृष्टा ।

मध्योत्तमा च षष्ठा यात्रा यात्रावतामिष्टा ॥

इति । तल्लक्षणं शास्त्रान्तरोक्तं यथा—

अष्टकवर्गविशुद्धैर्नीचारिगतैश्च या यात्रा ।

मध्याधमा निगदिता समानफलदैः समप्राया ॥

सत्फलदशाविपाके नीचारिगतेषु भवति सौम्येषु ।

अधमोत्तमा हि यात्रा प्रयुज्यते क्षिप्रकार्येषु ॥

अष्टकवर्गविशुद्धैः स्ववर्गभवनोपगैश्च या यात्रा ।

सममध्या गदिता सा रिक्तदशा पाकसंस्थिते शत्रौ ॥

तात्कालिकलग्नाद्यैः परिशुद्धिर्नीचगेष्वपि कथञ्चित् ।

अधमाधमा जिगीषोर्दद्याद्यात्रां स्वविषये प्रयातस्य ॥

सत्फलदशाविपाके त्रिकोणतुङ्गोपगेषु सौम्येषु ।

यात्रोत्तमोत्तमा सा सर्वत्र फलप्रदा यातुः ॥

अष्टकवर्गे बलिभिः त्रिकोणतुङ्गोपगैः सर्वैः ।

मध्योत्तमा हि यात्रा परदेशे शत्रुसाधिनी यातुः ॥

इत्येवं सर्वकार्येष्वपि षड्भेदाः स्युः । तुङ्गत्रिकोणगेषु सौम्येषु तात्कालिकलभ्यादिशुद्ध्या या यात्रा क्रियते सोत्तमा । तथा स्वमित्रगेषु तात्कालिकलभ्यादिशुद्ध्या मध्यमा । सत्फलदशाविपाके स्वमित्रग्रहगैः उत्तममध्यमेत्यादयो भेदाः किं न पृथगुक्ताः, उच्यते, संज्ञातुल्यत्वात् । सामान्यफलत्वाच्च । षष्ठे च यात्रोक्ता । अधमाधमाश्च यात्राभेदा विषयविभागेन यात्राप्रतिनिवृत्त्यादिकालेषु योजनीयाः । अथ ताराबलविशेषमाह—

गमनेषु पञ्चविंशं नक्षत्रं सप्तविंशमपि कर्तुः ।

त्याज्यं मुनयो ब्रुवते केचित् सर्वत्र शुभकार्ये ॥

कर्तुः—यात्रादिकर्तुः जन्मक्षार्त्पञ्चविंशं सप्तविंशं च ताराद्वयं गमनेषु—परराष्ट्रादियात्राक्रियासु त्याज्यामिति गुर्वादयो वदन्ति । केचिन्मुनयः पञ्चविंशं सप्तविंशं च ताराद्वयं सर्वत्र शुभकार्ये वर्ज्यमाहुः । तथाच गुरुः—

सप्तविंशं च नक्षत्रं पञ्चविंशं च शोभने ।

वर्जनीये प्रयत्नेन यात्रायां तु विशेषतः ॥

इति । यात्रायां जन्मलभ्याभ्यां उपचयस्थः चन्द्रः शुभः । तथाऽऽह गुरुः—

लभ्याज्जन्मक्षतो वाऽपि चन्द्रेऽनुपचयं गते ।

क्षीणे चाशुभदा यात्रा सम्पूर्णोपचये शुभा ॥

इति । अनुपचयेऽपि सप्तमे जन्मानि च शुभ इत्यन्ये । यथाऽऽह—

उपचयगृहसप्तमगः शुभः शशी जन्मगोऽपि यात्रायाम् ।

इति । जन्मगो न शुभ इत्यन्ये । यथाऽऽह सत्यः—

जन्मर्क्षगश्च चन्द्रो यातुर्नेष्टो ह्यनिष्टफलदत्वात् ।

तस्माद्यात्रासमये जन्मानि चन्द्रस्य जन्म भवेत् ॥

इति । तत्रापि जातकोक्ततत्कालाष्टकवर्गविधिना यदा शुभस्तदा शुभ-
मेव करोति । यथाऽऽह वराहमिहिरः—

अष्टवर्गपरिशोभितः शशी श्रेष्ठतां समनुवर्तते यदा ।

जन्मगोऽपि हि तदा प्रशस्यते योऽष्टवर्गशुभदः स शोभनः ॥

इति । अन्यस्थानगतोऽप्यष्टवर्गशुभदः स शोभन इति । जन्मादि-
स्थानगतो गोचरेण शुभदश्चन्द्रस्तदानीं जन्मराशितः पञ्चमस्थाने यद्यन्यो
ग्रहस्तिष्ठति तेन चन्द्रो विध्यते । विद्धश्चानिष्टदः । अथ विपरीतवेध
गतोऽनिष्टदोऽपि शुभदः । यथा जन्मराशितः पञ्चमे चन्द्रोऽनिष्टदः ।
तदानीं जन्मानि युद्यन्यो ग्रहस्तिष्ठति तेन चन्द्रो वामेन विध्यते । वाम-
वेधगतः शुभदः । तथाच स्वल्पयात्रायां—

जन्मानि त्रिषडेकादशसप्तमगोऽपि नेप्यते चन्द्रः ।

पञ्चमवान्त्याष्टजतुर्वेधगत ॥

इति । अत्र गोचरस्य स्थूलमार्गेण फलत्वात् तद्वेधस्य अनियतत्वाच्च
तयोः प्रामाण्यं मन्वानैराचार्यैरष्टकवर्गशुद्धिरेवाङ्गीकृता । यथोक्तं वासि-
ष्ठेन—

शुद्धाष्टवर्गशशिना प्रवदेद्वेधजं फलम् ।

गोचराभिहितं चैव न वेधफलमिष्यते ॥

इति । अथ यस्मिन् मासे चन्द्रो यस्य जन्मर्क्षयोगताराया दक्षिणेन
गच्छति स तस्मिन् मासे यात्रां न कुर्यात् । यस्मिन् मासे शुक्लपक्ष-
प्रतिपत्प्रारम्भे यायी ग्रहयोः सितारयोः राशिषु प्राप्तः तदा यायी जयति ।
तस्मिन् यायात् । यदा पौरग्रहाणां बुधगुरुमन्दानां राशिषु स्थितस्तदा

पौराणां जय इति नचात्र यायात् स्थायी स्यात् । कृष्णप्रतिप-
त्पारम्भे यायिक्षेत्रगतश्चैत्पौराणां क्षय इति अत्र यायात् । यथाऽऽह
वराहमिहिरः—

यस्योत्सृजत्युडुपतिः पुरुषोऽपसव्य

जन्मक्षमापदमुपैति स भूमिपालः ।

यायी तथेतरगृहोपगते तदादौ

यायीतरेश्वरजयो बहुवेक्षणाय^(१) ॥

इत्युक्तन्यायेन अशुभदेऽपि पक्षे चन्द्रो यद्यनुकूलराशिगः सौम्यमध्यस्थो-
मित्रवश्यकारकाख्यग्रहगृहगतः शुभकर्ता च भवति । पापाभिलाषी-
शच्चादिक्षेत्रगतत्वात् अशुभद एव । यथोक्तं मिहिरेण—

उपचयगृहयुक्तः सव्यगः शुक्लपक्षे

शुभमभिवशमान^(२) सौम्यमध्यस्थितो वा ।

स हि वशिगृहयुक्तः कारकक्षेऽपि चेन्दुः

जयसुखधनदाता तत्प्रहर्ताऽन्यनाथः ॥

इति । मित्राण्युक्तानि वश्यस्तु यो यस्य दशमगृहगः स तस्य वश्यो
भवेदित्युक्तः । यातुर्जन्मकाले चन्द्रतो दशमस्थानगतो ग्रहः कारकः
स्वर्क्षतुङ्गमूलत्रिकोणगाः कण्टकेषु यावन्त आस्थाताः सर्व एव तेऽन्यो-
न्यकारकाः । कर्मगस्तु तेषां विशेषत इत्युक्ता^(३) यातुर्जन्मकाले चन्द्र-
केन्द्रगा बलिनो ग्रहाः यात्रायां यदि चन्द्रः स्वमित्रवश्यकारकक्षे नैव
स्थितस्तदा तद्वलं नान्यतो वश्यम् । यथाऽऽह वराहमिहिरः—

प्रक्षीणेऽप्यनुपचयस्थितेऽपि यायात्

विस्तब्धं यदि शिखिवश्यकारकक्षेः ।

नैवं चेदुदयगृहात् स्वजन्मभाद्रा

सम्पूर्णेऽप्युपचयगेऽपि न प्रयायात् ॥

इति । अथ यात्राविहितान् राशीनाह—

मूर्धोदयोर्ध्ववदनाः शुभसंयुताश्चेत् ग्राह्याः स्थि-
रा अपि गृहाः कलशस्तु मध्यः । वक्रां करो-
त्यनिमिषः पदवीं पियासोः याने नृयुग्मम-
शुभं निजगाद गार्ग्यः ॥ १४ ॥

मूर्धोदयाः — मिथुनसिंहादयः । ऊर्ध्ववदनाः—सूर्यमुक्तकेन्द्रराश-
यः । मूर्धोदयोर्ध्ववदनग्रहराशयः चरा यात्रायां ग्राह्या इत्युक्तास्थताविधा
स्थिरराशयोऽपि शुभग्रहयुक्ताश्चन्द्राद्याः अन्यथा वर्ज्याः । अतस्ते
मध्यमाः । कलशः—कुम्भराशिः । मूर्धोदयोर्ध्वमुखस्तु शुभसंयुतोऽपि याने
मध्यः । अन्यथा वर्ज्य एव । यथाऽऽह गुरुः—

ऊर्ध्वास्य शोभनो राशिः तिर्यगास्यश्च शोभनः ॥

अधोमुखो विनाशाय यात्रायां लग्नमागतः ।

मूर्धोदया शुभास्सर्वे चराश्चैव विशेषतः ॥

इति । वराहमिहिरोऽप्याह—

शीर्षोदये समभिवाञ्छति कार्यसिद्धिम् ।

पृष्ठोदयेऽपि बलविद्रवाश्चेति ॥

नारदः—

क्रूरग्रहोक्षितयुतो द्विस्वभावोऽपि निन्दितः ।

याने स्थिरोदयो नेष्टः शुभयुक्तोक्षित रशुभः ॥

इति । कुम्भस्तदंशश्च नेष्टः । यथाऽऽह श्रीपतिः—

नेष्टः कुम्भो प्युद्गमेऽंशे स्थिरे वा

लग्ने चांशेऽप्यस्य नौयानमिष्टम् ॥

इति । तथाऽपि शुभ इत्युक्तेः, (१) यत उक्तम्—

रवीक्षणासनाभ्यां तु राशेर्भावो निवर्तते ॥

इति । ‘पापास्पदानि शुभवीक्षणसम्प्रयोगादिति’ च । द्विस्वभावे च । अनिमिषे—मीनराशिः यियासो. जनस्य पदवी वक्रां—मार्गं कुटिलं करोति । मीनलम्बे तदंशे वा कार्यसिद्धिः स्यान्नवृत्तिश्च । तत्रेति यात्रायां नृत्युग्मं—मिथुनलम्बं । अशुभं गार्ग्यो निजगाद—उक्तवान् । तथा च तद्वाक्यम्—

करग्रहश्चाद्भुतगतिर्द्रुमार्पणं

प्रियानुदृष्टिः प्रथमा वधूगतिः ।

गृहक्रियाकर्षणपूजनागमाः

कृषिश्च विद्या न शुभं क्रियादिषु ॥

इति । (के)(श्चि)चिदूर्ध्वमुखी होरां याने शस्ते(त्युक्ता)त्याहुः । तथा च वराहमिहिरः—

दत्ते वाञ्छितकार्यमूर्ध्ववदनाः क्लेशाद्विना लग्नभात्

क्लेशायासपरिक्षयं च कुरुते तिर्यङ्मुखी गच्छतः ।

सैन्यध्वंसमधोमुखी प्रकुरुते कृच्छ्राद्गृहे चा(ष्टमं)गमं

सर्वाः पु(ष्टि)प्पफलप्रदाः स्वपतिना दृष्टा न पापग्रहैः ॥

इति । अत्र होराणां ऊर्ध्वाधस्तिर्यङ्मुखत्वं सूर्यमुक्ताक्रान्ता-
नागतत्वेन द्रष्टव्यम् ॥ तथा च जीवशर्मा—

मुक्ता सूर्येण या होरा सा तूर्ध्ववदना स्मृता ।

आक्रान्ता स्यात्तिर्यगास्याऽधोमुखी या प्रयास्यतः ॥

इति । कैश्चिच्चरराशिषु होरा ऊर्ध्वास्याद्या उक्ताः । तथा च सि-
द्धान्तः—

होरोर्ध्वास्या चरेष्वाद्या द्वितीया तिर्यगानना ।

स्थिरेष्वधोमुखी पूर्वा द्वितीयोर्ध्वानना स्मृता ॥

क्षेत्रेषु द्विशरीरेषु होरा स्यात्तिर्यगानना ।

अधो वक्त्रानुपाश्चात्याः(?) सर्वत्रैव प्रचक्षते ॥

इति । कैश्चिन्मीनवृश्चिककटेषु लग्ने वृश्चिके च ।

अन्ये राश्युदये यात्रां न कुर्याद्विजयी नृपः ।

इति । दिवा दिनबलेषु नक्तं रात्रिबलेषु यानं शस्तम् । न दिवा रात्रिबलेषु नक्तं दिनबलेषु यानमिष्टम् । तथा च वराहमिहिरः—

शस्ता दिवा दिनबले निशि नक्तवीर्ये

राशौ विपर्ययबले तु गमोऽप्यनिष्टः ।

इति । केचिल्लग्नार्कचन्द्रेषु त्रिषु चरराशिस्थेषु स्वदेशगमनं द्वन्द्वस्थेषु सर्वत्र गमनं प्रशस्तमाहुः । तथाच सिद्धार्थः—

चरलग्नादिसंस्थेषु लग्नराशीन्दुभानुषु ।

परदेशाभिगमनं यशस्यं कार्यमिद्विकृत् ॥

स्थिरलग्ने स्थिरस्थेषु स्वदेशगमनं शुभम् ।

चरास्थिरात्मकस्थेषु यात्रा सर्वत्र शस्यते ॥

इति । केचित्तु—सूर्ये मेषसिंहचापराशिस्थे यात्रा शस्ता । मीनवृश्चिक-
ककटकस्थे कष्टा । अन्यराशिस्थे मध्येत्याहुः । तथाच वराहमिहिरः—

यात्राजसिंहशरगोपगते वरिष्ठा

मध्या शनैश्चरबुधोशनसां गृहेषु ।

भानौ कुलीरझषवृश्चिकगेऽतिहीना

इति । अन्यैश्च सूर्यादिक्षेत्रे लग्नगते सामान्येन फलमुक्तम् ॥ यथाऽऽह
वराहमिहिरः—

क्षुत्तृष्णार्तिमार्गनाशोऽक्षिरोगः

क्लेशावाप्तिस्तिग्मगोः प्राग्विलम्बे ।

शस्ता चान्द्रे देवतार्थस्वदेशे
 कौजे पित्तव्यालशस्त्राम्निपीडा ॥
 बौधे पुष्टिर्वाञ्छिताप्तिर्यशश्च
 जैवेऽर्थाप्तिस्स्थानमानोऽरिनाशः ।
 स्त्रीरत्नाप्तिः कार्यसिद्धिश्च शौक्रे
 मान्दे बन्धख्यापिनी चावमानः ॥

इति । एतत्सामान्यफलं तत्तदंशकेऽपि समम् । ऊर्ध्वे सामान्य-
 निमित्त(कं)जं विशेषफलं च लग्नद्रेक्काणानां च फलमुक्तं महायात्रायां—
 द्रेक्काणाकारचेष्टागुणसदृशफलं योजयेद्वाद्धिहेतोः
 द्रेक्काणे सौम्यरूपे कुसुमफलयुते रत्नभाण्डान्विते च ।
 सौम्यैर्दृष्टे जयस्स्यात् प्रहरणसहिते पापदृष्टे च भङ्गः
 साम्नौ दाहोऽथ भङ्गः सनिगलभुजगे पा(श)पयुक्ते च यातुः ॥
 इति । द्रेक्काणाकारचेष्टादिकं शास्त्रान्तरोक्तं संज्ञाध्याये लिखितम् ।
 सौम्यरूपाः द्रेक्काणानां प्रथमः कन्या तृतीयो मकरे द्वितीयः कुसुमयुताः ।
 सिंहे द्वितीयः कन्याप्रथमः फलयुक्ताः । कर्कटे प्रथमः । सायुधाः मेषे
 आद्यतृतीयौ कन्यातृतीयं धनुराद्यतृतीयौ मिथुने द्वितीयतृतीयौ कन्या
 तृतीयः तुला तृतीयः धनुराद्यतृतीयौ साग्निकाः । वृषे प्रथमः कुम्भे
 तृतीयः क्षुत्परा । मेषद्वितीयः तुलाद्वितीयः वृषे तृतीयः कर्कटे द्वितीयः
 सिंहे प्रथमः कुम्भे प्रथमः सर्प(पाश)भूताः । कर्कटे तृतीयः वृश्चिकाद्यतृ-
 तीयौ निगलभूतः । मकरप्रथमो रौद्ररूपः । वृषे तृतीयः एतेषां द्रेक्काणानां
 आकारचेष्टासदृशफलं वाच्यम् । लग्नगतानां ग्रहनवांशकानां फलमुक्तं
 वराहमिहिरेण—

नवभागे तिग्मांशोर्वाहननाशो विलग्नसंप्राप्ते ।
 कृच्छ्रात् स्वगृहागमनं प्रतापमृदुता च चन्द्रांशे ॥

कौजेऽग्निभयं बौधे मित्राप्तिधनागमा जैवे ।

भोगविवृद्धिः शौक्रे भृत्यविनाशो रविसुतांशे ॥

इति । अत्र केचिदाहुः—यस्मिन् ग्रहे लग्नगते यथाफलमुक्तं तत्रवांश-
केऽपि तदेव फलं । किंच शुभर्क्षे शुभनवांशे वा लग्नगते शत्रुबलैकदेशो
यातुः साहाय्यमुपैति । यथाऽऽह वराहमिहिरः—

यदुदयसुफलं ग्र(हैः)हे(ऽपदि) (प्रदि)ष्टं

जनयति तस्य नवांशके विलम्बे ।

शुभभवननवांशके सहायं

रिपुबलभागमुपैति यातुरद्धा ॥

इति । त्रिंशांशकेऽपि नवांशकवत्फलं वाच्यं । तथाचोक्तं—

यत्प्रोक्तं राश्युदये द्वादशभागेऽपि तत्फलं वाच्यम् ।

यच्च नवांशकविहितं त्रिंशांशस्योदये तत् स्यात् ॥

इति । अथ जलयात्राविहितनक्षत्रराश्यादिकमाह—

**मृदुक्षिप्रचरर्क्षेऽपि त्यक्त्वा मृगमृगांशकौ । जल-
राशौ विलम्बस्थे दूरं नौयानमिष्यते ॥ १५ ॥**

मृदूनि—चित्रामित्ररेवतीमृगशिरसः । क्षिप्राः—पुष्यहस्ताश्विन्यः ।
चराणि—श्रवणश्रविष्ठाशतभिषक्पुनर्वसुस्वात्यः । एषु नक्षत्रेषु जलराशौ
झषकुळीरकुम्भानामेकतमे विलम्बे दूरं नौयानं—नावा समुद्रे यानं तदि-
ष्यते । जलराशिरपि मकर. अन्यर्क्षेषु मकरांशश्च नौयाने वज्यो ।
'त्यक्त्वा मृगमृगांशकौ' इति पर्युदासात् । 'कुम्भराशिरजलो जलया
ने वज्य' इत्युक्त्वा नृयुक्तेऽपि जलधराभिधानयोगात् नौयाने प्रशस्तः ।
अथवा सोऽपि जलराशिरेव । यस्माच्छिवगुप्त—

कर्किमृगपश्चिमार्धं कुम्भो मीनश्च जलचरा प्रोक्ताः ।

इति । अन्यस्मिन्नपि यात्रोक्तलघ्ने कर्किकुम्भमीनांशके प्रवहणप्रयाण-
मिष्टम् । तथाच वराहमिहिरः—

नौयानमिष्टं दिनराशिलघ्ने तदंशके चान्यगृहोदयेऽपि ।

इति । गार्ग्यः—

नारायणार्कमृगशीर्षभम(मृक्षे)मर्कवायु-

पौष्णाश्वियुग्वसुषु कालबलं विलोक्य ।

यात्रा जलेषु वणिजामभिधीयतेऽन्यत्

सर्वं प्रयाणविधिनैव विचिन्तनीयम् ॥

इति । अन्यैर्नावां निर्माणादिप्रस्थापनान्तर्गमसु कालो निरूपितः । तथा-
च रुद्रभट्टः—

पौष्णाश्विसौम्यकरवासवविष्णुमैत्रै-

वारेभि(भि)जिद्धिषणयोर्विनिवेशिता नौः ।

सांयात्रिकस्य हितकृद्वसुदासगावः

स्त्रीसङ्गदा विविधलब्धिविधायिनी स्यात् ॥

पित्र्योत्तरात्रयमरुच्छततारकासु

दीर्घायुषी रविदिने स(ज)कलेन्दुवारे ।

पूर्वात्रयेषु सपुनर्वसुपुष्यचित्रा-

स्वल्पार्धदा विरचिता नियतं भवेन्नौः ॥

ज्येष्ठाश्विनैर्ऋतविरिञ्चविशाखभेषु

द्रागदह्यते हुतभुजा कुजवासरेऽपि ।

याम्याहिभूतपातिभानि पतीन्निहन्युः

शाक्यश्विनोः(?) पुळिनदेशविनाशमेति ॥

वारेषु यन्निगदितं सफलं भवेत्तत्

अन्यग्रहे स्वभवने स्वनवांशके च ।

प्रस्थानकर्मरचनासु निरस्तदोषा

द्वित्रीणि(?) बाणतुरगास्तिथयः शुभाः स्युः ॥

इति । अत्रिरत्र विशेषमाह—

पुण्यादित्येन्दुवस्वश्विमित्रार्का नौकृतौ शुभाः

त्वाष्ट्राजमघमूलान्त्या मध्या वायूत्तराधमाः ।

स्वात्युत्तरास्वर्थनाशः शेषताराः शुभाः गतौ

शुभयुक्ता अपि त्याज्या नौकृत्येऽश्विशताच्युताः ॥

इति । गार्ग्योऽपि—

‘अधी पुनर्वसुर्हस्तत्र्युत्तरास्वातीश्रवणनक्षत्राणि तिथिरयुग्मा नवमी
विवर्जिता पूर्वपक्षाश्रिता शुभा’ इति । ज्योतिषार्णवे—

जीवज्ञचन्द्रशुक्राणां वारांशादिषु कारयेत् ।

अर्कमन्दकुजानां तु वारांशादिषु वर्जयेत् ॥

चरोभयस्थिराः श्रेष्ठाः मध्या निन्धा यथाक्रमम् ।

इति । अपिचात्रिः—

वारांशोदयहोराद्या वर्ज्या आरार्कसौरिणाम् ।

गुरोर्वारोदयश्शस्तः शुक्रेन्द्रोर्जलपूरदा ॥

बुधस्य कूपभङ्गस्स्यात् कटस्यापि प्रभेदनम् ।

चरोर्ध्वदिक्शिराः शस्ता नौयाने चोभयांस्त्यजेत् ॥

शुभं नृत्ते धनं सिंहे मीने नौभ्योऽवरोहणम् ।

तुलायां च जलवेशं शुभोऽप्युक्षणि(?)तोरणम् ॥

अपि सद्दृष्टिसंयुक्तौ शूम्नान्त्यौ(?) शुभदौ न हि ।

आरम्भस्तु शुभोऽन्यत्र बलवान् दोषवर्जितः ॥

इति । गार्ग्यस्तु—

चरराशयः श्रेष्ठाः स्थिरराशयः विघ्नं कुर्वन्ति । उभयराशयो

विलम्बं कुर्वन्ति । अर्णवे—

चरोभयस्थिराः श्रेष्ठमध्यनिन्द्या यथाक्रमम् ।
इत्युक्तम् । तत्र शुभान्यपि भानि नौचक्रे निषिद्धानि त्याज्यानीत्यात्रिणो-
क्तानि । यथा—

शूलान्यर्केण मुक्तैष्यान्यध ऊर्ध्वत्रिभं क्रमात् ।
अवरोहमथारोहं उरश्शूलं बहिर्मुखम् ॥
पाताळमिति ता(भा)न्यकार्त् साभिजित्कं पुनस्त्रिभम् ।
आरोहपक्षे बहुलमवरोहेऽल्पसम्पदः ॥
जलोत्सेके बहिर्वक्त्रे शूले नाशश्च लोभमिः ।
अधः पतति पाताळे नौचक्रे यवनोदितम् ॥

इति । लग्नद्रेक्काणफलं रुद्रभट्टेनोक्तम्—

द्रेक्काणजं फलमतस्तपनादिकानां
नौकाविनाशजलभेदपरिश्रमाणि ।
क्षुत्पीडनं सकलशागममर्थलाभः
नौसिद्धिनाविकमृतिः^(?) पदपृच्छकानाम् ॥

नवांशकफलं —

अलाभं कलहं वह्निभयं हानिं धनागमम् ।
रुजं चोरभयं कु(र्यु)र्यात् सूर्यादीनां नवांश(का)कः ॥
तिर्यक् सुदारुफलकानि च संविधाय
शुद्धे दिने विविधवाद्यसुतोरणाद्यैः ।
पोताधिपं शुभदिनोदयभेन्दुयोगे
स्थाने शुभे सुवसनो द्विजपुण्यघोषैः ॥
पूजाहि^(?)कृद्दलनिवेदनमद्यमांसैः
विघ्नेश्वरादिविबुधाष्टकमर्चयेच्च ।
विघ्नेशमच्युतमजं वरुणं समीरं
विघ्नेश्वरं दिनकरं सुरसूत्रधारम् ॥

इति । ततश्च --

हारिद्रपिष्टकुसुमाङ्गदभूषिताङ्गं
 प्रस्थानदारुशुभदिक्षु यथाप्रया(मा)णम् ।
 संस्थाप्य नामयुतमुद्धतगीतवाद्यैः
 तत्रार्चयेत् प्रवहणाः शिवदेवताश्च ॥
 सद्रत्नगर्भफलकद्वितयं निवेश्य
 सङ्क्रन्दनं क्रमुकभोजनपानपुष्पैः ।
 संहृष्टनाविकजनस्तदहं प्रपूज्य
 पातं क्रमादुपरि कर्मविधिं विदध्यात् ॥
 प्रस्थानकोक्ततिथिवारमूहूर्तलम्बे
 सूत्रादिबन्धनविधानविधिं विधाय ।
 सञ्चालयेत् प्रतिजलं श्रुतिहस्तचित्रा
 भाग्यैन्दवेषु वरमङ्गलतूर्यघोषैः ॥
 आस्फालनैर्गुणहतौ समरप्रवासे
 क्षुत्तृणमृतिश्चलितवामतटौ च चौरात् ।
 तथ्यं तथा यदि लवमानपोतं
 तीरे तु दक्षिणकटिस्थितमर्थलाभम् ॥
 इत्थं परीक्ष्य तु शुभं शुभपार्श्वतश्चेत्
 तत्सम्प्रयाणतृणकाष्ठरसायुधाद्यैः ।
 पोतस्य पूर्णमुदरं नियमेन कुर्यात्
 तिप्योत्तरापितृजलान्तकवायुभेषु ॥
 कूपोच्छ्रयं ध्रुवहरीन्दुविशाखभेषु
 प्रस्थापयेत् ग्रहबलादि विचार्य काले ।
 पश्चाच्छुभेऽहि सुदृढं दृढपट्टबन्धं
 सश्रीफलं समकुटं सपताककेतुम् ॥

पौष्णाश्विनीश्रवणवासवतिष्यपूर्वा
 हस्तानुराधशशिभे शुभकारके वा ।
 वारे सुरेड्यसितयोः सुतिथौ तु योगे
 विष्ट्यादिदोषरहिते जलयानमिष्टम् ॥
 स्वीयानुकूलखचरस्य दिने विलम्बे
 भागेऽथ तोयचरराशिभवेऽन्यभेऽपि ।
 सौम्येऽथ खेटभवने तदधीशदृष्टे
 लब्ध्वा नभश्चरबलं जलयानमिष्टम् ॥

ग्रहभावबलं च तेनैवोक्तम्—

लभोपगा रिपुभयं गुणदण्डभङ्गे
 दैन्यं जले सकुशलं धनसौख्यलाभम् ।
 क्षेमोन्नपानवसुवस्त्रकलत्रभावः
 लब्धं दिवाकरमुखाः खचराः प्रकुर्युः ॥
 अर्धेऽर्धे(र्धे)लाभसुखदा गुरुशुक्रचन्द्राः
 चन्द्रात्मजस्सकलकामसमृद्धिदाता ।
 सूर्यस्समृद्धतनुतापकरोऽर्थहानिं
 भौमोऽर्कजश्च कुरुते जलयातृकाणाम् ॥
 सूर्येन्दुभौमभृगुर्जाकसुतास्तृतीये
 श्रेष्ठार्थलाभसहितं प्रियबन्धुयोगम् ।
 कुर्याद्बृहस्पतिरतीव गदप्रदः स्यात्
 चन्द्रात्मजश्च नृपतेर्भयमातनोति ॥
 तुर्ये गुरुः शुभकरो रविसौरभौमाः
 ग्रावाण(?)भेदभयभीतिकराः क्रमेण ।
 नौमज्जनं बहुजले बुधशुक्रचन्द्राः
 सांयात्रिकस्य विकेलन्दुकरांश्च(?) कुर्युः ॥

स्युः पञ्चमे शुभकरा बुधजीवशुक्रा
 वाणिज्यकृद्दिषदुपद्रवभीतिमार्किः ।
 नौभङ्गकृत् क्षितिसुतः क्षितिनाथशङ्का-
 क्लेशार्तिदः स्फुरदरातिकरौ रवीन्दू ॥
 षष्ठे दिवाकरशनैश्चरसोमसौम्याः
 सर्वार्थलाभकरणाय भवन्त्यवश्यम् ।
 ऋक्षेशशुक्रगुरव प्रियमानुषाद्यै
 संवासदुःखकलिदा जलयातृकाणाम् ॥
 जामित्रगा भृगुजजीवबुधा विदध्युः
 यात्रार्थसिद्धिमचिरागमनं नराणाम् ।
 सौरारसूर्यशशिनस्तु गदोद्भवादि
 त्रासं च पोतपतिजीवन^(१)नाविकानाम् ॥
 मृत्युस्थिताः प्रमदमङ्गलवाञ्छितार्थान्
 नौयानकस्य नियतं बुधजीवशुक्राः ।
 प्रद्योतनक्षितिसुतार्कसुतान्निपुत्राः
 सन्त्रासयन्ति तु मनांस्युपपादयन्ति ॥
 धर्मे बुधार्कवसुधासुतमित्रपुत्राः
 सर्वार्थनिष्फलकरा समजा^(२) स्फुजित् स्यात् ।
 जीवो हि जैत्रगमिनां धनलाभकर्ता
 चन्द्रः सशूलवनिताकलहप्रदश्च ॥
 कर्मस्थिते दिनमणौ क्ष(कृ)तकृत्यजातो
 लाभान्वितो भृगुसुते क्षितिजे रुगार्तिः(प्ति)ः ।
 चन्द्रे गुरौ रविसुते ऽब्जसुते च चोरात्
 क्षेमङ्करश्च चकिते जलयातृकाणाम् ।

लाभे भवन्ति शुभदाः विभवप्रदाश्च
 प्रौढाश्च ¹सन्नकरमाठतदानदक्षाः ॥
 सूर्येन्दुभौमबुधजीवसितार्कपुत्रा
 निर्यायकप्रवहणाधिपनाविकानाम् ।
 अन्त्ये धनव्ययकरौ हरिदश्चशुक्रौ
 भौमार्कजौ ज्वलनशस्त्रविघातदौ स्तः ॥
 त्रासं प्रयोगनृपमन्यवणिग्विवादं
 दद्युर्गुरुक्ष^(१)शशिनो जलयातृकाणाम् ॥

इति । अन्ये त्वाहुः—

सूर्यस्त्रिषड्दशमगः च्यारिगौ यमारौ
 च्यर्थे शशी ²त्रितनुखाम्बुबधोक्ताक्षः^(१) ।
 हित्वाऽन्य(म)ध्वरि^(?)मृत्युारिभे कलिः स्यात्
 नौयानलघ्नत इमे शुभदा उपान्त्ये ॥

इति । गार्ग्य आह—

गुरुशुक्रबुधा उदयस्थाः तृतीयनवमदशमस्थाः केन्द्रस्थाश्च शुभ-
 ग्रहाः तृतीयनवमदशमस्था द्वादशस्थाश्च शुभाः । चन्द्र उदयधनषष्ठ-
 सप्तमगः । ज्योतिषार्णवे—

केन्द्रत्रिधर्मरिप्फेषु शुभाः सर्वे शुभावहाः ।
 त्रिषडायगताः पपाः विशेषेण शुभप्रदाः ॥
 अष्टमस्थाः ग्रहास्सर्वे नेष्टाः पुत्रयुतः शशी ।

इति । अत्र नावाधिपस्य नक्षत्रादि राजवदन्वक्ष्य वक्तव्यमिति वदता
 तयोरष्टमराश्यादिवर्गमुक्तम् ॥

शक्रद्विदेवपवनोरगरौद्रधिष्ण्ये
 क्रूरस्य वाऽथ शुभस्तेटगृहे सपापे ।

¹ सन्नकरमातुरदानक्षा. ² त्रितनुखाऽम्बुनगोर्किताक्षः

नौमुच्यतेऽष्टमगृहेऽपि तथाऽन्यतीरे

नाशोऽधिपप्रवहणाधिपयोः किल स्यात् ॥

इति । अथ नौयात्रायोगाः—मेषोदये लाभस्थे शुके दशमस्थे चन्द्रे पञ्चममे जीवे योगो नौविवर्जने । कुलीरे चन्द्रोदये लाभे^(१) गुरौ कर्मणि शुके वा, तुलायां शुक्रोदये लाभे चन्द्रे बन्धुस्थे गुरौ वा, मकरे गुरुदये लाभे चन्द्रे बुधे वा योगचतुष्टयमाहुः । अस्मिन्न नक्षत्रं न तिथिर्नाष्ट-मराशिर्न पापक्षेत्रं । सर्वत्राष्टमाः पापग्रहाः नेष्टाः । योगे बुधमष्ट-मस्थमपि प्रशंसन्ति । एवंविधे लग्ने नावमारुरुक्षुः तत्पतिः प्रागेव लग्नकालात्तद्दिने होमदेवतायागवल्यादिकं कुर्यात् । अत्र गार्ग्यः—

अथ नौकाया ^(१)उत्तरदिग्गोमयेन गोचर्ममात्रं स्थण्डिलमुप-लिप्याग्निं प्रतिष्ठाप्य सुदर्शनेनाष्टशतं सहस्रं वा जुहुयात् । प्रातस्तोयपूर्णं कुम्भं प्रतिष्ठाप्य सुदर्शनेनाष्ट(शतं)सहस्रं जप्त्वा कुम्भोदकेन नावं प्रोक्ष्य ततो नेतारं ^(२)सहारोहेणाष्टाक्षरेण जप्त्वा अष्टसहस्रं जुहुयात् । समुद्रं नमस्कृत्य हविषा 'समुद्रं गच्छ स्वाहा । सिन्धुपतये स्वाहा । विष्णवे वरुणाय सर्वं पाहि विश्वं पाहि सर्वजीवाय समुद्रेभ्यः सर्वेभ्यः समुद्रेभ्यो देवताभ्यस्सर्वेभ्यो ग्रहेभ्यस्सर्वेभ्यो नक्षत्रेभ्यस्सर्वाधिपतिभ्य स्वाहेति' हुत्वा ततो विसतन्तुरज्जुं सुदर्शनेनाष्टसहस्रं जप्त्वा नावं बध्नीयात् । ततो य(ज्ञ)क्षवास्तुं कृत्वा ब्राह्मणान् स्वस्ति वाचयित्वा वायव्यबीजेन विसर्जयेत् । आगमनेऽप्येवं होमं कुर्यात् । आगता रक्षा भवत्यन्यथा विनश्यति । एवं होमं कृत्वा विसतन्तुरक्षां 'समुद्रं गच्छ स्वाहा' इति एका-माहुतिं विसर्गमन्त्रं वर्जयित्वा ततो ब्राह्मणान् स्वस्ति वाचयित्वा नौस्थं द्रव्यमवतारयेदिति । रुद्रभट्टोऽपि—

सांयात्रिकस्सत्तिथिवारलग्ने

प्राग्वत् यजेत विबुधाष्टकमन्धितीरे ।

प्रास्थानकालगदितैरुपहारतत्रैः
 लाजैस्सुपिष्टगुडपायसमोदकैश्च ॥
 रत्नाकरं तदनु पुष्पफलाढ्यदानैः
 अभ्यर्च्य नावमाधिरुह्य सुधर्मबुद्धिः ।
 नौनाथमिष्टकदलीदलतोरणाढ्यां
 तां पूजयेन्मकुटमण्डनवस्त्रमाल्यैः ॥
 संचिन्त्य पोतपातिर्रीप्सितमर्थलाभं
 क्षे(हो)मं च दिक्षु विकिरेच्च बलिं सुरेभ्यः ।
 नारङ्गरज्जुहरणीयक द्या
 नाकार्यं दैविकनिमित्तसमूहमूहैः ॥

इति । अत्र निमित्तान्यनुकूलवातादीनि । यात्रावदवगन्तव्यम् । उक्तं च—
 पोतप्रयाणसमये लवनं समीर-

श्वोदङ्मुखो न खर इष्यत उत्पतिष्णुः ।
 शत्रुप्रकोपविपदः सुरचापमुच्चैः
 क्षेमेष्टकूलधनलब्धिकरोऽन्यथा स्यात् ॥

इति । एवं प्रस्थापितस्य प्रवहणस्य क्षेमेण प्रयाणं पुनरायानं लाभ-
 योभौ च प्रयत्ने वदेत् । अत्र गार्ग्यः—

कदत्तोदकस्य(?) राशेः गतमवधीकृत्य मध्ये पापस्तिष्ठति चेत्
 विघ्नकृत् । शुभो न दोषकृत् । जलमध्ये गुरुर्यद्युदेति गमनागमनलाभेषु
 शुभं ब्रूयात् । शुक्रेन्दू जलमध्यगौ गुरुदेति चेत् किञ्चिज्जलभयं । शुक्रोदय-
 श्चेत् इतरयोर्मध्यगयोर्महालाभः । गमने किञ्चिद्विघ्नं । चन्द्रोदयश्चेदितरयो-
 र्मध्यगयोर्महालाभः । आगमने किञ्चिद्विघ्नं । सूर्योदये नेतुर्मृतिस्स्यादनेनैव
 विधिना धनादयोऽप्यातां(?) । रक्तोदये नौस्थानां विषूच्यादिभङ्गः । मन्दो-
 दयेऽपि परहस्तगतः स्यादित्यादि । अशुभेऽर्के धनस्थे षष्ठे चन्द्रे शत्रुहस्तं

गताः स्युः । प्रश्ने कोणस्थानं श्रेष्ठम् । ध्वजादिस्थानं विघ्नकृत् । प्रश्नकाले यदि कश्चिदायाति दूरस्थानादागमनमाहुः । तस्माद्देशाद्यदि गच्छति गमनं ब्रूयात् ॥ किमप्यवष्टभ्य कृतेन तस्मादुच्चस्थे वक्तुर्वा विघ्न आगते विघ्नं ब्रूयात् । प्रतिकूलो वायुर्वाति चेत् वायो प्रातिकूल्यं स्यात् । शुभवाक्यश्रवणे शुभं ब्रूयात् । अक्षरराशिषु धनलाभस्थानमन्वीक्ष्य ब्रूयात् । अथवा अका(तका)रादिह्रस्वोच्चारणे वर्गाद्यतृतीयान्त्याकारोच्चारणे शुभामाहुः । ऊर्ध्वस्वरे शुभं । तिर्यक्स्वरे किञ्चिच्छुभं । अधरस्वरे विघ्नं ब्रूयात् । जातकोक्ते प्रश्ने वेश्माधिपतिविलोकिते (कर्म, पइ) कर्मपञ्च मार्गे नौ(?)वेश्माधिपतिः कर्मस्थः तदा विलम्बेन नौरेति ।

हिबुकाधिपो न युक्तो दृष्टो वा लग्नपो(लग्नाधिपो) यदा भवति ।

लग्नप्रान्तगतो वा तदाशु नौः शीघ्रमायाति ॥

कर्मगतः पूर्णबलो जीवः शुक्रावलोकितो वाऽपि ।

लग्नाधिपेन (पोलग्नं) लग्ने विलोकिते वा तदागमनम् ॥

मार्गेशः शुभदृष्टः लग्नेशः सौम्यवीक्षितो वाऽपि ।

क्षेमेण तदा यानं शत्रुसकाशात्समायाति ॥

निवृत्तभवनं चन्द्रः पश्येद्यादि बलान्वितः ।

तदातिलाभसंयुक्तः यानमायाति सत्वरम् ॥

लग्नाधिपे शुभैर्दृष्टे यानं वल्लसमन्वितम् ।

समभ्येत्य शुभैर्दृष्टे तद्वस्तुरहितं शुभम् ॥

स्वयं भौमं बुधयुतं (बुधयुतपश्येत्) भ्रातृस्थो यदि मन्त्रिपः ।

पश्येल्लग्नं च लग्नेशः पोतस्य स्यात् प्रवासनम् ॥

यानागमनदिनसङ्ख्यादि यात्रावदत्र द्रष्टव्यम् ।

भौमार्कां वक्रिणौ लग्ने लग्नेशो वाऽथ वक्रगः ।

लग्नेशस्थितराशीशो वक्री वा न निवर्तते ॥

लग्नाधिपः पश्यति चेत् विलग्नं

सद्वन्धुरन्ध्रान्त्यगतौऽथ वा स्यात् ।

सहोत्थगेऽस्मिन् मृतिरिप्फसंस्थे

षष्ठ्याधिपे पोतपतेः प्रवासः ॥

कर्मेशे वा त्रिकोणस्थे प्रवासः पापवीक्षिते ।

भवत्येवाऽथवा लग्ने स्थितेऽपि गुरुवीक्षिते ॥

अथ कथयन्त्यगृहं पथि रिप्फमशनिदृष्टमरियुद्धम् ।

यदि जीव शशिशिजो वा पश्यत्यस्तं तदा रणनिवृत्तिः ॥

भौमे पश्यत्यस्तं महारणं स्यादथार्कसन्दृष्टे ।

लग्ने लग्नपतौ वा युतदृष्टं तस्करैर्हृतं याना(त्)म् ॥

हिबुकाधीशो मन्दं क्षीणेन्दुनिरीक्षितस्तु चोरभयम् ।

स तु पूर्णचन्द्रदृष्टो वातेनापादपाद्भयं कुरुते ॥

लग्नं रुचं प्रवहणस्य चराणमम्बु-

शृङ्गाणमस्तभवनं दशमं तु कूपम् ।

तद्देशयोरशुभदर्शनसंयुतिभ्यां

तद्भज्यते शुभयुतीक्षणहीनयोश्चेत् ॥

द्वित्रिचतुःपञ्चगृहात् दक्षिणतो नवदशागमव्ययभम् ।

वामो भागश्छिद्रं वस्त्रापष्टञ्च तन्निदर्शयेच्च(?) ॥

शुभाशुभमुक्तं—शुभाशुभैश्च केन्द्रगैश्च तद्भवति दक्षिणतो यात्रायां
व्यावृता वामतो या(?) ।

दशमस्थे कुजे लग्ने दशमस्थे तु वेद्युतात् ।

दाह(राहु)भीतिस्तु पोतस्य लग्नस्थे तत्र भञ्जनम् ॥

क्रूरयुतीक्षणसहिते कर्मगृहे प्रवहणस्य भङ्गस्स्यात् ।

क्रूरग्रहसंयुक्ते कर्मेशे नौ विनाशनं भवति ॥

या(त्रे)ने भिनात्ति कुब(व)रं क्रूरयुतेक्षितस्तपनः ।
 नवमस्थेऽर्कसन्दृष्टः परदेशं सुधांशुना ॥
 अस्तं गतो विलम्बेशो लम्बे तुर्ये तथाऽष्टमे ।
 क्रूरस्तिष्ठति पृच्छायां मृतिः पोतपतिस्तदा ॥
 शशिदृष्टोऽष्टमं मन्दः शृङ्गाणादौ प्रणाशकृत् ।
 याने राश्यंशभुक्तियुक्त्या तदादिमध्यान्तदेशेषु ॥
 (?) समेशो मन्त्रस्थः क्रूरयुतः क्रूरवीक्षितो वाऽपि ।
 याने प्रधानपुरुषं गमयति मृत्युं ग्रहवशाच्च ॥
 यः क्रूरः कर्मेश्वरः (?) क्रूरः क्रूरवीक्षितो हिवुकम् ।
 यद्वा तिष्ठेदथ वा पश्येत् पराणां लगति स्थले ॥
 अथ सौम्यग्रहैर्दृष्टो युक्तो वाऽपि तदीश्वरः ।
 नौकापराणां क्षेमेण स्थलादधिगमिष्यति ॥
 हिबुकाधिपतिर्मन्त्रभवनं यदि वीक्षते ।
 जलमध्ये तदा भङ्गो भवेत्प्रवहणस्य वै ॥
 यदि कर्किर्मानलम्बं शशिशुक्राभ्यां युतेक्षितं भवति ।
 तद्युतदृष्टे भेशे मज्जति जलधौ तदा यानम् ।
 व्ययभवनं निजपतिना युतेक्षितं चाथ मृत्युगृहे ।
 वीक्षते न तदीशौ जलमध्ये भज्यते यानम् ॥
 मृत्युस्थौ शशिभौमौ विलोकयेते तदा रविणा ।
 एकांसे प्रान्तगतौ तदा तटे यानभङ्गः स्यात् ॥
 लम्बेशे षष्ठमायायाते स्वयमेवात्मना रिपुः ।
 मृत्युमष्टमगे तस्मिन् व्ययगे च बहुव्ययः ॥
 यदि मृत्युविलम्बेशौ विक्षेते मृत्युलम्बे ।
 अथवा तौ स्थितावन्ते क्षेमेणायाति सा तरी ॥

यदा छिद्रेशलमेशौ सूर्यगौ शत्रुवेश्मनि ।
 नचि वा नवमे संस्थे लाभो न व्यवहारतः ॥
 लग्नं पश्यति लग्नेशः छिद्रे भवति वाक्पतिः ।
 अथवा प्रबले लग्ने चन्द्रे वाऽष्टमसंस्थिते ॥
 प्रबले प्रक्षलम्ले वा स्वोच्चगे (त)सद्गृहेऽष्टमे ।
 प्रबले लग्नपे शुके छिद्रगे पापवर्जिते ॥
 व्यवहारेण वस्तूनां लाभो भवति निश्चितः ।
 व्यये धने स्मरे क्रूराः तेषां सप्तमगः शशी ॥
 मृत्युयोगः समाख्यातः चन्द्रः पापयुतोऽथ वा ।
 लग्ने सूर्यस्मरे चन्द्रो मृत्युयोगोऽन्यथाऽथवा ॥
 मृत्युयोगे समायाति क्षेमलाभयुता तरी ।
 रोगिणामत्र मृत्युः स्यात् वधः(?) शीघ्रं विमुच्यते ॥

इत्यादि द्रष्टव्यम् । तत्प्रवहणगतद्रव्यस्वरूप प्रमाणगणनादि प्रक्षलम्ल-
 रश्मितदंशतः तत्त्वामिवशात् वदेत् । क्षेमेणागतां तां तरी निजतटमव-
 रोहयेत् । तदुक्तं—

क्षेमागतां विततके नवचक्रवालां
 वादित्रघोषवधिरीकृतरोदसिकाम् ।
 (?)प्राणिप्रयाणकनिकायनिरस्तमङ्गं
 विश्रामयेत् कतिपयानि दिनानि नौकाम् ॥
 आरोहयेदथ तटं विधिवच्छुभेऽग्नि-
 स्वातिध्रुवेन्दुपितृमित्रभनैर्ऋतेषु ।
 पूर्वात्रये खरभपुष्यमघासु चीर्णा-
 मुद्धारयेदभिनवामिव खण्डितानाम् ॥

इति । एवं नौयात्रायां ग्रन्थान्तरोक्तविशेषोऽभिहितः । अन्यत्सर्वं
 यात्रावदगन्तव्यं । प्रयाणविधिनैव विचिन्तनीयमिति ।

गार्ग्यः—

विक्रेतलाभपतिः (१) तयोर्वलेन तत्सिद्धं वदेत् । युद्धयात्रायामपि
यात्रावत् काल इष्यते । तथा च ज्योतिषार्णवे—

नक्षत्र तिथि तिथ्यर्धयोगवासराराशयः ।

भावयोगादिकं युद्धे यात्रावत् सर्वमिष्यते ॥

यात्रा विशेषस्त उच्यते —

त्रिपूर्वाभरणी ज्येष्ठा मघाग्निशिववारुणाः ।

सर्पाश्विभेषु (?) वायव्याः समरे विजयावहाः ॥

कृष्णे पक्षे जयारिक्तातिथयो विजयप्रदाः ।

जीवमन्दार्कभौमानां वारराश्यंशकादयः ॥

उदयप्रेक्षणाद्यासु समरे विजयप्रदाः ।

जन्मभाद्रसुद्दिग्वेदविश्वाष्टौ तिथयः क्रमात् ॥

आकृत्यतिकृतीभानि गमने वर्जयेद्युधि ।

अत्रार्थेऽन्धभानि वर्ज्यानि । यथाऽऽहुः—

जयमध्यविनाशश्च द्विदृक्काणान्धभेषु (?)

दृष्टं रविस्थितर्क्षं तु तत्र स्थितिर्विभागतः ।

दृष्टाः शुभाश्च निर्धिष्टाः ताराः साभिजितः क्रमात् ॥

इति ।

षष्ठोऽष्टमो द्वादशकश्च राशिः शुभेषु कार्येषु विवर्जनीयः ।

क्षौरे विवाहे च तथा प्रयाणे षष्ठं विदुः कर्तुरतीव शोभनम् ॥

कर्तुः षष्ठं त्यजेल्लभं क्षौरोद्वाहगतिं । वना ॥

सारसङ्ग्रहे—

सप्तविंशतिनक्षत्रं एकराशिसमान्वितम् ।

सर्वेषु शुभदं प्रोक्तं बहूनां सम्मतं त्विदम् ॥

अथ । शुचिर्वस्त्रालङ्कृतो राजा देवतागारं प्रविश्य दिगीश्वरानभ्यर्च्य
तस्मिन् साक्षतान् सितसर्षपान् विकीर्य शुद्धायां भुवि दर्भानास्तीर्य दूर्वा-
दिभिरुपधानं विधाय चतुर्दिक्षु चतुरः पुष्पलतालङ्कृताम्बुपूर्णकलशान्
विन्यस्य इष्टदेवतां नमस्कृत्य तन्मन्त्रान् जपेत्—

नमः शम्भो त्रिणेत्राय रुद्राय व(रदाय)रुणाय च ।

वामनाय विरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः ॥

भगवन् देवदेवेश शूलिन् वृषभवाहन ।

इष्टानिष्टे ममाचक्ष्व स्वप्ने सत्यस्य शाश्वत ॥

इति । अत्र वराहमिहिरः—

यज्जाग्रतो दूरमुपैतुदेव-

मावर्त्य मन्त्रान् प्रयतस्त्रिरेतान् ।

लघ्वेकभुक् दक्षिणपार्श्वशायी

स्वप्नान् निरक्षित यथोपदेशम् ॥

एकवस्त्रः कुशास्तीर्णः स्वप्ने प्रयतमानसः ।

निशान्ते पश्यति स्वप्नं शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥

आद्ये वर्षात् वत्सरार्धात् द्वितीये

यामे पाको वर्षपादात् तृतीये ।

मासात् पाकः शर्वरीपश्चिमांशे

सद्यः पाको गोविसर्गे च दृष्टे ॥

अरुणोदये दशाहेन गोविसर्गे तद्दिन एव फलति । तथाऽन्यत्रोक्तम्—

अरुणोदयवेलायां दशाहेन फलं लभेत् ।

गोविसर्गस्य काले तु तस्मिन्नेव फलं स्मृतम् ॥

इति । स च स्वप्नः सप्तविधः यथोक्तम्—

दृष्टश्रुतोऽनुभूतश्च कल्पितः प्रार्थितस्थथा ।

दोषजो भावजश्चेति स्वप्नः सप्तविधो मतः ॥

इति । स्वप्नः स्वयमन्येन दृष्टो वाऽपि शुभोऽशुभ एवं—

दृष्टः सप्तविधः प्रोक्तः तत्राद्याः पञ्च निष्फलाः ।

यथा स्वप्रकृतिः स्वप्नो दिवा दृष्टश्च विस्मृतः ॥

ह्रस्वो दीर्घोऽपि वा नातिसुप्तदृष्टश्च निष्फलः ।

पूर्वरात्रेऽप्यफलदो गोविसर्गे महाफलः ॥

द्वावन्त्यौ फलदौ प्रोक्तौ दोषजश्च स्वभावजः ।

यश्चानुपहतः स्वप्नो भूयः प्रस्वापयेन्न तु ॥

प्रतिकूलैर्वचोभिर्वा दानाहुतिजपादिभिः ।

प्रत्यक्षवत् स्फुरत्यन्तः प्रबोधे सफलः स्मृतः ॥

इति । अन्ये त्वाहुः—

धातुप्रकोपग्रहपाकचिन्ताऽदृष्टाभिचारोद्भवगुह्यकोत्थाः ।

(?)गतैष्यता(भ्य)त्यन्तर सत्यसङ्गस्वप्ने ह्यनूके गतिजश्च चिन्त्यम् ॥

धातुप्रकोपादनिलात्मकः स्यात् नागाद्रितुङ्गाम्बरलङ्घनानि ।

पित्ताधिके काञ्चनरत्नमाल्यदिवाकराग्निप्रभृतीनि पश्येत् ॥

श्लेष्माधिकश्चेन्दुभशङ्खशुक्तिसरित्सरोऽम्भोधिविलङ्घनानि ।

जघन्यमध्यप्रथमे निशांशे प्रावृट् शरन्माधवसंज्ञिते च ।

काले मरुत्पित्तकफप्रकोपे साधारणं स्यात् फलसन्निपातः ॥

दशा (दशा) सु जातं फलपाकजातं

चिन्ता च दृष्टा च यथा तथैव ।

भीमत्ससत्त्वाभिभवोऽभिचारो

विघ्नोद्भवो गुह्यरुजो(?) प्रवि(दि)ष्टः ॥

अनूकचिन्तागतिदोषतृष्णान्यतीतकर्माणि च निष्फलानि ।

द्युदृष्टदीर्घाकथिताश्च तद्वदनित्यपाका गदिताश्च शेषाः ॥

प्रत्यक्षवद्भवति यः स्फुरतीव चान्तः
 स्वप्नस्य तस्य नियमात्सदसत्फलाप्तिः ।
 स्वप्नाः शुभाशुभकृताः फलदा नराणां
 उद्देशमात्रमिह ताननुवर्णयामि ॥
 स्वाङ्गप्रज्वलनं परोपगमनं छत्रध्वजालिङ्गनं
 दिक्संवृत्तनरैर्निर्कृतपतनाः प्रक्षेपणं दिक्षु च ।
 बन्धो वा निगळे ग्रसेत दहनं नानाशिरोबाहुता
 सच्छत्रं द्विरदोऽभिषिच्य विभृयाद्विव्योऽथवा ब्राह्मणः ॥
 उडुपदिनपगोश्रङ्गस्त्राता(?)नङ्गभिषेचनं
 भवति यदि वा व्याघ्रीसिङ्गीगवां मुखदोहनम् ।
 जठरनिसृतैरान्त्रैर्ग्रामद्रुमाद्यभिषेचनं
 विशति यदि सुश्लिष्टाङ्गी(?) त(न)नुप्रवराङ्गना ॥
 मनुजहृदयमूक्षो भक्षणं सास्वदान-
 स्वहतभुजगसिङ्गेभाजमांसोदनानि ।
 तृणतरुकुसुमाम्बुप्रोद्भवो वा स्वनाभौ
 क्षितिररिपरिवृत्तोन्मूलने चाधिराज्यम् ॥
 दिनकरशशिताराभक्षणस्पर्शनानि
 दलनमपि च मूध्रः सप्त पञ्च त्रिधा वा ।
 वृषभगृहनेन्द्राश्वेभसिङ्गाधिरोहो
 ग्रसनमुदधिनेम्योश्चाधिराज्यप्रदानि ॥
 विपुलरणविमर्दद्यूतवाद्यैश्च जित्वा
 पशुमनुजमृगाणां लब्धिरध्यापनं वा ।
 विशसनपरिलोपोऽगम्यनारीगमो वा
 स्वशरणशिखिलाभस्सस्यसन्दर्शनं वा ॥

सितकुसुममनोज्ञालेपमाल्याम्बरस्त्री
 द्विजगुरुसुरराज्ञां दर्शनं चाशिषश्च ।
 मणिरजतसुवर्णाम्भोजपत्रेषु भुङ्क्ते
 यदि दधिपरमान्नं मज्जतेऽसृ(ध्वटे)ग्रदे वा ॥
 सिततुरगफलध्वजातपत्रव्यजनसरोजमणिद्विपेन्द्रलाभः ।
 अभयजय च भुङ्क्ष्यचेति शब्दाः परिणतराज्यफलप्रदाः प्रदिष्टाः॥
 लब्धे शयने च दर्पणे भृङ्गारादिषु चाङ्गनातिरुक्ता ।
 कामिन्या धनलब्धिरम्बुतरणे दुःखस्य नाशो भवेत्
 सिङ्घीदोहनरोदनादिषु तथा दाहेऽपि वृद्धिस्मृता ।
 गोलिङ्गद्विजदेवतापितृवधूबालाश्च शंसन्ति यत्
 स्वप्ने तन्नियमाद्भवत्यवितथं कष्टं शुभं तद्वेत् ॥

अन्यत्र—

देवद्विजान् गोवृषभान् सुजीवत्सुहृदो नृपान् ।
 साधून् यशस्विनो वह्निमिद्वं स्वल्पजलाशयान् ॥
 कन्याकुमारकान् गौरान् शुक्लवस्त्रान् सुतेजसः ।
 नराशनं दीप्त(तनुं) तुण्डं समन्ताद्रुधिरोक्षितम् ॥
 यः पश्येल्लभते यो वा छत्रादर्शविषामिषम् ।
 शुक्लान् सुमनसो वस्त्रममेध्यालेपनं भवेत् ॥
 शैलप्रासादसफलवृक्षसिङ्घासनद्विपान् ।
 आरोहेद्ग्रां च यानं च तरेद्धनदोदधीन् ॥
 पूर्वोत्तरे च गमनं सम्बाधानिस्सृतिर्मृतिः ।
 वक्त्रं वा बाहुभङ्गं वा पश्येन्न तु शुभाशुभम् ॥
 रोधनं पतितोत्थानं द्विषतां चोपमर्दनम् ।
 यस्य स्यादायुरारोग्यं वित्तं च बहुशोऽश्नुते ॥

यस्तु मध्ये तटाकस्य भुञ्जीत घृतपायसम् ।
 सौवर्णे पौष्करे पत्रे तं विद्यात् पृथिवीपतिम् ॥
 तुरगो वृश्चिको वाऽपि जल्लको ग्रसते यदि ।
 विजयश्चार्थसिद्धिश्च विपुलं च धनं लभेत् ॥
 प्रासादशैलयोर्भूत्वा समुद्रं तरते नरः ।
 अपि दासीकुले जातो जायते पृथिवीपतिः ॥
 शुष्ककण्टकवृक्षाणामेकाकी यश्च रोहति ।
 तत्रस्थश्च विबुध्येत तं व्याधिश्शीघ्रमाप्नुयात् ॥
 निगलैर्बध्यते ।
 भयं नाशो भवेत्तस्याप्यपत्यं वा विपद्यते ॥
 नाभेरन्यत्र देशे तृणतरुकुसुमप्रोद्भवः स्नेहपानं
 क्रीडायानोपभोगाः खरकरभकपिव्यालरूपैश्च सत्वैः ।
 कायस्यालेपनं वा कलुषजलमषीकज्जलस्नेहपङ्कैः
 दृग्जिह्वादन्तपङ्क्तिप्रपतनमपि वाऽनर्थशोकप्रदानि ॥
 भृङ्गारुध्वजपावकाभिपतनं स्रोतोवहासो (त्त) भ्रमः
 रज्जुच्छेदमतिप्रतापजननीगात्रप्रवेशास्तथा ।
 स्वप्ने कायविघूर्णनं च शिरसः क्लेशामयानर्थदाः
 श्मश्रुकेशनखदीर्घकल्पना वानरीविकृतनार्युपासनम् ॥
 रक्तवस्त्रमनुजाङ्गमर्दनं रोगमृत्युभयशोकतापदम्—
 स्थलमृदुपशुकीटानूपचर्या गजानां
 प्लवनमुदकराशौ स्याद्विवाहोत्सवो वा ।
 सरसिजजलभाण्डक्रीडनं नर्तनं वा
 मलिनविवसनत्वाच्चाशु शोकप्रदानि ॥
 पुत्रस्य नाशस्सुहृदां वियोगश्छेदश्च पाण्योः कलहाय नित्यम् ।

प्रासादवेश्माद्रिशिरोऽवतारात् स्वप्नेऽप्यनिष्टा इति संप्रदिष्टाः ॥
 मित्रस्यासिस्स्याद्विकोशासिलाभो वश्यं राजा गच्छते शासनासौ ।
 सर्पे कर्णौ नासिकां वा प्रविष्टे तच्छेदस्याद्वेष्टने चाशुबन्धः ॥

अन्यत्र —

पितृदेवद्विजातीनां क्रुद्धभीतकृशात्मनाम् ।
 मालिनाम्बरपुष्पाणां दर्शनं न प्रशस्यते ॥
 तेषामेव सुपुष्पाणां शुक्लपुष्पाम्बरात्मनाम् ।
 दर्शनं शस्यते स्वप्ने तैश्च संभाषणं शुभम् ॥
 मानुषाणि च मांसानि स्वप्नान्ते यस्तु भक्षयेत् ।
 रुधिराणि च पक्वानि पक्षे च मरणं ध्रुवम् ॥
 नावमारोहयेद्यस्तु भिन्नां याति समुत्तरन् ।
 असिं च निर्मलं तीक्ष्णमध्वानं सोऽधिगच्छति ॥
 आन्त्रेणावेष्टयेद्यस्तु नगराणि गृहाणि च ।
 गृहे माण्डलिको राजा नगरे पार्थिवो भवेत् ॥
 सूर्येन्दुग्रहताराणां स्वप्ने स्पर्शः शुभावहः ।
 आरोहति..वायू च पुष्पाढ्यशाल्मलीकोविदारकिंशुकपारिभद्रकान् ?
 लभते वा स्वर्णलोहलवणतैलपिण्याककार्पासकान् पराजीयते वासुरैः ।
 स्वप्ने दृष्टे शोभनेनेव विद्यात्
 पश्चाद्दृष्टो यस्स पाकं विधत्ते ।
 तद्वक्तव्यं साधु मित्राद्विजेभ्यो
 ते चाशीर्भिवर्धयेयुः नरेन्द्रम् ।
 भूयोऽपि स्वपनं नचास्य कथनं गङ्गाभिषेको जपः
 शान्तिः स्वस्त्ययनं निषेवणमपि प्रातर्गवाश्वत्थयोः ।
 विप्राणां च तिलान्नदानकुसुमैः पूजा यथाशक्तितः
 पुण्यं भारतकीर्तनं च कथितं दुस्वप्नविच्छिन्नये ॥

अन्यत्र—

. दृष्ट्वा स्वप्नान् शोभनान् दारुणान् वा
प्रातस्स्नानं सर्षपानग्निवर्णान् ।
हुत्वा सावित्र्या सर्पिषाक्तांस्तिलान् वा
पूतः पापैर्मुच्यते व्याधिभिर्वा ॥

इति । सर्वत्र साधारणं यात्राकालमुपदिशन् गोस्त्रीणां विशेषमाह—

प्रयाणे सर्वजन्तूनां शुभवाराः शुभास्स्मृताः ।
बुधभार्गवयोर्वारौ न शुभौ गोस्त्रियोः क्वचित् ॥

सर्वेषां स्त्रीपुंसात्मकानां द्विपदां चतुष्पदां च प्राणिनां प्रयाणे
शुभवाराः शुभाः पापवारा वर्ज्या इत्येतत्सर्वसाधारणं । न विशेषः ।
तथा च मुहूर्तसारे—

कुलीरकन्याघटसंस्थितं रविं सितज्ञवारौ प्रथमं(?) तथोत्तराम् ।
विवाहयात्रावनितासु शम्यते विशेष एषोऽन्यदशेषमुक्तवत् ॥

इति । ज्योतिषार्णवेऽपि—

बुधवारस्त्रियां निन्द्यः शुक्रवारोऽपि नाशकृत् ।
नक्षत्रतिथितिथ्यर्धयोगवासरराशयः ॥
ग्रहभावस्तथा योगो यात्राकालवदिष्यते ।

इति । रविमन्दवारावपीत्यन्ये । तथा च ज्योतिषार्णवे—

अर्कज्ञसितमन्दारवारेषु भयदास्सदा ।
सर्वसौख्यं विजानीयाद्वारयोश्चन्द्रजीवयोः ॥
देवेन्द्राश्विमघाशशाङ्कहुतभुक्पूर्वोत्तरारेवती
नीरेशश्रवणाद्विदैवतयमप्राजेशभेषूच्यते ।
गोयात्रा शनिमन्त्रिणोस्तु दिवसे शुद्धेऽष्टमे गोधनुः-
युग्माद्यन्तमृगेश्वरेषु सकलं चान्यद्विचिन्त्यं नृवत् ॥

दारधर्मधने पुत्रे सहजर्क्षसहोदये ।
समागमस्तु स्थानेषु गवां यात्रासु शस्यते ॥
पुत्रारिधर्मतोयेषु सहजे लाभरन्ध्रयोः ।
शुक्रं सुपूजितं विद्याद्ववां यात्राफलप्रदम् ॥
त्रिषडायगताः पापाः सौम्यास्सर्वे नभस्स्थले ।
सूर्यचन्द्रोदये प्राप्ते पशूनामायुषः क्षयः ॥

यात्रायां सग्रहदोषफलमाह—

तीव्रैर्व्योमचरैस्संयुक्ते यातस्तीव्रान् विन्दति
रोगान् । सौम्याख्यैरथ पीयूषांशावात्मीयैः कलहं
प्राप्नोति ॥ १७ ॥

तीव्रैः—क्रूरग्रहैरर्काकिंजराहुकेतुभिः । संयुक्ते—एकराशावेकनक्षत्रे
सह स्थिते चन्द्रे यातस्तीव्रान् दारुणान् रोगान् विन्दति—प्राप्नोति ।
अत्रात्रिबृहस्पती—

यानेऽर्कयुक् ज्वरं चन्द्रः सर्पयुक् स्थाननाशनम् ।
करोत्यारार्कियुक्केशं मिथो भेदं बुधादियुक् ॥
केतूल्कादिषु संयुक्ते चन्द्रे देशविनाशनम् ।
बहुरोगोऽर्थनाशश्च परपीडा च जायते ॥
इति । ग्रहैर्मण्डलभेदेन फलमुक्तं वराहमिहिरेण—

भृगुसुतबुधभिन्नैः रुक् सुरेड्येन मृत्यु-
र्भयमसितकुजाभ्यां केतुना स्त्रीविनाशः ।
अपशुकिरणकान्तौ गच्छतश्शत्रुवृद्धौ
सविकृतपरिवेष्टा तेन नाशं शशाङ्के ॥
इति । व्यतीपातादिदोषे फलमुक्तं व्यसनम्—
ऋत्वयनयुगसमाप्तौ न विजयकाङ्क्षी नृपः प्रवसेत् ।

विधिरत्ने—

- आद्रायामतिदुःखं क्षुद्धाधा जायतेऽहिपतौ ।
- पूर्वाषाढे नियतं शरीरहानिर्भवेद्यातुः ॥
- चित्रायां च विशाखे यातुर्यात्रा तदा मृतिं कुरुते ।
- याम्ये मघासु मरणं ज्वलनपतावस्य पर्यटनम् ॥
- पूर्वाभाद्रपदे यातुः क्लेशस्याद्विविधो भृशम् ।
- ऐन्द्रे भवेज्ज्वरस्तीव्रो भाग्येनासौ निवर्तते ॥
- रिक्ता तु दोषदा यातुरष्टमी व्याधिदा भृशम् ।
- कुरुते प्रतिपद्यातुर्देहनाशमसंशयम् ॥
- रोगो विष्टयां यातुश्शरीरहानिर्व्यतीपाते ।
- संक्रन्त्यां यदि गमनं विदेशगमनं प्रयातुरेव स्यात् ।
- ग्रहणे बन्धनमुक्तं वायौ प्रतिलोमगे महाक्लेशः ॥
- परिवेषे यदि गमनं क्षुत्तृष्णाभ्यां शरीरपीडा स्यात् ।
- दैन्यं दुर्दिनयाने पुनरावृत्तिं करोति सा वर्षे ॥
- सुरपतिचापे यातुर्भिनात्ति निस्संशयं यात्रा ।
- दिग्दाहे सति बाधा धूमेऽत्यन्तं नरस्सदाऽऽपन्नः ॥
- चोराद्याक्रान्तिस्स्याद्विधिनिमित्तो दुर्निमित्तयुतयाने ।
- न व्रजेद्योजनादूर्ध्वमेषु योगत्रयेषु तु ॥
- अर्वागेव व्रजेदेषु योजनायास्सु(सु) बुद्धिमान् ।
- विद्रुतेन न गन्तव्यं मनुजेन विवेकिना ॥
- कर्मणां नैव सिद्धिस्स्यादनिष्टं च फलं भवेत् ।

इति ।

अभोजनमरिक्लेशः भयशोकस्थितिर्व्यथा ।
प्रथमेऽहि यथा न स्यात्तथा यायाद्विचिन्त्य तु ।

श्रान्तो वाऽप्यथ मत्तो वा व्यथितो वा बुभुक्षितः ।

क्रुद्धो लुब्धश्च मुग्धो वा न गच्छेदपि मत्सरी ॥

श्रान्तादिकामं वपनं च मांसं

सप्ताहमत्र त्यज मैथुनं च ।

प्राप्तेऽथ याने कृतमैथुनो यः

तस्यापि मृत्युर्भवतीह शीघ्रम् ॥

यानस्य काले परिताप्य किञ्चिद्गच्छेन्मृतिस्स्याद्विजनिन्दया वा ।

भार्यावमानान्न निवृत्तिरस्य यातुश्च मातापितृनिन्दया वा ॥

इति । अथ यात्रादिफलसिद्धयर्थं तद्दिनकृत्यं तत्कालकृत्यं चाह—

**प्रतोष्य विप्रान् हविषा धनञ्जयं समर्च्य यातो
लभते धनं जयम् । प्रणम्य गौरीं गणनाथमीश्वरं
स्मरन् ग्रहेन्द्रं मनसा दिगीश्वरम् ॥ १८ ॥**

हविषा आज्यचरुतिलादिना धनञ्जयमग्निं समर्च्य सम्यक्—
स्वगृह्योक्तग्रहयज्ञविधिनेष्टा विप्रान्—दैवज्ञादीन् मणिकनकवस्त्रान्नादिना
प्रतोष्य । गौरीं दुर्गां गणनाथमीश्वरं स्मरन् स्वेष्टदेवतामीश्वरं च
सम्पूज्य प्रणम्य दिगीश्वरं ग्रहेन्द्रं—सूर्यादिकं दिगीशमिन्द्रादिकं च
मनसा स्मरन् यातो धनमिष्टार्थं शत्रुजयं च लभते । अत्र होमश्च तत्तद्दि-
ङ्मन्त्रक्षत्रदेवतामन्त्रैः कार्यः । यत आहुः—

नक्षत्रदेवतामन्त्रैर्हुत्वा चाग्निं व्रजेन्नृपः ।

औदुम्बराणि पालाशखदिराश्चत्थवज्जुलैः ॥

न्यग्रोधार्कसमिद्धिश्च प्रागादौ दिक्षु दक्षिणः ।

हुत्वान्नज्याहुतीस्तस्य नक्षत्रेशस्य नामभिः ॥

इति । एतदुक्तं भवति—

वक्ष्यमाणग्रहयज्ञं विधाय अथ कृतशान्त्यभिषेको ब्राह्मणान् यथाशक्ति विशेषतो दैवज्ञं स्वर्णवस्त्रान्नताम्बूलादिवितरणेन तत्तद्गृहोक्त-
दाक्षणाभिश्च सन्तोष्य दुर्गां गणाधिपतिं स्वेष्टदेवतां च सम्पूज्य नक्षत्रा-
द्युक्तभक्षणं कृत्वा पुण्यस्त्रीजनकृतस्वस्त्ययनो गुरुद्विजदेवता अभिवन्द्य
प्रदक्षिणीकृत्य च मङ्गलानि पश्यंस्तदाशीर्वादवाद्यवोषान् शृण्वन् उत्थाय
प्राङ्मुखः स्थित्वा त्रयम्बकमुमापतिं ध्यात्वा स्वेष्टविद्यां जप्त्वा यथाया-
यात् । इति । यात्राविधिमाह---

द्वात्रिंशतं दक्षिणपादपूर्वमध्युष्य गत्वा नृपतिः
पदानि । यायात्ततो हस्तिरथाश्वमर्त्यानारुह्य काष्ठाः
क्रमशश्चतस्रः ॥ १९ ॥

यास्यनृपतिर्दक्षिणपादपूर्वं द्वात्रिंशतं पदान्यध्युष्य भूमौ गत्वा
अथो गजरथाश्वमर्त्यानारुह्य क्रमशः—प्राच्यादिक्रमशः चतस्रः काष्ठाः
दिशः प्रयायात् । गजमारुह्य प्राची रथमारुह्य दक्षिणां अश्वमारुह्य प्रतीची
अन्यां मनुष्यवाहशिबिकादियानमारुह्योदीची गच्छेदित्यर्थः । अत्र
श्रीपतिः—

हुत्वा वह्निं देवताश्च प्रणम्य

श्रद्धायुक्तः स्वस्ति वाच्य द्विजेन्द्रान् ।

ध्यायन्नाशाधीश्वरं हृष्टचेताः

क्षोण्याधीशो निर्विलम्बं प्रयायात् ॥

इति । दिगीशोऽत्र ग्रहो लोकेशश्च । तथाचोक्तम्—

प्राचीं प्रणम्य चार्केन्द्रौ यायाद्याभ्यां यमं कुजम् ।

वारुणीं वरुणं मन्दं सौम्यां सौम्यधनेश्वरौ ॥

इति । गुरुः—

शुक्लमाल्याम्बरशुद्धो मुक्तादिसितभूषणः ।
 वारेशसमवर्णो वा बलिग्रहसमोऽपि वा ॥
 दृष्ट्वाष्टौ मङ्गलान् गच्छेन्नृपतिः मङ्गलां गिरम् ।
 श्रुत्वा च तूर्यशब्दांश्च निजादन्तःपुरादपि ॥
 पूर्णकुम्भं ध्वजं छत्रं दीपं शङ्खं च चामरम् ।
 अङ्कुशं शक्तिमाराध्यं मङ्गलाष्टकमीरितम् ॥
 एषां च दक्षिणे पार्श्वे समभ्यर्च्य ग्रहान् शुचिः ।
 नमस्कारेण मन्त्रेण ग्रहनामयुतेन च ॥
 नक्षत्रमक्षणं कृत्वा तिथिभक्षणमेव च ।
 दैवज्ञं पूजयित्वा तु विप्रान् संपूज्य शक्तितः ।
 प्रदक्षिणानिमान् कृत्वा तिष्ठन् ध्यायेदुमापतिम् ॥
 प्राङ्मुखस्त्रिपुरघ्नं तं जपेद्विद्वां च मङ्गलाम् ।
 पूर्वं दक्षिणमुद्धृत्य पादं यायान्नराधिपः ॥
 द्वात्रिंशतं पदं गत्वा धरायां नृपतिस्स्वयम् ।
 दैवज्ञामात्यविप्राढ्यपुरोगैः स्वजनैर्युतः ॥
 पूर्वाशां गजगो राजा रथमारुह्य दक्षिणाम् ।
 पश्चिमां वाजिगो यायादुत्तरां नरवाहन ॥

इति । अत्र केचित्प्रवहद्वायुनासापुटभागगतं पादं पूर्वमुद्धृत्य यायादित्याहुः । तथाच स्वरशास्त्रे—

दक्षिणेऽप्यथवा वामे यत्र सञ्चरतेऽनिलः ।

कृत्वा तत्पादमादौ तु यात्रा भवति सिद्धिदा ॥

इति । अत्र वामगे वायौ वामपादमुद्धृत्य दक्षिणपादसमं विन्यस्य दक्षिणमेवोद्धृत्य द्वात्रिंशत्पदानि गच्छेत् ।

तथाचोक्तम्—

चन्द्रे तु समपादं स्यात् सूर्ये तु विषमं स्मृतम् ।

पूर्णं पूर्वं समुद्धृत्य यात्रा भवति सिद्धिदा ॥

इति । अत्रापि परिधमिच्छन्ति । दक्षिणगे पूर्वोत्तरे न व्रजेत् ।

वामगे याम्यपश्चिमौ न व्रजेत् इति । तथाच ब्रह्मयामले—

वामेतरप्रवाहे तु न यायात्प्रागुदग्दिशौ ।

परिपन्थिभयं तत्र गतोऽसौ न निवर्तते ॥

सव्यनासाप्रवाहेन न गच्छेद्याम्यपश्चिमे ।

तत्र स्याद्दस्युसम्पातो मृत्युरेव न संशयः ॥

इति । केचित्सर्वदिक्षु परिघदोषपरिहरणाय वायुं कुम्भितं कृत्वा व्रजे-
दित्याहुः । तथा च विधिरले—

प्राङ्मुखो धूर्जटिं ध्यायन् कृत्वाऽतो कुम्भकं सुधीः ।

पाद दक्षिणमुद्धृत्य गच्छेत्पूर्वं सुशोभनम् ॥

इति । तथा च नारदः—

अप्रयणे स्वयं कार्यापेक्षया भूभुजां तदा ।

कार्यं निर्गमनं तत्र शस्त्रास्त्राक्षतवाहनैः ॥

इति । अन्यद्वा मनसोऽभीष्टं प्रस्थापयेत् । तथा च वराहमिहिरः—

छत्रध्वजान्यम्बरभूषणानि

पाथेयैरैवासनवाहनानि ।

सदर्पणाद्यौपयिकानि पूर्वं

प्रस्थापयेद्वैजयिकं जयाय ॥

इति । प्रस्थानक्रमश्च गुरुणोक्तः—

किञ्चिद्विलम्ब्य यातव्ये कार्यं निर्गमनं बुधैः ।

योगे वा प्रोक्तकाले वा यात्रावत्साध्यसाधनम् ॥

आत्मतुल्यं समर्भ्यच्य पदार्थं शासनं नृपः ।

स्वयमादाय तां गत्वा यात्रावत्पूजितेन च ॥

अन्तपुराद्वा स्वनिकेतनाद्वा

सिंहासनादग्निपरिस्तराद्वा ।

कुर्यान्नरेन्द्रः प्रथमं प्रयाणं

विप्रैस्स चाग्र्यैः कुतमङ्गलाशीः ॥

प्रस्थितस्य गन्तव्यमार्गमाह—

सहस्रं वा तदर्धं वा शतं वा धनुषां पथि ।

नागत्वा प्रस्थितस्तिष्ठेत्ततस्तिष्ठेत्प्रयातु वा ॥ २० ॥

स्वस्थानात्प्रस्थितो राजा प्रथमदिने पथि स्वगृहप्राकारात्परं मार्गे धनुषां सहस्रं अर्धक्रोशं तदर्धं धनुषां पञ्चशतानि वा धनुषां शतं वा नागत-
स्तिष्ठेत् । तथा च सर्वसिद्धौ —

याति येन मुहूर्तेन गृहं(गृहात्) तैनैव मानवः ।

धनुस्सहस्रमर्धं वा शतं वा दूरतो व्रजेत् ।

रत्नकोषेऽपि —

स्वस्थानात्प्रस्थानं धनुश्शतार्धं शतानि पादानाम् ।

अर्वाग्धनुस्सहस्रान्न स्थेयमिति ब्रुवन्त्यपरे ॥

अन्ये पुनराचार्याः स्वगृहप्राकारनिर्गमादुपरि इति । रत्नमालायामपि—

स्वस्थानमाहुर्धनुषां शतानि

पञ्चार्धमेकं च धनुश्शतार्धम् ।

स्वस्थानतस्स्याद्दशभिर्धनुर्भि-

र्गतं खलु प्रस्थितमेव मन्ये ॥

अत्रेयं व्यवस्था द्रष्टव्या—राज्ञां प्रस्थानं धनुस्सहस्रं । मण्डलेशानां तदर्धम् ।

प्रभूनाम् धनुश्शतम् । अन्येषां प्राकृतानां तदर्धम् । नीचानां धनुर्दश-
कमिति । अथवा दिग्विजययात्रायां धनुस्सहस्रं परविषययात्रायां तदर्धम् ।
स्वमित्रराष्ट्र्याने धनुश्शतं । स्वराष्ट्र्याने तदर्धं इति । धनुरिह दण्ड
उच्यते । तेनैव क्रोशादि मानगमनात् । तथा च नारदः—

स्वस्थानान्निर्गमस्थानं दण्डानां तु शतद्वयम् ।

चत्वारिंशत्पथे विशत्प्रस्थितिश्च स्वयंगतः ॥

इति । दण्डप्रमाणं च श्रीधरेणोक्तम्—

हस्तोऽङ्गुलविंशत्या चतुरन्वितया चतुष्करो दण्डः ।

तद्विसहस्रं क्रोशः योजनमेकं चतुःक्रोशम् ॥

इति । आद्येऽहि प्रस्थितो राजा धनुस्सहस्रं गत्वा ततस्तत्र तिष्ठेत् ।
परतो दूरं न गच्छेत् । तथाच बादरायणः—

तस्मात्क्रोशं गच्छेदाद्येऽहनि पार्थिवो विजयकाङ्क्षी ।

नूनं तद्विक्रोशाद्गमने गतिदोषमङ्गास्युः ॥

एतदुक्तं भवति—तदूर्ध्वं शकुनानां निष्फलत्वात् इति । अथ
मतान्तरमाह—प्रयातु वेति । यः श्रवणादिभेषु प्रस्थितोऽनुलोमशकुनस्य
किञ्चिद्विलम्ब्य(?) तत ऊर्ध्वं गच्छत्विति सुमुहूर्तप्रयाणे मुहूर्तमपेक्षणी-
यम् । यस्मान्नारदः—

मनोनिमित्तशकुनैर्लभं लब्ध्वा व्रजत्यरीन् ।

विषयं विजगीषुर्यो विजयश्रीयुतान्यपि ॥

निमित्तान्यत्रोक्तानि—

ज्वलदग्निमतुरगनृपासनवराङ्गनाः

गन्धपुष्पाक्षतच्छत्रचामरान्दोलिका नृपाः ।

भक्ष्येक्षुफलशस्त्राणि दध्यन्नमधुसमर्पिषः

मत्स्यमांससुराघौतवस्त्रसङ्घवृषध्वजाः ॥

पण्यस्त्रीपूर्णकलशरत्नभृङ्गारगोद्विजाः ।

भेरीमृदङ्गपटहशङ्खवीणादिनिस्वनाः ॥

वेदमङ्गलघोषाच्च यायिनां कार्यसिद्धिदाः ।

वराङ्गना—प्रजावती । सती—रग्या वारसूरित्युक्तलक्षणा । वन्ध्या—मलिना क्षीणपयोधराणां वर्ज्यत्वात् । शस्त्रं—धनुः मधु-क्षौद्रं, अन्नं—सिद्धान्नं गौर्वन्ध्या वर्ज्या, द्विजः—श्रोत्रियो विद्वान्, 'ब्राह्मणस्सर्वज्ञः श्रोत्रिय-स्सौम्यमित्रं बान्धवधन्विन' इति वचनात् । वेदपुण्याहघोषाश्च । जय—शत्रून् पराजय । षड्जमध्यमगान्धारऋषभाश्च स्वराः हिताः । इति । सम्प्रापय व्रज विसर्जय गच्छ मुञ्च वर्धस्व भुङ्क्व रमय स्त्रियमामुहीति संसर्प याहि जय दिव्यशुभप्रमोदशब्दाः प्रयातुरभिवाञ्छितसिद्धिदा-स्त्युरिति श्रीपतिः—

भृङ्गाराङ्गनवर्धमानमुकुरं वध्वैकपश्चामिषो-

ष्णीषक्षीरनृत्यानपूर्णकलशच्छत्राणि सिद्धार्थदाः ।

वीणाकेतनमीनपङ्कजदधिक्षौद्राज्यगोरोचनाः

कन्याशङ्खसिताक्षवस्त्रसुमनोविप्राश्च रत्नानि च ॥

समिदिन्धनताम्बूलकुशताम्रादिभूषणाः ।

शय्यास्रक् स्वस्तिरूप्याणि धान्यं च पुरतश्शुभम् ॥

राजा धेनुर्गुरुर्विप्रा वास' कन्या शिशुश्शव' ।

एतांस्तु प्रथमं दृष्ट्वा कार्यसिद्धिं तु विन्दति ॥

अथ—

'सुमुहूर्ते प्रयातोऽपि निमित्तविपरीततः ।

प्रयातो नामुयात्सिद्धिं अतस्तत्परिवर्जयेत् ॥'

इति वचनात्(?) यात्रासिद्धिप्रतिषेधे अशुभनिमित्तान्यत्रोक्तानि यथा—

चर्मास्थितैलगुडाविपतुभूषारनाल(?)

कृष्णान्नपङ्कतृणपङ्कविलुप्तकेशाः ।

कार्पासभस्मलवणौषधधान्यषण्ड

साङ्गारवान्तसरुगन्धनपङ्गुकुब्जाः ॥

भिन्नाङ्गभिन्नहतविप्लुतमत्तभीत

तैलाक्तमूकबाधिराधमबन्धरुद्धाः ।

क्षुत्क्षामवागुरिकधीवरकोऽभिगाती

काषयिमुण्डजटिला गमने न शस्ताः ॥

भिन्नाङ्गः—कृत्तनासाद्यङ्गभिन्नः, पतनाद्यभिघातादिना भिन्नपादाद्यव-
यवः । हतश्चोरादिभिरभिभूतः । पतितो—भग्नव्रत मत्तः—उन्मत्त
सर्पादिदर्शनात् । अधमो—मूर्खः । बद्ध—पाशनिगलादिना रुद्ध । अभि-
घाती—प्राणहिंसक काषायी—काषायवासा ॥ अन्ये

मत्तं तैलाभिषिक्तं भुजगमभिमुखं मुक्तकेशं विवस्त्रं ।

प्रव्रज्यां भिन्ननासं मलिनधृतजटारक्तपुष्पार्द्रवस्त्रान् ॥

मृत्कुम्भं भाण्डभारं कलहमभिमुखं काष्ठधारं च दृष्ट्वा ।

प्रस्थाने पार्थिवानां यदि भवति तदा मृत्युसिद्धिर्नराणाम् ॥

प्रव्रज्याग्रहणात् प्रव्रज्यायुताः पुरुषाः स्त्रियश्च । मृत्कुम्भो रिक्तः ।

ब्रह्मविस्त्वीकृताकारो जालमजालोपजीविनः ।

ब्रह्मचारी भिक्षुकी स्त्री क्षीणा वन्ध्या रजस्वला ॥

कांस्यं कार्षापणं सीसमयस्कान्तं च काञ्चिकम् ।

मार्जनी रज्जुशूर्पाणि पुलाकं तृणसञ्चयम् ॥

पाषण्डान् रिक्तपात्रं च यात्रायां पुरतोऽशुभम् । अन्ये—

पाषण्डि चण्डालखरोष्ट्रदुःखिताः

जलावकीर्णोऽप्यशुभाय वीक्षितः ।

क्व यासि तिष्ठ प्रविश प्रियाय किं

करोषि नास्तीत्यशुभा गिरस्तथा ॥

श्रीपतिः—

कुटुम्बकलहो गृहज्वलनमार्तवं योषितां
 बिडालसमरं क्षतस्खलितमम्बरादेस्तथा ।
 दुरुक्तमतिकोपता महिषयोश्च युद्धं भवेत्
 प्रयाणसमये नृणामभिमतार्थविच्छित्तये ॥
 कुलालनग्नवैद्यांश्च नापितं व्याधितं तथा ।
 कर्मरमुनिचोरांश्च वीक्ष्येन्द्रादौ तु न व्रजेत् ॥

वराहमिहिरः—

ध्वजातपत्रायुधसन्निपातः
 क्षितौ प्रयाणे यदि मानवानाम् ।
 उत्तिष्ठते चाम्बरमेति सङ्गं
 पाताच्च पात्रं नृपतेर्भयाय ॥
 उत्तानशय्यासनपात्रसर्ग-
 निष्ठचूतदुर्दर्शनवाशितानि ।
 नेष्टानि शब्दाश्च तथैव यातु-
 रागश्च तिष्ठ प्रविश स्थिराद्याः ॥

आसनं—पर्यङ्कादिः । अधोमुखयोश्शय्यासनयोरुत्तानं वा सर्गो गुदो-
 च्चांसं तोरणभूषणशकलाक्षतादीनि वाहनादीनि वाताश्च न शुभाः । यातुः
 पादस्खलने अङ्गुष्ठाद्यङ्गुलीषु फलमुक्तम्—

स्खलनं दक्षिणस्याङ्गैर्ज्येष्ठाद्यङ्गुलिषु क्रमात् ।
 वसुवस्त्रं विरोधश्च विवादं हानिमाप्नुयात् ॥
 वामेन तद्वन्नैप्फल्यं कलहं मित्रमीप्सितम् ।
 सौख्यं च लभते मर्त्यो यात्रायां नात्र संशयः ॥

अन्यत्र—

सर्वदिक्षु क्षुतं नेष्टं मृतये गोक्षुतं फलम् ।
 सन्निपातरुगाद्यार्तवृद्धपीनसनासिकैः ॥

निरर्थकं पुरः प्रोक्तं अनर्थं दक्षिणेन तु ।

पृष्ठतः कार्यलाभाय क्षुतं क्षेमाय वामतः ॥

अन्ये त्वाहुः—

वृद्धिं क्षयं विनाशं वृद्धिमनर्थागमं ततो व्याधिम् ।

आरोग्यमर्थलाभं क्षुतस्य पूर्वोदितं फलं विद्यात् ॥

अन्ये त्वन्यथाऽऽहुः—

प्रीतिद्रव्याण्यूपं व्यसनपरिभवं प्रस्तुताभावभावो

गव्यं ताम्बूलवस्त्रागमनमथ सुहृदत्तयोषागमं च ।

अर्थावार्तिं नराणामपगमनमथो वाहनं चार्कपूर्वं

जानीयात्पञ्चमादेः क्षुतजफलमिदं षोडशांशीकृतांशैः ॥

इति । वायुलक्षणमुक्तम्—

प्रोक्षितक्षुपपांसुपत्रविहगलत्रध्वजाग्रारतिः

दुर्गन्धः करिदानशोषजनकः सर्वत्र लोष्टोत्करः ।

यातुर्वायुरनिष्टदः शुभकरो यात्रानुगोऽल्पोद्यमः

प्रह्लादी सुरभिः प्रदक्षिणगतिः स्वादुश्च वृद्धिप्रदः ॥

इति ।

लीलोन्मूलितपादपः प्रतिहनद्वल्मीकगुल्माचलो

कक्ष्यासन्नहनोद्यतं प्रतिमुखं मुञ्चन् करान् शीकरान् ।

दानाक्तो यदि वा भवेद्भुतगतिः संवेष्टयन् पाणिना

दन्तं दक्षिणमक्षिणी विकसयन् राज्ञां प्रशस्तः करी ॥

आरोहति क्षितिपतौ विनयोपपन्नो

यात्रानुगोऽन्यतुरगं प्रति हेषितं च ।

वक्त्रेण च स्फुरति दक्षिणमात्मपार्श्वं

योऽश्वस्त्वमर्तुराचिरात्प्रातिभाति लक्ष्मीः ॥

अशुभानि निमित्तानि—

निद्रामीलितलोचनोऽवनितले विन्यस्तहस्तो हितं
भक्षं भक्षति भीतिकर्णयुगलो विष्मूत्रकृचासकृत् ।
दीर्घं निश्वासिति स्वलद्वातिरयं यात्राविलोमस्तथा
दीनं च द्विरदोऽशुभोऽपि गमने क्षिप्रं भवेद्भुजाम् ॥

परिजननिमित्तानि—

निद्रालस्यावनतवदनाः केतनम्बलशीलाः
अष्टाचारा मलिनपुरुषाश्छाययाऽक्रान्तदेहाः ।
दीर्घश्वासाः सजलनयनाः शोकलोभाभिभूताः
सैन्ये यस्य द्विजगुरुसुहृद्वेषिणश्चैव योधाः ॥
अकारणार्थोद्धतरोमकूपाः
जये निराशाः प्रकृतेरपेताः ।
अमङ्गलाश्चेष्टितजातहासाः
सैन्ये नरा यस्य जयो न तस्य ॥

शुभानिनिमित्तानि—

संरक्ताः परितोषगं(मं?)सवदनाः सन्तोषफुल्लेक्षणाः
स्वाचारा धृतमङ्गलाः सुवपुषः सन्त्यक्ततन्द्रक्लिमाः ।
संसक्ता धृतनिश्चया रिपुजये दैवार्यविद्वत्सुहृ-
द्धक्ता यस्य बले भवन्ति मनुजास्तस्याप्यवश्यं जयः ॥

इति ।

शुभाशुभानां कार्याणामासन्नानां भविष्यताम् ।
सूचकान्येव यानीह शकुनानि विदुर्बुधाः ॥

इति । वराहमिहिरेणोक्तानि तथा—

चुचुन्दरी सूकारिका शिवा च
श्यामोरला पिङ्गलिकान्यपुष्टा ।

वामाः प्रशस्ता गृहगोधिका च

पुंसंज्ञिता ये च प्रतन्निगस्युः ॥

एते यातुर्वर्मभागगताः शुभाः—

भारद्वाज्यजमाहिषाश्चनकुलास्सङ्कीर्तनादर्शनात्

क्रोशन्तश्च शुभप्रदा न सरटो दृष्टः शिवाय क्वचित् ।

गोधा सूकरजाहकाहिशशकाः पापा रुतालोकने

धन्यं कीर्तनमृक्षवानरफलं तद्व्यत्ययाच्छोभनम् ॥

अन्ये त्वाहुः—

सृगालनकुलव्याघ्रचकोरोरगप्रोत्रिणाम् ।

दक्षिणे दर्शनं श्रेष्ठं प्रस्थाने वामतोऽन्यथा ॥

श्चमृगाजगरध्वाक्षरूपां वायसस्य च ।

वामेनालोकनं श्रेष्ठं प्रयाणे दक्षिणेऽन्यथा ॥

उलूकमहिषश्येनाः खरोष्ट्रव्यालडुण्डुकाः ।

वृकमेलकमेषौ च याने दृष्टा न शोभनाः ॥

नारदोऽप्याह—

एला कुड्याशिवा काककपोतानानां गिरश्शुभाः ।

रुरुचुञ्चुकहेमाक्षिसना (१) यानेऽत्र वामतः ॥

रुरुवाग्व्यत्यये शस्ताः पक्षिणां दक्षिणा गतिः ।

यात्रासिद्धिर्भवेदृष्टे शवे रोदनवर्जिते ॥

प्रवेशे रोदनयुतः शवश्शवप्रदस्तदा ॥

इति ।

फणिनो डुण्डुभस्यापि सरटस्य तु वामतः ।

प्रदक्षिणा गतिश्शस्ता मृगास्सनकुलाण्डजाः ॥

वृकास्सृगालश्शार्दूलः विडाला गर्दभाश्शशाः ।

वामतोऽर्थकरा ज्ञेयाः कुरङ्गा दक्षिणेन च ॥

रिक्तोऽनुकूलः कलशो जलार्थ

मभ्युद्यतस्सिद्धिकरः प्रयाणे ।

विद्यार्थिनां चौर्यसमुद्यतानां

वणिक्क्रियामुद्यमिनामतीव ॥

नैकत्र वसतु दिवसान् दश प्रयातो नृपो न
पञ्चान्यः । यदि निवसेत्प्रस्थानं पुनरपि कुर्याच्छुभे
दिवसे ॥ २१ ॥

सुमुहूर्ते प्रयातो नृपः एकत्र प्रदेशे दश दिवसान्न वसेत् । तर्हि
पुनश्च शुभे दिवसे प्रस्थानं कुर्यात् । मण्डलेशस्तु सप्ताहानि नैकत्र तिष्ठे-
दित्याहुः । तथाच विधिरत्ने—

यांयां काष्ठां गन्तुमिच्छेद्विरोधे

तस्यांतस्यां विन्यसेद्व्यमित्थम् ।

आसप्ताहात्तेन यायादभीष्टं

तस्मादूर्ध्वं निष्फलं प्राहुरार्याः ॥

इति । प्रस्थानस्य नक्षत्रवशात् यात्राकालमाह—

प्रस्थाय सौम्ये परमृक्षयुग्ममध्युष्य पुष्ये विद-
धातु यात्राम् । विष्णौ प्रयातो न वसेत्स्वसीम्नि
मैत्रे तु निर्गत्य च यातु मूले ॥ २२ ॥

हस्ते प्रयाय पवने विदधातु यात्रां पौष्णे गतश्च
रजनीं निवसेत् स्वसीम्नि । अध्युष्य गच्छतु परेषु
मुहूर्तमात्रं नाध्युष्य हस्तगुरुविष्णुषु केचिदाहुः ॥

सौम्ये-मृगशिरशि । प्रस्थाय ततः परमार्द्रापुनर्वसुताराद्वयं तत्रैः
वाध्युष्य पुष्ये यात्रां कुर्यात् । तदूर्ध्वं न तिष्ठेत् । विष्णौ प्रस्थित-
स्वसीम्नि न वसेत् । तदानीमेव स्वसीमान्तात्परं व्रजेदित्यर्थः । मैत्रे
विनिर्गत्य प्रस्थाय ज्येष्ठामध्युष्य मूले यायात् । हस्ते प्रस्थाय चित्रा-
मध्युष्य स्वात्यां व्रजेत् । तथा रेवत्यां प्रस्थितः स्वसीम्नी रात्रिमेका-
मध्युष्य परेद्युर्व्रजेत् । अन्येषु नक्षत्रेषु प्रस्थितो मुहूर्तमात्रमध्युष्य गच्छेत् ।
अथ हस्तपुष्यश्रवणेषु प्रस्थितः क्षणमपि नाध्युष्य विलम्बमकृत्वा
गच्छेदिति केचिदाचार्या आहुः । एतदुक्तं सर्वसिद्धौ—

सौम्ये गत्वा शिवादित्ये समध्युष्यार्यमे व्रजेत् ।

धनसिद्धैर्हरौ गत्वा स्वसीम्नि निवसेद्बुधः ॥

मैत्रे गत्वेन्द्रभेऽध्युष्य मूले यायाद्धनाप्तये ।

हस्ते गत्वा समध्युष्य चित्रां स्वात्यां परे व्रजेत् ॥

गत्वा पौष्णेन्दुपुष्येषु समध्युष्यैकरात्रिकम् ।

स्वसीम्नयेव ततो गच्छेद्धनारोग्यादिसिद्धये ॥

नाध्युष्यार्केन्दुविष्ण्वार्यहस्तेषु त्वरया व्रजेत् ।

इति । पथि दश दिनान्येकत्र न वसेत् । यदि निवसति पुनश्च शुभ(सु)
दिने यायादिति प्रागुक्तं केचिदाहुः तथाच बादरायणः—

शुभलग्ने निर्यातो राजा विनिवर्तते फलसमाप्तौ ।

जित्वा सकलान् शत्रून् न पुनस्तत्रादिशेच्छमम् ॥

इति । अथ यातुर्मूर्त्यादिना शुभाशुभनिरूपणायाह—

लग्नाद्यास्स्युभोवा मूर्तिः कोशो योधो बाह्यो

मन्त्रः । शत्रुमार्गोऽथायुस्स्वान्तं व्यापारश्च प्राप्त्य-
प्राप्ती ॥ २४ ॥

यात्रालम्बाद्वादशभावा यातुर्नृपादेर्मूर्त्यादयः । लग्नं मूर्तिः शरीरं
स्यात् । द्वितीयं कोशो धनस्थानम्, तृतीयं योधो विक्रमस्थानं पत्न्यादि,
चतुर्थं वाहोऽश्व्यादियानम् ; पञ्चमं मन्त्रा बुद्धिस्थानम् सचिवादि ; षष्ठं
शत्रुरभियोज्यवैरिस्थानम् ; सप्तमं मार्गो गन्तव्यः पन्थाः गतिस्थानम् ;
अष्टममायुर्जीवितफलम् ; नवमं स्वान्तं हृदयम् ; दशमं व्यापारं कर्म-
स्थानम् ; एकादशं स्थानं प्राप्तिर्धनाद्यागमः, लाभस्थानम् ; द्वादशम-
प्राप्तिः लाभस्य व्ययस्थानमित्यर्थः—तथाच वराहमिहिरः ;—

नृपमूर्तिर्लग्नगतो(१) मन्त्रिणो द्वितीये च ।

वैद्यः पुरतस्सांवत्सरस्तृतीये परे भृत्यः ॥

स्थानपराक्रमचिन्ताव्यापारपराक्रमे(२) चमूबलं ज्ञेयम् ।

(१)प्रयातुर्मन्त्रस्य विनिश्चयं च तत्परतः ॥

ज्ञेयाः पञ्चदशाद्या द्रेक्काणचतुष्टये रिपवः ।

एकोनविंशके सैनिकाम्बुशयनेन्धनानि परतोऽर्थाः ॥

परतोऽस्य दण्डनेता दण्डस्योपद्रवः परतः ।

सेनाच्छिद्रं तस्मात् सेनानेता चतुर्विंशे ॥

सेनारोग्यं सैन्यं चतुष्पदश्च क्रमात् तच्च ।

(२)त्रये कार्यं कोशः फलसीद्विश्च भूमिपास्त्रयोऽपरतः ॥

धर्मक्रियाथ योधार्चनं च यात्रासमाप्तिश्च ।

इत्युदयाद्या भावा द्रेक्काणैर्ये मया समुद्दिष्टाः ॥

सदसत्फलमादेश्यं सदसद्युतिवीक्षणात्तेषाम् ।

इति । सामान्यस्य विशेषमाह—

योधाप्तिवर्ज्यमितरान् क्षपयन्ति भावान् पापाः
कुजोष्णकिरणौ दशमं च हित्वा । मूर्त्यायुषी हिम-

करो भृगुजस्तु मार्गं हित्वा सपत्नमितरान् प्रथ-
यन्ति सौम्याः ॥ २५ ॥

पापा—रविकुजमन्दराहुकेतवो मूर्त्यादिस्थानगताः यौधासिवर्ज्यं
यौधासिभावौ वर्जयित्वा तदितरान् भावान् क्षपयन्ति विनाशयन्ति । कुजो-
ष्णकिरणौ—कुजाकौ यौधासिभावौ दशमं च हित्वा अन्यभावान्—निघ्न-
न्ति । सौम्या—बुधगुरुशुक्राः सचन्द्राः मूर्त्यादिस्थानगताः सपत्नं-शत्रुस्थानं
हित्वा इतरान् मूर्त्यादिभावान् प्रथयन्ति—पोषयन्ति । षष्ठ्यास्तु शत्रून्
क्षपयन्ति । हिमकरश्चन्द्रः शत्रुमूर्त्यायुषी हित्वा अन्यान् प्रथयति मूर्त्या-
युषी क्षपयति । शुक्रस्तु मार्गं शत्रुं च हित्वा अन्यान् प्रथयति मार्गं शत्रुं
च क्षपयति । तथाच वराहमिहिरः—

विलाभवर्ज्यं रविसौरभौमाः

निघ्नन्ति नो कर्मणि भौमसौरौ ।

पुष्णन्ति सौम्या रिपुभाववर्ज्यं

नास्तं भृगुमृत्युविलग्नमिन्दुः ॥

इति । अत्रेदमुक्तं स्यात्—रविभौमौ त्रिषडेकादशगतौ शुभौ । मन्दस्त्रि-
षडेकादशदशस्थः राहुकेतूदयसदृशफलत्वात् । त्रिषडेकादशस्थौ शुभौ ।
एतेऽन्यत्र न शुभाः । गुरुबुधौ षट्पादगतौ न शुभौ । शुक्रः षट्सप्तम-
द्वादशगो न शुभः । चन्द्रो लग्नषडष्टमद्वादशस्थाने न शुभः । एतेऽन्यत्र
शुभा इति । वराहमिहिरः—

सन्तापशोकगदविघ्नकृदुद्गमेऽर्कः

कल्याणमानबलहार्दहरो ।

भौमान्नविद्रुममणिक्क्षितिदस्तृतीये

वैराग्यबन्धुकलहारतिदश्चतुर्थे ॥

पुत्रापदं सुतगतोऽध्वनि चार्थलाभः
 षष्ठेऽभिवाञ्छितफलाप्तिमरिक्षयाय ।
 द्यूने कलत्रकलहं धनसंक्षयं च
 मृत्युं करोति निधने सविता रुजं च॥
 धर्मं हिनस्ति नवमे सविताऽर्थदश्च
 हत्वा वियत्याविदितं श्रमकर्मदाता ।
 रत्नागमं तु बहु लाभगतः करोति
 कृत्वा व्ययं व्ययगतः कुरुतेऽर्थमन्यम् ॥
 लभे शशी कलहशोकहरो न पूर्णः
 स्त्रीवाजिरत्नसुहृदात्मजदः कुटुम्बे ।
 दुश्चित्कगो युवतिरत्नधनप्रदाता
 वध्वाप्तिदः सुहृदि तत्क्षयदश्च कृष्णे ॥
 अर्थक्षयस्त्रयगतः सुतशोककृच्च
 मित्रारितां प्रकुरुते न सुखं च षष्ठे ।
 अस्तेऽर्थभूयुवतिदोऽर्थविनाशदोणु-
 श्वन्द्रोऽष्टमे निधनशोककरः प्रयातुः ॥
 प्रत्येति नाशु नवमे कुरुतेऽतिकार्यं
 क्षीणो व्ययं वियति वृद्धिकरोन्यथास्थः ।
 एश्वर्यसौख्यधनलाभमुपैति लभे
 क्लेशक्षयव्ययभयानि च रिप्फयाते ॥
 लभे विषाग्निरुधिरागमशस्त्रबाधा
 भिन्द्याद्वलं धनगतोऽर्थगतश्च पश्चात् ।
 दुश्चित्कगो युवतिरत्नधनाम्बराप्तिं
 बन्धुक्षयारिभयदो हिवुके महीजः ॥

पुत्रापदं क्षितिमुतः कुरुते सुतस्थः

शत्रुप्रणाशमचिरादारिग. करोति ।

¹ अर्थक्षयारतिगदाधनमस्तसंस्थो

बन्धा(बन्ध्व)र्थनाशमयमृत्युकरश्च मृत्यौ ।

धर्म न साधयति धर्मगतो महीजः

शस्तोऽम्बरे न शुभदः कथितोऽपरैश्च ॥

लभार्थसिद्धिविभवागमदः प्रयातु-

वित्तक्षयं बहु करोति गतश्च रिप्फे ।

लभे कीर्तिसुखार्थमित्राविजयान् प्राप्नोति वित्तं धने

सोत्कण्ठं स विरागमेति सहजे कार्यं लभेताखिलम् ।

पाताले शयनान्नपानविभवान् पुत्रागमं पञ्चमे

षष्ठे यात्यरिवध्यतां शशिसुते क्लेशश्च यातुर्भवेत् ॥

जायास्थे प्रवराङ्गनाम्बरधनप्राप्तिर्बुधेऽर्कात्सुते

केचिल्लग्नमुशन्ति नैधनगते शंसन्ति केचिच्छुभम् ।

धर्मे धर्मविवृद्धिरम्बरगते सिद्धिर्भवेदीप्सिता

विद्यार्थाप्तिरयत्नतश्च परतो रिप्फे च वाच्यो व्ययः ।

कीर्तिर्लभेऽर्थस्य सिद्धिर्द्वितीये

दुश्चित्कस्थे क्षुच्छमार्तिः सुरेड्ये ।

पातळस्थे सर्वदाऽऽसत्तिकामा

कार्यं सिध्यत्यात्मजस्थेऽप्यसाध्यम् ॥

षष्ठे जीवे शत्रुरायाति वृद्धिं

केचित्प्राहुर्वश्यतां याति शत्रुः ।

विन्दन्तेऽस्तेऽरिस्वयोषा यशांसि

मृत्यौ प्राणान् हन्त्यथान्ये जगुर्न ॥

पुत्रोत्पत्तिर्धर्मवृद्धिश्च धर्मे
 जीवे कर्मण्यर्थसिद्धिर्यशश्च ।
 लाभे जीवे वाञ्छितायाति सिद्धिः
 रिप्फे प्राप्ते क्लिश्यतेऽनेकदुःखैः ॥
 वश्यार्थाम्बरमाल्यभोजनसुखप्राप्तिर्विलम्बे भृगौ
 लाभोऽर्थे सहजे न सीदति गतः प्राप्नोति चैषां श्रुतिः ।
 पाताले सुहृदागमः सुतगृहे स्थानार्थमानागमः
 षष्ठे शत्रुपराभवारतिशुचं स्थानेऽन्यथा तज्जगुः ॥
 दत्त्वा स्त्रीधनमस्तगः स्वविषयव्युच्छित्तिदो भार्गवः
 कार्यं साधयतेऽष्टमे च नवमे क्षिप्रं करोतीप्सितम् ।
 यातुः कर्मगतः प्रभूतधनदो लाभे जयार्थप्रदो
 व्यर्थं द्वादशजन्मगोऽत्र कुरुते शस्तोऽपरैर्द्वादशे ॥
 बन्धं वधं चार्कसुते विलम्बे
 धनेऽर्थहानिं लभते शुचं च ।
 शत्रोर्बलं हन्ति गतस्तृतीयो
 चतुर्थगो बन्धवधं परेभ्यः ॥
 नार्थस्य सिद्धिस्सुतगोऽर्कपुत्रे
 रिपुं रिपौ संप्रजयत्ययत्नात् ।
 उत्साहभङ्गोऽर्कसुते च कामे
 विषामिशस्त्रारिवधोऽष्टमस्थे ॥
 धर्मे न धर्मं लभते सुखं च
 यानावृत्तिं कर्मफलं च स्वस्थे ।
 एकादशस्थे जयवित्तलाभो
 मन्देऽन्त्यगे नाशमुपैति याता ॥

इति । मूर्त्यादिगतानां शुभाशुभत्वं गुरुमतेनाह—

यात्रायां तनुमृत्युशत्रुषु विधुः कृष्णे च स्वा-
म्ब्वस्तगः शुक्ले शत्रुमदागमेषु धिषणे रन्ध्रक्षतभ्रा-
षु । पापाऽनात्मनि विक्रमाम्बरभवेऽप्यध्वे च राह-
र्कजौ रिप्फस्थानाखिलान् ग्रहान् न शुभदान् प्रोवा-
च वाचस्पतिः ॥ २६ ॥

शुक्ले कृष्णे च चन्द्रं लग्नादष्टमषष्ठेषु स्थितं, कृष्णे दशमचतु-
र्थसप्तमगनं, शुक्रं षष्ठसप्तमैकादशेषु स्थितं, धिषणं गुरुं अष्टमषष्ठतृतीयेषु
स्थितं षड्दशैकादशलग्नव्यतिरिक्तेषु लग्नाद्विचतुःपञ्चमसप्तमाष्टमनवम-
स्थानेषु पापान् रविकुजराहून् तेषु अत्रे—दशमे च उदयद्विचतु
पञ्चसप्ताष्टमनवमदशमस्थानेषु राहुशनैश्चरौ द्वादशस्थानाखिलात् सर्वाने-
तांश्च शुक्रगुरुरविकुजगनिराहून् । एवमेतेषु स्थानेषु एतान् ग्रहान् शुभान्
बृहस्पतिः प्रोक्तवान् । अर्थादेवान्यस्थानेषु शुभप्रदानाह । तथा च
गुरुवाक्यम्—

पापास्सर्वे शुभा यातुररातित्रिदशायगाः

शनिं विहाय कर्मस्थं शेषेषु न शुभप्रदाः

राहुकेतुफलं प्रोक्तं मन्दवद्भावराशिषु

शुक्रोऽरातिव्ययास्तायभवनेषु न शोभनः ॥

शेषेषु महती लक्ष्मी कीर्ति दद्याद्भनान्यपि ।

मन्त्री षट्त्रिव्ययाष्टर्क्षस्थितो यातुर्न शोभनः ॥

शेषेषु विजयं सौख्यधनकीर्तिप्रदो बली ।

यातुरायार्थपुत्रर्क्षत्रिधर्मदशमस्थितः ॥

शुभदोऽशुभदशेषभवने विनिशाकरे ।

इति ।

बन्धुगो बन्धुदश्चन्द्रः कृष्णे बन्धुविनाशनः ।

सप्तमे धनदः स्त्रीणां लाभदोऽर्थविनाशनः ।

दशमेऽहि क्षये चन्द्रो व्ययदोऽवृद्धिदस्सदा ॥

इति । बुधस्सर्वत्र शुभ एव । यतो गुरुणा —

शुक्रमायगतं त्यक्त्वा शुभास्सर्वे शुभप्रदाः ।

तथा च विधिरत्ने—

षष्ठे ग्रहफलं यद्वत् दशमैकादशे तथा ।

यथाष्टमे तथा रिप्ते फलं यात्रासु पठ्यते ॥

इति । बादरायणः—

उपचयसंस्थाः पापाः सुतलाभद्वादशं विना शुक्रम् ।

उपचयजामित्रगतः शशी गुरुस्सर्वदा सौम्याः ॥

अन्त्यायाहिबुकसप्तमलम्बोपगतश्शुभप्रदः प्रायः ।

शशिनं शुक्ले भुक्तं कृष्णे वाप्य . . . लकं वाच्यम् ॥

इति । अथावश्यकं याने प्राप्ते यथोक्ततिथिवारताराणामसंयोगे तद्दोष-
शान्त्यर्थं तिथ्यादिषु तस्य द्रव्याण्याह—

अर्कदलतण्डुलजले घृतं यवागूर्हविस्सुवर्णज-
लम् । मोदकबीजापूरौ जलगोमूत्रे यवं च पाय-
सकम् । गुडरुधिरे मुद्गोदनमिति दस्तूनि क्रमेण प-
ञ्चदश । प्रथमादितिथिषु भुक्त्वा स्पृष्ट्वा वा यातु का-
र्यसंसिद्धयै ॥ २७ ॥

अर्कदलमर्कपत्रं, तण्डुलजलं—तण्डुलक्षालनोदकं घृतं गव्यमा-
ज्यं; यवागू — श्राणा; हविर्हविष्यं; सुवर्णजलमन्तर्निहितकाञ्चनपानी-
यं; जलं—शुद्धोदकं; रुधिरं मृगादीनां, एतान्यर्कपत्रादीनि पञ्चदश
वस्तूनि कार्यसिद्ध्यर्थं क्रमेण प्रथमादितिथिषु भोज्यानि । तानि भुक्त्वा
अयोग्यानि स्पृष्ट्वा वा; वाशब्दादलाभे स्मृत्वा वा प्रयातु । अत्र गुरु —

अर्कपत्रं भवेद्यातुर्भक्ष्यं सत्तण्डुलोदकम् ।

तृतीयायां भवेत्सर्पिः यवागूस्स्यादत परम् ॥

पञ्चम्यां तु हविष्यान्नं षष्ठ्यां स्यात्काञ्चनोदकम् ।

अपूपभुक्तिस्सप्तम्यां अष्टम्यां बीजपूरकम् ॥

नवम्यां तोयपानं स्याद्गोमूत्रं स्यादतः परम् ।

एकादश्यां यवाद्यन्नं द्वादश्यां पायसं तथा ॥

त्रयोदश्यां गुडो लेह्यः रुधिरं स्याच्चतुर्दशे ।

मुद्गोदनं भवेद्भोज्यं पञ्चदश्यां यियासतः ।

पक्षयोरुभयोरेवं यात्रायोगविधिस्समः ॥

तिथयो नव दूष्या स्युः यात्रायां योगगामिनाम् ।

नक्षत्रातिथिभोज्यादिभक्षं कृत्वा यियासताम् ॥

इति । रत्नेन—

अर्कदलतण्डुलोदकसर्पिंषि हविष्यदधिसुवर्णपयः ।

तिलवारिबीजपूरं माषाक्षतसूत्रपिष्टकाश्चापि ॥

तिलपिष्टकन्दमूलानि निशामथ (सप्त)शस्तवृक्षपत्राणि ।

प्रतिपत्प्रभृतिषु भुक्त्वा प्रस्थाता सिद्धिभागभवति ॥

इति । वारभक्ष्याण्याह —

क्रमात्सूर्यादिवारेषु घृतं क्षीरं गुडं तथा । तिलान्
दधि यवान् माषान् भुक्त्वा यायान्नराधिपः ॥ २८ ॥

अत्र गुरुवाक्यमेव व्यख्यानम्—

सूर्यवारे घृतं प्राश्य सोमवारे पयस्तथा ।

गुडं मङ्गलवारे तु बुधवारे तिलानपि ॥

गुरुवारे दधि प्राश्य शुक्रवारे यवानपि ।

माषान् भुक्त्वा शनेर्वारे पश्चाद्गच्छेन्न दोषभाक् ॥

इति । श्रीपतिना तु द्रव्यान्तराण्युक्तानि—

मार्जिका सघृतपायसं तथा

काञ्जिकं सितपयो दधि क्रमात् ।

क्षीरमक्कथितकं तिलोदनं

वारदोहदविधिः बुधैः स्मृतः ॥

इति । नक्षत्रभक्ष्याण्याह -

तारास्वश्विन्यादिषु कल्माषं तण्डुलं च दधि
पृषतम् । मृगमांसं रुधिरमसृग्विडालकं पायसं च
खगमांसम् ॥ सतिलान्नं शाल्योदनमपूपकं यवतिलं
च चित्रान्नम् । आमलकं पिष्टान्नं कुलत्थकं बीजपू-
रकं कन्दम् ॥ दधि बीजापूराख्यं सक्तून् शाकं विडा-
लमांसं च । अजदुग्धं कोलफलं मुद्गान्नं च ब्रुवन्ति
भक्ष्याणि ॥ २९ ॥

कल्माषमरण्यमाषं । अथवाऽक्षतमाषतिलानामेकभावः कल्माष
उच्यते । अश्विन्यामक्षतमाषतिलान् संमिश्रय भक्षयेत् । भरण्यां
तु शुभतण्डुलं सतिलमक्षतमन्ये । तथा च गुरुः—

अक्षतांश्च तथा माषान् सतिलानश्चिदेवते ।

तण्डुलान्यमदैवत्ये दधि गव्यं हुताशने ॥
 पृषतं चैव रोहिण्यां सासिनं (मं)^१ चापरार्धके ।
 पिशितं सोमदैवत्ये रुधिरं शाङ्करे तु मे ।
 वि(वि)लायनं पुनर्वस्वोः पायसं पुष्यभे भवेत् ॥
 सर्पमांसं घृतं सार्षे मघायां तु तिलोदनम् ।
 शाल्यन्नं भाग्यभेऽश्नीयात् आर्यम्णेऽपूपभुग्भवेत् ॥
 यवं तिलांस्तथा हस्ते चित्रायां चित्रमोदनम् ।
 अप्युजामलकं(?) स्वात्यां क्षीरं चापरविंशके ॥
 पिष्टोदनं विशाखासु फलं यावकमेव च ।
 मैत्रे कुलत्थपिष्टे द्वे मूलके मधुसर्पिषी ॥
 ऐन्द्रर्क्षे बीजपूरं स्यान्मूलकेन्द्रं च सक्तुकम् ।
 दध्ना च शालिनीस्नावमाप्ये स्याद्बीजपूरकम् ॥
 ततोऽभिजित्सु शुण्ठी स्याच्छ्रवणे सक्तुशालिनी ।
 दध्ना युतं श्रविष्ठायां शालिनी स्नावशाकभुक् ॥
 वारुणे मधुना युक्तं बैडालं मांसमेव च ।
 शर्करामजपाद्वैवे पयश्चाजं पिबेन्नरः ॥
 आहिर्बुध्न्येष्टमांसं स्याद्द्वाराहं मांसमेव च ।
 रैवत्यां शाकसंयुक्तं मुद्गान्नं सक्तुकं भवेत् ।
 माषसम्पृक्तापिण्डं च भुक्त्वा यायान्नराधिपः ॥

इति ।

नक्षत्रभक्ष्यं प्रथमं तु भुक्त्वा
 ततस्थितौ यच्च ततश्च वारे ।
 तस्मिन् पुनःकृत्य यथेह यायात्
 यात्राफलं वाञ्छति यो मनुष्यः ॥

इति । दिग्वशाद्यात्रायां कालं भक्ष्यं चाह—

यात्रा तद्दिन एव कार्यवशतः योऽवश्यकार्यागतौ-
तस्यां पायसभुग्विवस्वदुदये यायादुदीचीं दिशम् ।
मध्याह्ने घृतभोजनो नरपतिः प्राचीमवाचीं रवेर-
र्धास्ते तिलभोजनोऽथ झषभुङ्मध्ये प्रतीचीं दिशम् ॥

स्पष्टोऽर्थः—

फलसिद्धिर्योगवशाद्राज्ञां विप्रस्य घिष्ण्यत ।

मुहूर्तशक्तितोऽन्येषां शकुनैस्तस्करस्य च ॥

इति ।

आरोग्यमृक्षेण धनं क्षणेन कार्यस्य सिद्धिस्तिथिना शुभेन ।

राश्युद्धमेनाध्वानि शुद्धिमाहुः प्रायश्शुभानि क्षणदाकरेण ॥

इति ।

लग्नस्य शुद्धिर्दशमे निमित्तैर्विज्ञायते सुकरणैश्च सम्यक् ।

अनन्यभावाश्रयसम्प्रवृत्ते कौलीनपुंसश्च तिलैर्विदेशे ॥

इति ।

यथा हि योगादमृतायते विषं

विषायते मध्वपि सर्पिषा समम् ।

तथा विहाय स्वफलानि खेचराः

फलं प्रयच्छन्ति हि योगसंभवम् ॥

तिथौ क्षणे भे करणे च वारे

योगे विलम्बे हिमगौ नृपाणाम् ।

पापोऽपि यात्राफलदोऽत्र योगैः

यतस्ततस्तत्क्रियतोऽभिवक्ष्ये ॥

इति ।

नक्षत्रमेकं युगपत्प्रविष्टौ
 यदा धरित्रीतनयामरेड्यौ ।
 कुर्यात्सयात्रां द्विषतां बलस्य
 रोगी यथान्तं निशि सौप्तिकेन॥
 ऋक्षे गुरुज्ञौ गुरुभार्गवौ वा
 ज्ञभार्गवौ वा युगपत्समेतौ ।
 अर्थानवाप्नोति तदा विचित्रान्
 शास्त्रात्सुतीर्थाद्गुरुसेवयेव ॥

इति । अतः परं गुरुणोक्तान् योगान् कथयामीति तानाह सप्तश्लोक्या -

चन्द्रेऽनष्टमगे क्षते दिनकरे लग्ने बलिष्ठो गुरुः
 केन्द्रस्थे सुरराजमन्त्रिणि तनोरापोक्लिमस्थे विधौ ।
 मूर्तिस्थे मृगलाञ्छने सुरगुरौ शुक्रेऽपि वा कण्टके
 चन्द्रेऽस्ते तनुगे गुरौ च सहजे पापे व्यये ज्ञे
 गुरौ ॥ ३१ ॥

मूर्तिभ्रातृमदायस्वेषु धिषणः पापौ शशीन-
 शशुभौ जीवार्केन्दुसितेषु मूर्त्यरिभस्तोयेषु पुत्रे
 बुधे । वागीशे वपुषि स्थिते भवधनप्राप्तेषु शेषे-
 षु च ज्ञे लग्नारिखतोयगे बलयुते पापोज्झितेऽन्त्ये
 (न्ये) स्मरे ॥ ३२ ॥

ज्ञे लग्नम्बुरिपुस्मरेषु सितसौम्यार्करजीवाः क्र-

मातृ लाभार्जारिपुरिष्कमन्मथतनुत्रिस्थेषु सूर्या-
दिषु षट्ख(ष्ठ)भ्रातृमदात्मबन्धुभवगास्सर्वे गुरोर्वा-
सरे पुत्रारित्रिमदाष्टमेषु गुरुभान्वारज्ञशुक्रेषु च ॥

होराम्बुत्रिषु जीवशुक्रदिनपेष्वायेऽर्कजीवाः
कुजे व्यर्काः पञ्च निरन्तरं यदि गताः क्षेत्राणि
पञ्च ग्रहाः । यद्येकान्तरगा ग्रहाश्च निखिलाः क्षे-
त्रेषु षट्सु स्थिताः चन्द्रे भार्गवजीवमध्यवसतौ
लग्ने सुखे वा स्थिते ॥ ३४ ॥

बन्धुस्थौ ज्ञासितौ स्मरे हिमकरे लग्ने च
जीवेक्षिते लग्ने सदृशि केन्द्रगौ गुरुकुजौ यद्ये-
कतारांशगौ । यात्रादिक्पतिसंश्रिताञ्च भवनात्पुत्रे
बलाढ्यग्रहे जीवज्ञार्कसितेषु कश्चन कुजान्मन्दा-
त्रिकोणस्थितः ॥ ३५ ॥

कल्यस्थो धिषणः परेऽपि च यथालाभस्व-
गेहस्थिताः पापा विक्रमगाश्शुभास्तनुगताश्चन्द्र-
स्थितोऽनष्टमे । चन्द्रेऽनष्टमगे तनौ सुरगुरौ
क्रूरे भवे व्योम्नि वा लग्नैकादशवित्तगा यदि
शुभाः पापा त्रिगौ खे रविः ॥ ३६ ॥

स्वोच्चस्थो यदि कश्चनोदयगतश्चन्द्रे स्थिते क-
र्कटे संत्कर्मा हिवुक्स्थितो यदि सिते पक्षे शु-
भश्चन्द्रमाः । व्योम्नीन्दुर्गुरुरात्मगो भवगताः पा-
पा विशुद्धे सुने क्रूरेषु त्रिषडायगेषु धिषणे मूर्तौ
विशुक्त्रे स्मरे ॥ ३७ ॥

यात्रालग्नय स एको योगः । तथाच गुरुवाक्यम्—
लग्ने गुरौ बलैर्दीप्ते विना मृत्युं निशाकरे ।
षष्ठे दिवाकरे याते यात्रायोगः शुभावहः ॥

इति ।

त्रिषडायगते पापे सप्तमे शुक्रवर्जिते ।

गुरुदये भवेद्यात्रा यातुरिष्टं प्रयच्छति ॥

श्लोकस्य पद्यस्य एकैकपादोदितान् योगानिमान् जीवोक्तानष्टाविंशति
सङ्ख्यान् योगान् सुनफानफाधुरधुराग्न्यान् योगाधियोगानेतांश्च यात्रावि-
विषये सिद्धिकरानभिलषितकार्यसिद्धिकरान् विदुः । सुनफानफाधुरुधुरा-
धियोगानां स्वरूपं प्रागुपनयने अभिहितम् —

चन्द्रस्य द्वादशे कश्चिद्रविवर्जं न शोभनम् ।

द्वितीये चोदयस्थौ वा एते योगास्त्रयः शुभाः ॥

वर्गोत्तमगते लग्ने स्वाधिमित्रभगे गुरौ ।

हन्ति शत्रुं गतो राजा कर्म ज्ञानोदयं यथा ॥

गुरौ विलग्नौ यदि वा शशाङ्के

षष्ठे रवौ कर्मगतेऽर्कपुत्रे ।

सितज्ञयोर्बन्धुसुतस्थयोश्च

यात्रा जनित्री विहिता नि धत्ते ॥

होरारिधीलाभसहोत्थगेषु

जीवार्किसौम्यार्ककुजेषु यातुः ।

वरस्त्रियोकीर्तिजयामिधोऽसौ

श्रेष्ठो वसिष्ठो न कृतार्थसिद्धयै ॥

एकान्तरर्क्षे भृगुजात्कुजाद्वा

सौम्ये स्थिते सूर्यसुताद्गुरोर्वा ।

प्रध्वस्यतेऽरीनचिराद्गतस्य (८)

सितेन्दुजो . . . निशाकरस्तु सप्तमे ॥

यदा गतो नृपस्तदा जयत्यरीन् विना रणात् ।

कुजयुक्तनवांशक्षाद्दशद्वादशगो रवौ ॥

क्रमाद्दशौ नवांशे वा यात्रायां शुभदो गुरुः ।

आदत्ते धरणीपतेरभिहितं पुष्पं विशेषत्फलं

यात्रोक्तो निखिलो जनस्य समयः सर्वत्र साधारणः ।

वराहमिहिरः—

वक्ष्यामि भूपमधिकृत्य गुणोपपन्नम् ।

. ॥

अपि च—

यात्राकालमतः परं मुनिमतादालोक्य . . . (?)

तथाच गुरुः—

भौमसूर्योद्भवो योगो गच्छतां शुभदो भवेत् ।

यात्रा राज्ञां तथाऽन्येषां नृपकृत्यकृतां तथा ॥

इति । वराहमिहिरः—

रजका वर्धकाश्चैव यस्य जन्मनि याचकाः ।

तान् पापान् पथि निश्शङ्कं यात्रालम्बेषु योजयेत् ॥

योगाधियोगानाह—

एकोऽपि जीवो बलवान् विलम्बे केन्द्रत्रिकोणे
शशिजः कविर्वा । द्वाभ्यां च ताभ्यामाधियोगस्सं-
ज्ञो योगाधियोगस्सहितैस्त्रिभिः स्यात् ॥ ३८ ॥

. त्रिकोणगः ।

योगोऽयं ब्रह्मणा प्रोक्तो यात्रायामतिशोभनः ॥

अधियोगस्तथा ताभ्यां त्रिभिर्योगोऽधियोगकः ।

एभिः फलं पृथग्वक्ष्ये यथोवाच चतुर्मुखः ॥

योगेन(?) ता नरा यात्रां गत्वा क्षेमेण ते पुनः ।

कृत्यकार्या निवृत्त्याशु क्षेमेणायान्ति चालयम् ॥

अधियोगगता एते क्षेमेणायान्ति संयुगे ।

जित्वा रिपून् धनं लब्ध्वा यशसा च जयश्रिया ॥

योगाधियोगे ये यातास्ते चायान्ति धनैर्युताः ।

जित्वा रिपून् जयं धात्री लब्ध्वा क्षेमेण योषिता ॥

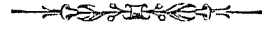
एतदुक्तं भवति—

यथोक्तकालेन प्रयाणं दुरवापम् । अन्ये त्वाहुः—यातॄणां स्वचि-
कीर्षितकृत्यानुगुणेषु योगादिषु यात्रा कार्या । यथा धर्मप्रवृत्तानां
यथाविधयोगेषु यात्रा कार्येति । यथा परधनापहरणाय गच्छतां नाभस-
योगेषु कुटादिषु; परविघातार्थं गच्छतां केमद्रुमादिषु; धर्मार्थं गच्छतां
गदादिषु कृष्यर्थं गच्छतां केदारादिषु; एवमादि यथायोग्यं यात्रा देयेति ।
सर्वेषां विनापि लग्नादिसामान्यविशुद्धि(?)राजयोगेषु लग्ने शुद्धेऽल्पदोषत्वात्
माण्डलिकादिषु तथामात्यसेनापतिधनिकयोगादिषु यथायोग्यं प्रयाणं
दातव्यमिति । तथाचोक्तं शुभाशुभ फलयोगजातके—

उदाहृतान् यथायोग्यं प्रयाणेष्वपि योजयेत् । इति ।

इतीह रुचिरैः श्लोकैश्चतुष्पञ्चाशता कृतः। द्वाद-
शोऽयं समाप्तोऽभूद्यात्राध्यायः सविस्तरः ॥ ३९ ॥

इति विद्यामाधवीये द्वादशोयात्राध्यायः



इति—एवमादियात्रामुहूर्तयोगादिसम्पन्ने इह विद्यामाधवशास्त्रे-
रुचिरैर्मनोहरैः श्लोकैः पद्यसन्दर्भैः चतुःपञ्चाशता चतुःपञ्चाशद्भिः पद्यैः
कृतो विरचितो अयं द्वादशो यात्राध्यायः सविस्त्रो — विस्तरेण सहितः
समाप्तोऽभूत् सम्पूर्णोऽभूदित्यर्थः ॥

इति मुहूर्तदीपिकायां विद्यामाधवीय व्याख्यायां
द्वादशो यात्राध्यायः



त्रयोदशः प्रकीर्णकाध्यायः

अथ प्रागनभिहितकार्याणि पुंसामवश्यकार्याणि बहूनि कर्माणि सन्तीति तेषां सर्वेषां कालमेकत्राध्याये विवक्षुरादौ तत्र नववस्त्रपरिधानस्याह- -

अत्याज्यनामानि सशूर्पघटे विचापे कुर्यात्
गणे निवसनं नवमम्बराणाम् । तत्रापि मूषिकभयं
कथयन्ति सौम्ये प्राचेतसे विषभयं श्रवणेऽ-
क्षिरोगः ॥ १ ॥

अत्याज्याख्यगणे सविशाखानक्षत्रे सकुम्भराशौ विचापे धनू-
राशिवर्जिते अम्बराणां वस्त्राणां नवमाद्यं निवसनं कुर्यात् । अत्र वराह-
मिहिरः—

पुण्यप्रजेशवसुहस्तविशाखचित्रा-

मैत्रोत्तराणि पवनादितिवाजिपौष्णाः ।

एते चतुर्दश नवाम्बरधारणेष्टाः

मृत्युप्रदे शिवमघे व्यसनानि शेषाः ॥

इति । तत्र तास्वत्याज्यतारास्वपि सौम्ये—मृगाशिरसि मूषिकभयं वस्त्रस्य
मूषिकाच्छेदभयं प्राचेतसे—शतभिषाजि वस्त्रस्वामिनो विषभयं श्रवणे नेत्र-
रोगं कथयन्ति । मुनय इति शेषः । तथाच वराहमिहिरः—

प्रभूतवस्त्रदाश्विनी भरण्यथापहारिणी

प्रदह्यतेऽग्निदैवते प्रजेश्वरेऽर्थसिद्धयः ।

मृगे तु मूषिकाद्वयं व्यसुत्वमेति शाङ्करे
 पुनर्वसौ शुभागमस्तैर्दग्रभे धनैर्युतिः ॥
 भुजङ्गभे विलुप्यते मघासु मृत्युमादिशेत्
 भगाह्वये नृपाद्वयं धनागमाय चोत्तरा ।
 करे तु कर्मसिद्धयः शुभागमस्सुचित्रया
 शुभं च भोज्यमानिले द्विदैवते जनप्रियः ॥
 सुहृद्युतिस्तु मित्रभे पुरन्दरेऽम्बरक्षयः ।
 जलप्लुतिस्तु नैर्ऋते रुजो जलाधिदेवते ॥
 मृष्टमन्नमपि वैश्वदैवते
 वैष्णवे भवति नेत्ररोगिता ।
 धान्यलब्धिमपि वासवे विदुः
 वारुणे विषकृतं महद्भयं ॥
 भद्रपदासु भयं सलिलोत्थं
 तत्परतस्तु भवेत् सुतलब्धिः ।
 रत्नयुतिं कथयन्ति च पोष्णे
 यो हि नवाम्बरमिच्छति वस्तुम ॥

इति । प्रतिराशि फलं गुरुणोक्तम्—

राज्ञो भयं क्रिये विद्यात् धान्यलाभं वृषोदये ।
 धनलाभं यमे राशौ सुखं कर्क्या लभेन्नरः ॥
 सिंहे विनाशतां याति कन्यायां तु धनं लभेत् ।
 जूके बहुशुभं ब्रूयात् वृश्चिके व्यसनं महत् ॥
 रोगं धनुषि वासोहृत् गौणभावं मृगे लभेत् ।
 घटेऽतिपूज्यतां याति धनं मीने लभेन्नरः ॥
 वस्त्रसन्धारणादेवं लग्नराशौ फलं लभेत् ।

नववस्त्रप्रयोगेषु भुक्तपूर्वे तु नैव तत् ॥
इति । मृगकुम्भधनुर्मीना मध्यमा इत्यन्ये । प्रतिवारफलं श्रपिति-
नोक्तम्—

शीर्णं रवौ सततमम्बुभिरार्द्रमिन्दौ
भौमे(तु चेत्) शुचे बुधदिने च भवेद्धनाय ।
ज्ञानाय मन्त्रिणि भृगौ प्रियसंगम च
मन्दे मलाय च नवाम्बरधारणं स्यात् ॥

इति । कृष्णाष्टम्याः परतस्तिथयो न शस्ताः । तथा च गुरुः—
प्रशस्तं पूर्वपक्षे तु कृष्णे नैव प्रशस्यते ।
द्वितीया च तृतीया च पञ्चमी सप्तमी तथा ॥
दशम्येकाशी चैव त्रयोदश्यपि शोभनाः ।
कृष्णपक्षेऽपि तद्वत् स्यात् अष्टम्यन्तं कदाचन ॥

इति । ग्रहस्थितिश्च गुरुणोक्ता—
पापाः स्युः त्रिषडायस्थाः शुभाः केन्द्रत्रिकोणगाः ।
शुभदाः स्युः ग्रहास्सर्वे नववस्त्रभुजां नृणाम् ॥

इति ।
अष्टमस्थाः ग्रहास्सर्वे नेष्टा वस्त्रस्य धारणे ॥

योगश्च तेनैवोक्तः—
शुभवारे शुभारताराः शोभनैः स्थितिभिर्युताः ।
शुभांशे शुभलभे च शुभग्रहनिरीक्षणे ॥
शुभग्रहोदये चैव नवेनाच्छादनं शुभम् ।

इति ।
शुभग्रहोदये चन्द्रशुक्रौ पाताळसंस्थितौ ।
नैतौ(?) ॥

द्वादशाष्टमाभ्यामन्यत्र चन्द्रशुभः । तथा च स एव—

चन्द्रः शुभप्रदो ज्ञेयो द्वादशाष्टममे विना ।

शुभांशगे शुभः प्रोक्तः पापांशे न शुभप्रदः ॥

इति । रक्तादिवस्त्रधारणे श्रीपतिना विशेष उक्तः—

करादिपञ्चकेऽश्विमे सपौष्णवासवे स्मृता ।

धृतिश्च शाङ्गकाञ्चनप्रवाळरक्तवाससाम् ॥

इति । क्वचित् त्याज्यगणे वस्त्रधारणमिष्टमित्याह—

**विवाहादिषु कार्येषु राजाज्ञायां च वाससाम् ।
परिधानं नवीनानां गणे त्याज्येऽप्यदूषितम् ॥२॥**

आदिशब्देन व्रतोपनयनसमावर्तनादिकर्माणि गृह्यन्ते । विवा-
हादिकार्येषु राज्ञः—स्वामिनः सन्तोषदानपूर्विकायामाज्ञायां चशब्दात्
ब्राह्मणसंमतौ च नवाम्बरधारणं त्याज्यर्क्षादिगणेऽपि अदूषितं—प्रशस्तम् ॥
तथाचोक्तम्—

वस्त्रं नवाम्बरं शस्तमृक्षेऽपि गुणवर्जिते ।

विवाहे राजसन्माने ब्राह्मणानां च संमतौ ॥

गुरुश्च—

द्वितीयजन्मकाले च समावर्ते व्रते तथा ।

विवाहे च शुभः कालः प्राप्तस्तेषां प्रचोदितः ॥

इति ।

शुभग्रहोदये चन्द्रशुक्रौ पाताळसंस्थितौ ।

युगपद्वा पृथग्वापि शुभं वस्त्रस्य धारणम् ॥

इति । प्रथमाच्छादनात्परं अग्निमूषिककीटादिहते वस्त्रे तत्स्वामिनः
शुभाशुभमुक्तं गुर्वादिभिरभिधीयते ।

तत्र गुरुः—

षण्मासाभ्यन्तरे वस्त्रे प्रथमाच्छादनात् परम् ।
 मूषिकाग्निहते दुष्टे शिविरीयष्टिभिः क्षते ॥
 मषीगोमयालिप्ते वा कर्दमादिभिराहते ।
 कायानुलेपनाद्यैर्वा ताम्बूलरससंयुते ॥
 एषामाकारभेदैश्च बहुच्छेदनमानतः ।
 शुभाशुभफलं वक्ष्ये नववस्त्रवतां नृणाम् ॥
 आच्छादिते नरैर्वस्त्रे तथाऽनाच्छादिते फलम् ।
 महल्लघु भवेतां ते क्रमादस्फुटितेऽपि च ॥
 तद्वासास्त्रिगुणीकृत्य प्रारम्भे (प्रारम्भं) तू चोर्ध्वपश्चिमे ।
 अर्धावसानं प्राच्यां तु भूमौ सन्यस्य वा पुनः ॥
 मेषादिराशिचक्रेऽस्मिन् वस्त्रे वस्त्रवतो गृहा(त्)नै ।
 द्वादशाष्टमषष्ठेषु यदि पापग्रहेण तत् ॥
 दृष्टं वा छिन्नमेतस्य नाशमारभयप्रदम् ।
 अन्यत्र सद्ग्रहैः सार्धं छिन्नं शोभनदं भवेत् ॥
 वस्त्रवज्जन्मराशेस्तु भावैर्भावं फलरूपि ।
 शुभाशुभग्रहैस्सार्धं छिन्ने तद्वत् फलं वदेत् ॥
 इति । अन्ये तु तत्रैव मेषादिराशिवशेन फलमाहुः—
 कीटाग्रघाखुहतात्मनां त्रिगुणितप्रागुद्दशानामजे
 नाशं श्रीस्तु वृषे युगेऽथ मरणं वह्नौ मृतिः कर्किणि ।
 स्याद्भर्तुमरणं हरौ धनसमावाप्तिः कुलोत्कृन्तनं
 कन्यायां निर्ऋतौ सुतोद्भवमथो भार्यामृतिः सप्तमे ॥
 वस्वाप्तिस्त्वथ वृश्चिके कलगिरां भूषा च चापेऽनिले
 स्त्रीनिष्क्रान्तिरथो मृतिश्च भगिनीसूनोः मृगास्ये ततः ।

कुम्भे त्वात्मजदारहारसुदृशामैक्यं तयोरन्तरे

दाहं शूलिनि गेहदाहमतुलं मीने फलं वाससाम् ॥

इति । अत्रिस्त्वाह—

पुत्रं क्लेशं बन्धुनाशं गोमृतिं चाग्निना भयम् ।

पुत्रीं श्रियं महारोगं धनं स्त्रीमरणं तथा ॥

निधिं च निधनं मृत्युं पुत्रनाशं च सम्पदम् ।

पुण्यं श्रियं महारोगं महाव्याधिं च सम्पदम् ॥

यात्रां नाशं पुत्रनाशं रोगं पौष्णमैश्वरे ।

प्राप्नोति मूषिके वह्नौ सदसत्फलमब्दतः ॥

त्रिगुणं प्राग्दशं न्यम्य पञ्चविंशतिधा कुते ।

प्रत्यगादिफलं ब्रूयात् निर्ऋत्यां दिशि वान्तकम् ॥

इति । एतदुक्तं भवति—अग्न्यादिहतं वस्त्रं त्रिगुणीकृतं प्राग्वत् विन्यस्य तत्र पञ्चविंशतिपदानि कल्पयित्वा नैर्ऋत्यादीशान्तं प्रत्यगादिफलं ब्रूयादिति । अन्ये त्वाहुः—वह्न्यादिहतं वस्त्रं नवपदं विभज्य तत्र कोणगतपदचतुष्टयं दैवं शुभम् । आद्यन्तभागयोस्तन्मध्यगतं पदद्वयं मानुषं च सत् । शिष्टं तन्मध्यगतं पदत्रयं राक्षसमशुभं इति । तथाच वराहमिहिरः—

वस्त्रस्य कोणेषु वसन्ति देवाः

नरास्तु पाशान्तदशान्तमध्ये ।

शेषास्त्रयस्तत्र निशाचरांशाः

तथैव शय्यासनपादुकासु ॥

लिप्ते मषीगोमयकर्दमाद्यैः

छिन्ने प्रदग्धे स्फुटिते च विद्यात् ।

पुष्टं नवेऽल्पाल्पतरं च भुक्ते

पापं शुभं वाऽधिकमुत्तरीये ॥

रुग्राक्षसांशेष्वथ भस्य मृत्युः

पुंजन्म तेजश्च मनुष्यभागे ।

भागे सुराणामथ भोगवृद्धिः

प्रान्तेषु सर्वत्र वदन्त्यानिष्टम् ॥

इति । वस्त्रस्य नवपदविभागक्रमो गर्गेणोक्तः—

वस्त्रमुत्तरलोमं-तु प्राग्दशं नवधा भजेत् ।

त्रिधा दशान्तपाशान्ते त्रिधा मध्यं पृथक् पृथक् ॥

इति । शुभाशुभस्थानगतानां छेदानामाकारवशात् सदसत्फलसूचक-
त्वमुक्तम् । वराहमिहिरेण—

कङ्कल्लवोल्लककपोतकाक-

क्रव्यादगोमायुस्तरोष्ट्रसार्पैः ।

छेदाकृतिर्देवतभागगापि

पुंसां भयं मृत्यु(भयं) समं करोति ॥

छत्रध्वजस्वस्तिक वर्धमान-

श्रीवृक्षकुम्भाम्बुजतोरणाद्यैः ।

छेदाकृतिः नैर्ऋतभागगापि

पुंसां विधत्ते न चिरेण लक्ष्मीम् ॥

इति । बहुच्छेदेषु शुभाशुभं ग्रहयोगेक्षणाभ्यामूह्यम् । तथाचाऽऽहुः—

शुभभागेषु दृष्टेषु छिन्नेषूहं शुभाशुभम् । ग्रहयोगादिभिः ।

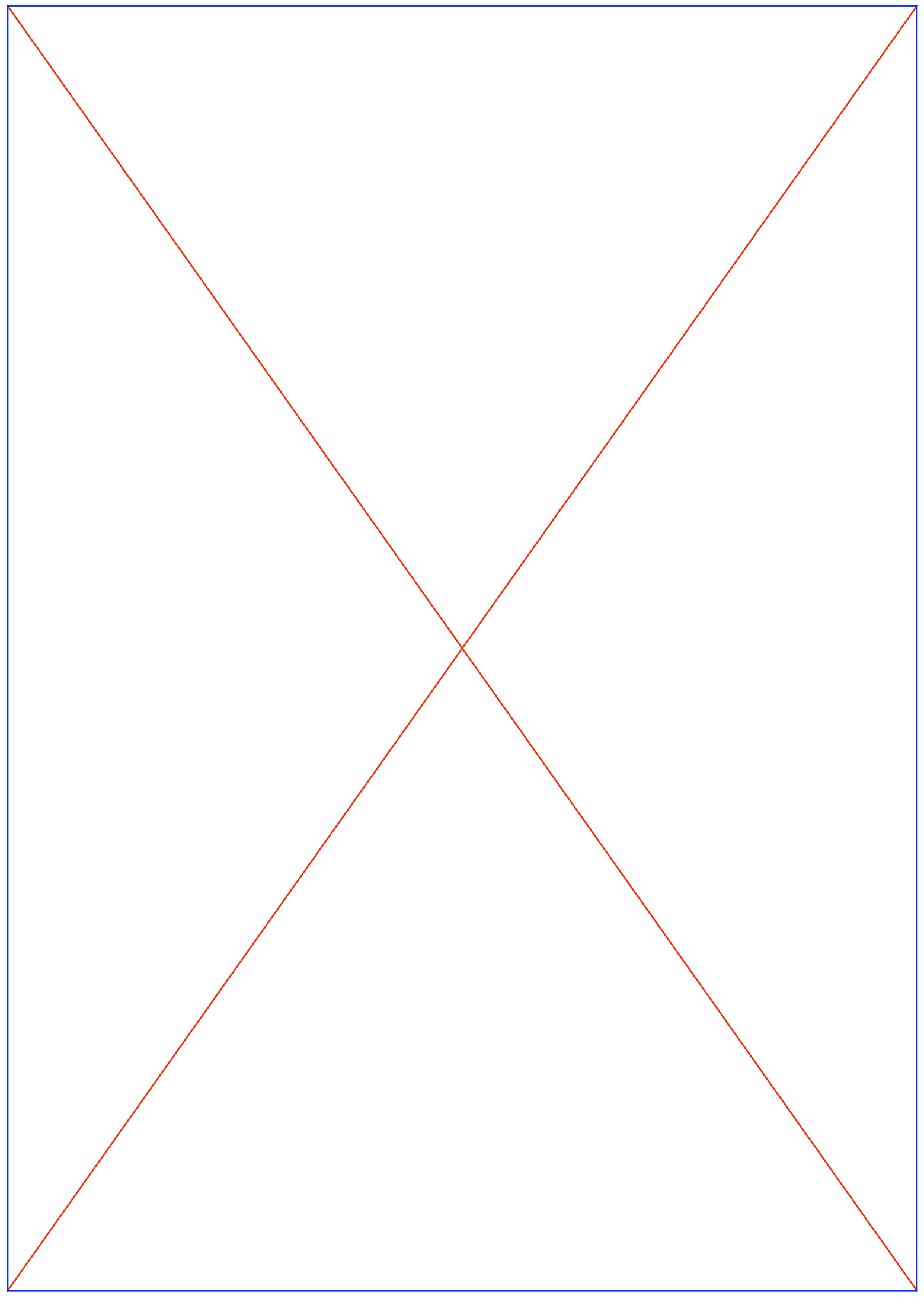
इति । तत्फलं च सामान्यवस्त्रे षण्मासादित्युक्तं वस्त्रविशेषकालो गुरु-
णोक्तः—

क्षौमादिषु महार्घेषु त्रिषडब्दादधः फलम् ।

कम्बलादिषु सर्वेषु त्रिभिर्वर्षैरथो फलम् ॥

इति । तच्छान्तिः गर्गेणोक्ता—

प्रशस्ते वाऽप्रशस्ते वा प्रशस्तं स्वस्तिवाचनम् ।



इति आद्यो योगः ; चन्द्रे केन्द्रस्थे अन्यो योगः । तथा च गुरुः—

लग्ने स्वांशगते जीवे भृग्विन्दुज्ञाश्च कण्टके ।

हेमाभरणभूषी चेदेको नैकगुणान् लभेत् ॥

इति । अयमपि तत्रान्तर्गत इत्याचार्येण न पृथगुक्तः । अत्र वा-
शब्देन अन्ये च योगाः ईदृशाः सन्तीति सूचितम् । तथाच गुरुः—

अत्युच्चस्थे रवौ लग्ने हेमकृत्याङ्गुलीयकम् ।

अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु धारयेन्न दरिद्रता ॥

आत्मांशके विलग्नस्थे नीचारातिगृहं विना ।

स्वर्णाभरणभूषी चेत् जीवे कौटिगुणं भवेत् ॥

कीटान्त्यांशे कुजे लग्ने शुभकृत् स्वर्णभूषणम् ।

हेम्ना सुभूषणं कुर्यात् धारणं च शुभावहम् ॥

भूषणधारणे नक्षत्रादीन्युक्तानि ज्योतिषार्णवे—

धनिष्ठारोहिणीपुष्यमैत्रार्कवरुणानिलाः ।

आदित्यमघपौष्णाश्रित्वाष्ट्रं चान्द्रं च शाङ्करम् ॥

उत्तरत्रितयं स्वर्णभूषणादिषु सौख्यकृत् ।

भूषणेषु ग्रहाः सर्वे रन्ध्रस्थाने विनाशदाः॥

स्वोच्चभागोदये चन्द्रे जीवे चास्तगृहे स्थिते ।

वित्तमाभरणं चैकमेकं कौटिगुणं भवेत् ॥

एकांशकगतौ स्यातां यदा सौम्यनिशाकरौ ।

पादयोर्हस्तयोश्चैव धारयेदङ्गुलीयकम् ॥

एकांशकगतौ स्यातां आश्लेषाद्यंशगे गुरौ ।

धारयेत् हारकेयूरकुण्डलान्युदये तयोः ॥

अत्युच्चसंस्थिते चन्द्रे गुरौ वात्युच्चसंस्थिते ।

तयोरभ्युदये कुर्यात् शिरोभूषणमुत्तमम् ॥

मूलत्रिकोणगे जीवे तथा वै २ दानवर्जिते ।
वैदूर्यमणिरत्नानि भूषणान्यपि धारयेत् ॥
उच्चमित्रस्ववर्गेषु शुभकेन्द्रत्रिकोणगे ।
वस्त्रवाहनशस्त्रादि भूषणादिविवृद्धये ॥

विधिरत्ने—

चन्द्रे कुळीरे यदि लग्नसंस्थे
सदाष्टियुक्ते सति तत्र कुर्यात् ।
सद्वस्त्रहेमाभरणानुलेपान्
क्षौमं च शय्यासनकादि कार्यम् ॥

इति । सिंहासनादिस्वीकारेऽपि वस्त्रवत् काल इत्याह । यथोक्तम्—
शय्यासिंहासनादीनां प्रात्रभूषणसंग्रहे ।
पादुकाकम्बळादीनां आसनायुधवर्मणाम् ॥
छत्रचामरपिण्डानां वस्त्रधारणकालवत् ।

इति । दन्तधावनकालमाह —

त्यजेत्तिथीन्दङ्कवसुक्षमातिथीरसौम्यवारानपि
दन्तधावने । विधीयतेऽन्यैर्नियमात्तदन्वहं परैः परं
शुक्रशशाङ्कवारयोः ॥ ४ ॥

दन्तधावनकर्माणि पञ्चदशीचतुर्दशीद्वादश्यष्टमीप्रतिपत्तिथीः क्रूर-
ताराश्च त्यजेत् । अपिशब्दात् जन्मर्क्षसङ्क्रमादिकालांश्च त्यजेत् ।
तथा च स्मृतिः—

ऋते जन्मर्क्षदिवसे प्रतिपन्नवमीषु च ।
श्राद्धकर्ता चान्यदिने सङ्क्रान्तिग्रहणेषु च ॥
आराकवारैः सप्तम्यां चतुर्दश्यष्टमीषु च ।

द्वादश्यां पौर्णमास्यां च षष्ठ्यां दर्शे विशेषतः ।

तैलाभ्यङ्गं रतिं मांसं दन्तकाष्ठं च वर्जयेत् ॥

पापदिनानि प्राक्तनैरनुक्तानीति त्याज्यान्युक्तानि । तदन्तधावनमन्यैर्मन्वादिभिः मुनिभिः—

“संशोध्य दन्तानाचम्य विधिवत् स्नानमाचरेत्”

इति नित्यतया विधानात् कर्तव्यनियमादनुदिनं विधीयते । तत् दुष्टदिनेऽपि न परिहीयते । तथा च गुरुः—

नित्यत्वात् दन्तसंशुद्धेः न कालनियमो नृणाम् ।

परिकल्पो दिवैव स्यात् पूर्वाह्णे चोदितावुभौ ॥

इति । अन्ये प्रतिवारं दन्तधावनफलमाहुः—

अकीर्तिं राजसन्मानं कलहं शान्तिनिर्वृती ।

सौभाग्यं शुक् च दन्तानां धावने भास्करादिषु ॥

इति । कृतदन्तधावनेन तैलाभ्यङ्गस्येष्टत्वात् तं कालमाह—

**सङ्क्रान्त्यादिर्निखिलः पुण्यकालः शुक्राचार्य-
क्षितिपुत्रार्कवाराः । पर्वोपेता मनुवस्वङ्गसङ्ख्या-
स्तैलाभ्यङ्गे तिथयश्चानभीष्टाः ॥ ५ ॥**

सूर्यस्य प्रतिराशि संक्रमणं संक्रान्तिः । आदिशब्देन व्यतीपात-
वैधृतदिनक्षयादि गृह्यते । पुण्य—दानदेवतोपासनादि ; तद्योग्यः कालः
पुण्यकालः । स च स्मृत्यादिप्रसिद्धः । सर्वोऽपि तैलाभ्यङ्गे नेष्टः । शुक्र-
गुरुकुजादित्यवाराः पर्वभ्यां सहिता मन्वादिसङ्ख्याश्चतुर्दश्यष्टमीषष्ठ्य-
स्तिथयश्च नेष्टाः । अत्र श्रीपतिः—

नार्कारवारे रविसंक्रमे च

न वैधृतौ न व्यतीपातयोगे ।

न पक्षमध्ये न च विष्टिषष्ठ्यो-

रभ्यङ्ग इष्टो न च पर्वसूक्तः ॥

इति । तैलाभ्यङ्गे प्रतिवारफलं च तेनैवोक्तम् ---

रविस्तापं कान्तिं वितरति शशी भूमितनयो

मृतिं चान्द्रिर्लक्ष्मीं सुरपतिगुरुर्वित्तहरणम् ।

विपत्तिं दैत्यानां गुरुरखिलभोगनुभवनं

नृणां तैलाभ्यङ्गे सपदि कुरुते सूर्यतनयः ॥

इति । तिथयश्चानभीष्टा इत्यत्र चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः । तेन मृताह-
जन्मर्क्षदिवसाद्या निषिद्धा अत्रापि वर्ज्या इत्युक्तं । तथाच स्मृत्य-
र्थसारे—

अर्कवारव्यतीपातजन्मदिनसंक्रान्तिनन्दासु विशेषतः अषष्ठीप्रति-
पदो भूताष्टमीनत्रपर्वसु विशेषतो नवम्यां दर्शे च दन्तकाष्ठं स्त्रियं मांसं
च वर्जयेत् इति । द्वादशीसप्तम्यौ वर्ज्ये इति केचित् । तथाच गर्गः—

द्वादश्यां सप्तमीषष्ठयोस्तैलस्पर्शं विवर्जयेत् ।

इति । पञ्चम्यादयो नेष्टा इत्यन्ये । तथाच स्मृतिः—

पञ्चमीं दशमीं चैव पौर्णमासीं त्रयोदशीम् ।

एकादशीं तृतीयां च यस्तैलमुपसेवते ॥

अभ्यङ्गात् स्पर्शनाद्वापि भक्षणाच्च तथैव च ।

उच्छिन्ना तस्य वृद्धिः स्यात् धनापत्यबलायुषाम् ॥

इति । केचित् चित्रादिनक्षत्राण्यपि वर्ज्यानि्याहुः—

चित्रासु हस्ते श्रवणे च तैलम्

क्षौरं विशाखासु भिषक्षु वर्ज्यम् ॥

इति । दुष्टदिनेष्वपि द्रव्यान्तरयुतस्य तैलस्य न दोषः । तथा च
स्मृतिः—

सार्षपं गन्धतैलं च यत्तैलं पुष्पवासितम् ।

द्रव्यान्तरयुतं तैलं न दुष्यति कदाचन ॥

वृत्तं च सार्षपं तैलं यत्तैलं पुष्पवासितम् ।

न दोषः पक्वतैलेषु स्नानाभ्यङ्गेषु नित्यशः ॥

इति । नित्यस्नानादौ च न दोषः । यथाऽऽह गर्गः—

पुत्रजन्मानि सङ्क्रान्तौ श्राद्धे जन्मदिने तथा ।

नित्यस्नाने च कर्तव्ये तिथिदोषो न विद्यते ॥

यादृच्छिकं तु यत् स्नानं भोगार्थं क्रियते नरैः ।

तन्निषिद्धं दशम्यादौ नित्यनैमित्तिकं न तु ॥

इति । यद्यपि द्रव्यान्तरयुतं तैलं सर्वासु तिथिषु न दुष्यतीत्युक्तम् ;

तथाऽप्यामलकयुतं तिथिष्वपि वर्ज्यम् । तथा च स्मृतिः—

षष्ठी च सप्तमी चैव नवमी च त्रयोदशी ।

संक्रान्तौ रविवारे च स्नानमामलकैस्त्यजेत् ॥

श्रीपतिः —

स्नातुर्जनस्य दशमी तनयं त्रयोद-

श्यर्थं निहन्त्युभयमेतदपि द्वितीया ।

सप्तम्यानिन्दुनवमीषु च सम्पदिच्छुः

स्नायात् कदाचिदपि नामलकैर्मनुष्यः ॥

इति । द्रव्यसंग्रहकालमाह—

जिवोदये नभसि भास्वति कामबन्ध्वोः चन्द्रे
नवद्राविणसङ्ग्रहणं विदध्यात् । स्वांशे गुरौ वपुषि
वाऽथ खलाभलग्नवित्तेषु चार्कभृगुजेन्दुसुरार्चितेषु ॥

लग्ने गुरौ दशमे सूर्ये सप्तमे चतुर्थे वा चन्द्रे पुष्ट्यर्थमिष्टस्य
द्रव्यस्य स्वर्णादेः प्रथमसंग्रहणं कुर्यात् । तत्र राशौ स्वांशगे गुरौ लग्ने
स्थितेऽन्यो योगः । अर्के लग्ने भृगौ लग्ने चन्द्रे द्वितीये गुरौ स्थिते

अन्यो योगः। दशमेऽर्के लाभे भृगौ लग्ने चन्द्रे द्वितीये गुरौ स्थिते
अन्यः। एते त्रयो योगाः द्रव्यसंग्रहकार्ये सिद्धिदाः। अत्र गुरुः—

. . . जीवे लग्नस्थे स्मरे वा तोयगे विधौ ।

खस्थेऽर्केऽर्थान् सुगृह्णीयात् प्रारब्धं चात्र सिद्ध्यति ॥

श्रीपतिः—

कुम्भराशिमपहाय साधुषु

द्रव्यकर्म भवमूर्तिवर्तिषु ।

अव्ययेष्वशुभदायिषूद्गमे

भार्गवे विप(?)णिनीन्दुसंयुते ॥

शुद्धेषु धर्मात्मजनैर्धनेषु

चरे च वर्गे द्रविणप्रयोगः ।

बुधे विलम्बे दशमे च भौमे

चौर्यस्य कालः कथितो मुनीन्द्रैः॥

इति । हेमसङ्ग्रहे योगमाह—

इष्टगृहे सुरपूज्ये स्वांशगते तनुसंस्थे । सङ्ग्रहणं नवहेम्नः कोटिगुणं तत्कुरुते ॥ ८ ॥

इष्टगृहे— नीचारिवर्जितराशौ स्वनवांशस्थे गुरौ लग्नगते सति
लाभार्थं नवसुवर्णस्य संग्रहणं । तत् सुवर्णं कोटिगुणितलाभयुक्तं
करोति । तथा च गुरुः—

ब्रह्मांशगे विलम्बस्थे जीवे नीचारिभात् विना ।

भूषणं हेमसंगृह्य त्वेकं कोटिगुणं भवेत् ॥

इति । अन्ये च स्वर्णसंग्रहे योगाः अर्णवेऽभिहिताः—

वर्गोत्तमगते जीवे बुधशुक्रौ च कण्टके ।

स्वर्णसंग्रहणं कुर्यात् एकं शतगुणं भवेत् ॥

इति ।

उच्चस्थाः स्वोदये जीवे भवे चैव दिवाकरे ।
 भूषणं हेम सगृह्य त्वेकं कोटिगुणं भवेत् ॥
 उच्छस्थे स्वोदये वक्त्रे स्वोच्छस्थेऽस्ते स्मरार्चिते (?) ।
 स्वर्णसंग्रहणं कुर्यादेकं कोटिगुणं भवेत् ॥
 उच्चभागोदये सूर्ये मन्दे वाऽस्तं समाश्रिते ।
 स्वर्णसंग्रहणं कुर्यात् एकं कोटिगुणं भवेत् ॥
 इति । रजतादिसंग्रहयोगमाह —

**एकांशकोपगतयोरुदयेः चन्द्रशुक्रयोः । रजता-
 म्बरधान्यादि सङ्गृहीयात् समुदये ॥ ९ ॥**

कचिदेकांशस्थयोः चन्द्रशुक्रयोः उदये लाभार्थं रूप्यवस्त्रधा-
 न्यानि ; आदिशब्दात् पूगफलादीनि च स्वीकुर्यात् । तथा च गुरुः—
 एकांशकगतौ चन्द्रशुक्रौ लग्नमुपागतौ ।
 धान्यवस्त्रे ग्रहीतव्ये रजतं वृद्धितां ययुः ॥
 इति । अन्ये च रूप्यादिसङ्ग्रहयोगास्तेनैवोक्ताः—
 यदैकांशसमायुक्तौ शुक्रार्का स्वात्रिकोणगौ ।
 रजते सङ्गृहीते तु वर्धते तत् दिनेदिने ॥
 यदैकांशे विलग्नस्थौ शुक्रमन्दौ कचित्तदा ।
 ब्रिहीणां रजतानां च सङ्ग्रहो वृद्धिदो भवेत् ॥
 इति । अन्यत्र—

उच्चभागोदये शुक्रे जीवे चास्ते भवे रवौ ।
 रूप्यसङ्ग्रहणं कुर्यात् एकं कोटिगुणं भवेत् ॥
 इति ।
 मन्दवारे युते चन्द्रे प्राजापत्यासितोदये ।

कुम्भराशौ गुरौ दृष्टे रूप्यमेकांशकं भवते ॥

एकांशगयोरुदये रवियमयोः कालमायसं ग्राह्यम् ।

तद्वत् भृगुसुतशिखिनोः वाहनशस्त्रादि सङ्ग्रह शुभद ॥

(कचिदेकांशकगयो) कचिद्राशवेकांशगयो रविमन्दयोरुदये कालायसं गृह्णीयात् । अत्र गुरुः—

यदैवैकांशकौ युक्तौ रविमन्दौ कचिच्चिदा ।

कृष्णलोहं तदा ग्राह्यं द्वयोरंशोदये यदि ॥

इति । तद्वत् कंचिद्राशवेकांशकस्थयोः शुक्रकेत्वोरुदये वाहनोपकरणानि शस्त्राणि आदिशब्दात् छत्राणि सङ्ग्रह्णीयात् । तथा च गुरुः—

यदैकांशे विलग्नस्थौ शुक्रकेतू कचित् तदा ।

छत्रवाहनशस्त्राणां सङ्ग्रहं करणं शुभम् ॥

इति । रत्नसङ्ग्रहयोगोऽपि—

स्वोच्चभागोदये मन्दे जीविशुक्रौ च कामगौ ।

रत्नसङ्ग्रहणं कार्यमेकं कोटिगुणं भवेत् ॥

जीऽवेस्ते लग्नगे शुके शशाङ्के भवगे तथा ।

धनं च जीवं सङ्ग्रह्य त्वेकमेवायुतं भवेत् ॥

लग्नेजीवेऽस्तगे मन्दे जीवं धान्यं च तद्धनम् ।

सङ्ग्रह्य रत्नं कोशं च त्वेकं कोटिगुणं भवेत् ॥

एवमुक्तयोगेषु सर्वधातुद्रव्याणां सङ्ग्रहः कार्यः । यथोक्तमर्णवे—

हिरण्यं रजतं ताम्रमारकूटमयस्तथा ।

मुक्ताप्रवाळवैडूर्यवज्रान् (?) वैरादयस्तथा ॥

कोशसंग्रह(ऋ)मृदौ सङ्ग्रह्णीयात् समृद्धये ।

इति । कोशसङ्ग्रहर्क्षाण्यपि तत्रैवोक्तानि —

रौद्रश्रवणपुण्येन्दुमैत्रवारुणवासवाः ।

त्रीण्युत्तराणि हस्तश्च कोशसङ्ग्रहे शुभाः
दर्शश्च पर्वरिक्ताश्च वर्ज्याः शेषाः शुभावहाः ।
स्थिरर्क्षाणि प्रशस्तानि मध्यमान्युभयानि ॥

इति ।

हिरण्यं रजतं ताम्रमारकूटमयस्तथा ।
अन्येषां संचयानां च व्ययस्सर्वममृद्धिकृत् ॥

इति । वृद्धयर्थं सङ्गृहीतानां व्रीह्यादीनां बन्धनकालमाह पद्यार्धेन—

**मन्दांशस्थेऽप्युशनसि लग्ने व्रीहेर्बन्धो जनयति
वृद्धिम् ॥ १० ॥**

अपिशब्दोऽनुक्तसमुच्चयार्थः । तेन नीचारिभेभ्योऽन्यत्र गृह्यते ।
शुके स्वनीचारिभ्योऽन्यत्र राशौ मन्दांशस्थे लग्नगते सति व्रीहेर्व्रीह्या-
दीनां बन्धस्तद्व्रीहिवृद्धिं जनयति । व्रीहेरिति जातावेकवचनं । अत्र
गुरुः—

शुके मन्दांशगे लग्ने नीचारातिगृहैर्विना ।
व्रीहीणां बन्धनं कुर्यात् व्रीहिवृद्धिं यदिच्छति ॥

इति । समृद्धधनस्य पालकमन्तरेण रक्षा दुष्करेति तावत् स्वामिदर्शन-
कालमाह—

**आर्द्रासर्पसुरेन्द्रकृत्तिकापूर्वायाम्यविवर्जिते शुभे ।
सत्तिथिवारयोःपुमान् कुर्यात् स्वामिमुखावलोक-
नम् ॥ ११ ॥**

आर्द्राद्यष्टताराविरहिते शुभे अत्याज्यनक्षत्रगणे स्वस्वामिनोरनु-
कूलशुभतिथौ शुभवारे स्वामिनो मुखं पश्येत् । अत्र त्रिविधं स्वामि-
दर्शनं । प्रथमदर्शनं निर्गत्यानुदर्शनं पुनः पुनदर्शनं चेति । तत्र

प्रथमदर्शने स्वस्वामिनोर्द्वयोरानुकूल्यं इष्टम् । अन्यत्र भृत्यस्यैव —
तथा च गुरुः—

स्वस्वामिनोऽनुकूलस्य दासस्यायुश्चिन्तयौ सदा ।
वर्धते वंशजस्यात्र तस्य दर्शनकालतः ॥
शुभाशुभौ भवेतां तत् कालं वक्ष्ये शुभार्थिनाम् ।
प्रथमं तत्प्रवेशे च निर्गत्यानुप्रवेशने ॥
पुनःपुनर्दिदृक्षायां स्वामिनो भृतकस्य च ।
दर्शने शुभकाले तु द्वयोः शोभनमेधते ॥
भृत्यस्य शुभदे काले पुनः कर्मणि शोभनम् ।
शुभकर्ममुहूर्तं च शुभं चेदन्यथाऽन्यथा ॥
आर्द्राऽऽश्लेषा तथा ज्येष्ठा कृत्तिका भरणी तथा ।
त्रिपूर्वाश्च विना शेषाः दर्शने स्वामिनः शुभाः ॥
भृत्यानुकूलनक्षत्रे शुभांशे शशिनि स्थिते ।
विष्टिरिक्ताविवर्ज्येषु तिथिषु प्रेक्षणं शुभम् ॥
दर्शाष्टरिक्ता वर्ज्याः स्युः शेषाश्च तिथयः शुभाः ।

इति । अन्ये—

शुभवारे शुभे योगे स्थिरराशौ शुभेक्षिते ।
शुभग्रहाणां लग्ने च शुभे केन्द्रत्रिकोणगे ॥
शुभग्रहद्वया युक्ते स्वामिन्युपचयस्थिते ।
आयारिभ्रातृगे पापे शुभे केन्द्रत्रिकोणगे ।
दर्शनं शुभदं प्रोक्तं स्वामिनो भृतकस्य च ॥

इति । अथ—

‘ पापवारा विवर्ज्यास्त्युद्गुणवारास्तु शोभनाः ’

इत्यत्र विशेषमाह—

विप्रस्य दर्शनेऽर्कस्य वारो विट्छूद्रयोश्शनेः ।

राज्ञां भौमस्य शुभदः सोऽपराह्णे स्मृतः परैः ॥

द्रष्टव्यः—स्वामी—उपजीव्यः प्रभुरन्यो वा । स विप्रश्चेत् तस्य दर्शने
रविवारः शुभः । तथा वैश्यशूद्रयोर्दर्शने शनेर्वारः शस्तः । राज्ञां दर्श-
ने कुजस्य वारश्शस्तः । स चापराह्णे शुभ इत्यन्ये । गुरुः—

सूर्यवारः शुभः प्रोक्तः ब्राह्मणानां तु दर्शने ।

मन्दवारः शुभः प्रोक्ता विट्छूद्राणां तु दर्शने ॥

भौमवारो नृपाणां तु दर्शने शोभनः परम् ।

केचिन्मध्याह्नतः पश्चात् जगुश्शोभनतां नृपात् ॥

इति । अनेन स्वामिदर्शनमपराह्णेऽपि कार्यमित्युक्तं भवति—

स्त्रीणां तु दर्शनं श्रेष्ठं (प्रोक्तं) चन्द्रशुक्रदिनादिष्वपि ।

इति । स्वामिदर्शनस्य श्रेष्ठराशिमाह—

स्ववश्यराशेरुदये तमेव दिक्संस्थमारुह्य नृप-
स्य वक्त्रम् । दृष्ट्वा विधत्ते वशवर्तिनं तं भृत्यस्त-
देतत् परमं रहस्यम् ॥ १२ ॥

भृत्यः स्ववश्यराशौ लग्नगते प्राच्यादिगताः क्रियाया द्वौ द्वौ
कोणगता द्विमूर्तय इत्युक्ते राशिचक्रे प्रागादिदिक्षु स्थितं स्ववश्यराशि-
मारुह्य स्वामिनो मुखं पश्यति चेत् स्वामी भृत्यस्य वशवर्ती भवति ।
तदेतदतिरहस्यं अनाप्तेष्वप्रकाश्यम् । अत्र गुरुः—

वश्यराशौ प्रशस्तं हि दर्शनं स्वामिनो नृणाम् ।

तस्मादुदयकाले च वश्यर्क्षे वश्यतामियात् ॥

इति । वश्यराशिर्विवाहाध्याय उक्तः । स्वामिदर्शने द्वन्द्वराशयो वर्गो-

तमादयश्च श्रेष्ठाः । तथा च गुरुः—

वर्गोत्तमादयो जीवबुधद्वक्षेत्रे विशेषतः ।

स्वस्वामिदर्शनं श्रेष्ठं सत्कोऽसौ मरणान्तिकम् ॥

इति । अथ स्वामिदर्शनयोगानाह—

स्वोच्चस्वर्क्षगते चतुष्टयगते जीवे शशाङ्केऽपि वा
निशुक्रे मदने त्रिकोणगृहगौ शीतांशुवागीश्वरौ ।
चन्द्रे मैत्रतृतीयपादनिरते मैत्रे मुहूर्ते तनौ होरा-
रिप्फभवस्थिताः सितबुधब्रधाः क्रमेण त्रयः ॥ १३

स्वोच्चस्वराशिगते गुरौ केन्द्रे सत्येको योगः । तथाविधे चन्द्रे
लग्ने द्वितीयः, चन्द्रजीवौ त्रिकोणगतौ सप्तमे शुक्रो न चेत् तृतीयः,
अनूराधातृतीयपादगते चन्द्रे लग्नेसति मैत्राख्ये दिवा तृतीये मुहूर्ते
चतुर्थः । शुक्रे लग्ने द्वादशे बुधे एकादशे सूर्ये सति पञ्चमः । अस्यो-
त्तरश्लोकस्थेन स्वामिनं यः पश्यत्युपगम्य तस्य नृपतिः शश्वद्वशे
वर्तते इत्यनेन सम्बन्धः । एषु योगेषु स्वामिनं यः पश्यति स्तामी
तस्य भृत्यस्य वशे सदा वर्तत इत्यर्थः । अत्र गुरुः—

योगे दृश्यानि वा भृत्यै स्तेऽति खिद्यन्ति दासवत् ।

नैव यान्ति च रूक्षत्वं तस्माद्योगान् प्रचक्ष्महे ॥

गुरौ केन्द्रे स्वतुङ्गे वा स्वर्क्षे वा शीतगौ तथा ।

स्वामिदर्शनयोगोऽयं भृत्यस्वाम्यनुकूलदः ॥

शुक्रवर्जितजमित्रे गुरुचन्द्रौ त्रिकोणगौ ।

पश्यति स्वामिनं भृत्यो मरणान्तिकमाव्रजेत् ॥

मत्रै(र्क्ष)स्य च तृतीयांशे सचन्द्रे चोदयं गते ।

मैत्रे मुहूर्ते सम्प्राप्ते स्वामिदर्शनमुत्तमम् ॥

भवेऽर्के व्ययगे सोम्ये लग्नगे भृगुनन्दने ।

राजदर्शनमुक्तं हि ब्राह्मणा भृत्यवृत्तये ॥

इति । योगान्तराण्याह—

लग्ने साधु निरीक्षिते शुभदिने चन्द्रे शुभांश-
स्थिते चन्द्रे केन्द्रगते शुभे तनुगते मैत्रे मुहूर्ते तथा ।
जीवे चित्तगते भवे दिनकरे रिप्फे भृगौ स्वामिनं
यः पश्येदुपगम्य तस्य च वशे सन्तिष्ठते दासवत् ॥

शुभदिने बुधांशगे चन्द्रे शुभेक्षिते लग्ने सत्येकः । गुरुबुधशुक्र-
ष्वेकस्मिन् लग्नगे चन्द्रे केन्द्रे सति मैत्रे मुहूर्ते अन्यः । गुरौ द्वितीये
द्वादशे शुके रवावेकादशस्थिते सत्यपरः । एषु योगेषु यः स्वामिनं
पश्येत् सः स्वामी तस्य भृत्यस्य वशे सदा दासवत् तिष्ठति । गुरुः—

बुधांशकस्थिते चन्द्रे शुभर्क्षे शुभवासेरे ।

लग्ने शुभे शुभैर्दृष्टे शुभाय स्वामिदर्शनम् ॥

जीवशुक्रबुधेष्वेको लग्नगो मैत्रसाह्वये ।

मुहूर्ते केन्द्रगे चन्द्रे स्वामिदर्शनमुत्तमम् ॥

धनायव्ययगा जीवभानुशुक्रा यथाक्रमम् ।

स्वामिदर्शनयोगोऽयं भृत्यमात्रसमं नयेत् ॥

इति । अत्रैकदेशग्रहणसमुचिताः केचिदन्ये योगास्ते गुरुणोक्ताः—

स्वराशौ वा स्वतुङ्गे वा स्वत्रिकोणे ऽथवा स्थितः ।

शुभः स्वामित्रदृष्टश्चेत् मुदितः स्वामिनं व्रजेत् ॥

अधिमिमांशके राशौ द्रेक्काणे वा स्थितः शुभः ।

लग्नगो यदि मैत्राख्ये मुहूर्ते स्वामिनं व्रजेत् ॥

शुभांशकगते चन्द्रे शुभर्क्षे शुभवीक्षिते ।

भवारिभ्रातृगे पापे स्वामिदर्शनमुत्तमम् ॥
दशायोगेऽथवा पापे पापे लग्नेऽर्थगेऽपि वा ।
चन्द्रे वा रन्ध्रगे योगे स्वामिदर्शनमुत्तमम् ॥

अत्रैव वश्ययोगाः—

एकांशकस्थयोर्जीविशिखिनोः शिखिसौम्ययोः ।
उदये ज्ञांशकस्थे वा केतौ दृष्टमुखः सुहृत् ॥

क्वचिद्राशावेकांशकस्थितयोः गुरुशिखिनोरुदये तथाविधयोर्बुधशिखिनो-
योगे वोदये बुधांशकगते केतौ वोदये दृष्टमुखः स्वामी रिपुर्वा सुहृत्
भवति । तथा च गुरुः—

यदैकांशे विलग्नस्थौ जीवकेतू क्वचित्तदा ।
स्वामिनं रिपुमन्यं वा दृष्ट्वा मित्रं भविष्यति ॥
यदैकांशसमायुक्तौ बुधकेतू विलग्नौ ।
रिपुं स्वामिमन्यं वा दृष्ट्वा मित्रं भविष्यति ॥
केतौ सौम्यांशगे लग्ने नीचारातिगृहान् विना ।
गृहं यस्य समागच्छेन् वश्यत्वं याति तत्पतिः ॥

सङ्ग्रामविजये—

मैत्रान्त्यांशकयोगे मैत्रमुहूर्ते च चन्द्रवेळायाम् ।
ऋणनाशोऽल्पप्रदानाद्रिपुरापि दृष्टः तदा भवेन्मित्रम् ॥

इति । श्रीपतिः—

शुभे विलग्नो दशमायगे रवौ . . . ।

विप्रवश्ययोगानाह—

अशत्रुनीचास्पदगे कुजांशे लग्नेऽर्कपुत्रे भृगुजे
रवौ वा । विप्रस्य गत्वा गृहमस्य वक्तव्यं पश्यन्
जनस्तं स्ववशं करोति ॥ १५ ॥

शत्रुनीचराशिभ्योऽन्यराशिसम्बन्धिनि कुजांशे स्थिते मन्दादिष्वे-
कैकस्मिन् लग्ने सति त्रयो योमाः । वाशब्दात् अन्यास्मिन् बुधे चन्द्रे
च द्वौ योगौ एषु योगेषु ब्राह्मणस्य गृहमागत्य तस्य मुखं पश्यति तं
स्पृशति तेन संभाषणं वा करोति यस्तस्य स ब्राह्मणो वश्यो भवति ।

अत्र गुरुः—

मन्दे भौमांशगे लग्ने नीचारातिगृहैर्विना ।
ब्राह्मणस्य गृहं गच्छेत् वश्यः स्यात् भार्यया द्विजः ॥
शुक्रो भौमांशगे लग्ने नीचारातिगृहैर्विना ।
ब्राह्मणस्याननं दृष्ट्वा दासवत् वश्यतां नयेत् ॥
जीवे भौमांशगे लग्ने नीचारातिविवर्जिते ।
भाषणात् ब्राह्मणेनाऽत्र वश्यः स्यात् ब्राह्मणः स्वयम् ॥
सौम्ये भौमांशगे लग्ने नीचारातिगृहैर्विना ।
स्पृष्टाङ्गो ब्राह्मणः स्पृष्टुर्वश्यस्स्यात् मरणान्तिकम् ॥
सोमे भौमांशगे लग्ने नीचारातिगृहैर्विना ।
ब्राह्मणस्याननं दृष्ट्वा वश्यस्स्यान्मरणान्तिकम् ॥

अन्येऽपि वश्ययोगास्तेनोक्ताः—

यदैकांशे विलग्नस्थौ कुजचन्द्रसुतौ तदा ।
दृष्टे विप्रमुखस्यायं वश्यस्स्यात्स्मरणान्तिकम् ॥
यदैकांशे विलग्नस्थौ कुजदेवगुरू तदा ।
ब्राह्मणक्षत्रियौ दृष्ट्वा वश्यावामरणान्तिकम् ॥
यदैकांशोदि(ते)तौ (भौमे) भौमभृगुपु(त्रे) त्रौ तदा कश्चित् ।
ब्राह्मणक्षत्रियैश्च दृष्ट्वा वश्यत्वमाययुः ॥

नीचारातिगृहान्यभे दिनकरे लग्ने कुजांश-
स्थिते ज्ञांशे जीवरवीन्दुभौमशशिजेष्वेको विल-

ग्रस्थितः ॥ एकांशोपगतौ यदा कुजबुधौ लग्ने
तदा स्वामिनं यः पश्यत्युपगम्य तस्य नृपतिः
शश्वत् वशे वर्तते ॥ १६ ॥

नीचशत्रुगृहेभ्योऽन्यत्र राशौ कुजांशकस्थे रवौ लग्ने सत्येको
योगाः । जीवादिष्वेकस्मिन् नीचारिभादन्यराशौ बुधांशस्थे लग्नगते सति
पञ्च योगाः । कुजबुधौ द्वौ कचिद्राशावेकांशस्थौ लग्नगौ यदा स्तस्तदा
चैषु सप्तसु योगेषु यः स्वामिनमुपेत्य पश्यति सः स्वामी राजा अन्यो
वा भृत्यस्य वशे शश्वत् वर्तते इति । अत्र गुरुः—

भानौ भौमांशगे लग्ने नीचारातिगृहैर्विना ।

नृपतेरानने दृष्टे वश्यः स्यान्मरणान्तिकम् ॥

जीवे बुधांशगे लग्ने नीचारातिगृहैर्विना ।

स्पर्शनेन नृपो वश्यस्त्वया वज्रिन् समोऽपि यः ॥

सूर्ये बुधांशगे लग्ने नीचारातिगृहैर्विना ।

द्रष्टव्यो नृपतिर्वश्यो भवेत् प्राणैर्धनैरपि ॥

चन्द्रे बुधांशगे लग्ने नीचारातिगृहैर्विना ।

राजा सम्भाषणेनैव वश्यः स्त्रीभिर्धनैरपि ॥

भौमे बुधांशगे लग्ने नीचारातिगृहैर्विना ।

नृपस्सम्भाषणादेव वश्यः स्यान्मरणान्तिकम् ॥

बुधे स्वांशकगे लग्ने नीचारातिगृहैर्विना ।

स्पृष्टो भूपोऽस्य वश्यस्स्यात् पुरन्दरसमोऽपि यः ॥

यदैकांशे विलग्नस्थौ कुजचन्द्रसुतौ तदा ।

दृष्टे नृपमुखेऽस्यायं वश्यस्स्यान्मरणान्तिकम् ॥

एतेऽपीत्यत्र अपिशब्दस्याऽनुक्तसमुच्चयार्थत्वात् अन्येऽपि द्रष्टव्याः ।

अत्र गुरुः—

शुक्रे बुधांशगे लग्ने नीचारातिगृहैर्विना ।
 दृष्टाननोऽपि वश्यस्यानृपतिर्निष्ठुरोऽपि सन् ॥
 मन्दे बुधांशगे लग्ने नीचारातिगृहैर्विना ।
 नृपस्य सन्निधिं गच्छेत्तस्य वश्यत्वमिच्छतः ॥
 चन्द्रे जीवांशके लग्ने नीचारातिगृहैर्विना ।
 कृतसंभाषणो राजा वश्यो भृत्यसमो भवेत् ॥
 राहौ भामांशगे लग्ने मुखपुच्छविवर्जिते ।
 राज्ञां तु गृहमागच्छेत् वश्याः प्राणैर्धनैरपि ॥
 राहौ बुधांशगे लग्ने मुखपुच्छविवर्जिते ।
 राजानं याचयेत् कर्म वश्यतां याति भूपतिः ॥
 यदैकांशे विलम्बस्थौ गुरुराहू कचित्तदा :
 नृपमन्दिरमासाद्य दृष्ट्वा तं श्रियमाप्नुयात् ॥
 यदैकांशोदितौ जीवमन्दौ दृष्टौ कचित्तदा ।
 राजानं तद्गृहं गत्वा दृष्ट्वा लाभो भविष्यति ॥

इति । वैश्य वैश्ययोगानाह—

नीचारिभाग्यभवने सुरपूजितांशे लग्ने बुधे
 भृगुसुते भुजगे स्थिते वा । वैश्यस्य गेहमुपगम्य
 मुखं तदीयं पश्यन् वशं नयति तं पुरुषं स्पृशन्
 वा ॥ १७ ॥

नीचशत्रुभाग्यराशिसंबन्धिनि गुर्वंशे सौम्यादिष्वेकास्मिन् लग्ने
 स्थिते सति यो वैश्यस्य गृहं गत्वा तन्मुखं पश्यति तं स्पृशति
 वाशब्दात् तेन सह संभाषते वा ; तस्य स दृष्टः स्पृष्टः सम्भाषितो वा

वैश्यः वश्यो भवति । गुरुः—

सौम्ये जीवांशगे लभे नीचारातिगृहैर्विना ।
वैश्यानां वदनं दृष्ट्वा वश्या जन्मान्तरेऽपि ते ॥
शुके जीवांशगे लभे नीचाराति गृहैर्विना ।
वैश्य संभाषितो वश्यो दासवत् प्रेष्यतामियात् ॥
राहौ जीवांशगे लभे मुखपुच्छविवर्जिते ।
वैश्यस्य गृहमागच्छेद्धनधान्यसमृद्धये ॥

इति । चकारस्यानुक्तसमुच्चयार्थत्वात् तादृशा अन्येऽपि योगाः गुरूक्ताः
द्रष्टव्याः । यथा —

सूर्ये शुक्रांशगे लभे नीचारातिगृहैर्विना ।
वैश्यस्य गृहमागच्छेत् गृहेशो वश्यतां व्रजेत् ॥

शूद्रवश्ययोगानाह पदार्धेन—

**दृष्ट्वा शूद्रं शशिनि सितांशे स्पृष्ट्वा स्वांशे वश-
यति शुके ॥ १८ ॥**

‘नीचारिभाग्यभवन’ इत्यनुवर्तत एव । नीचशत्रुभाग्यराशिसंब-
न्धिनि सितांशौ स्थिते चन्द्रे लभे सति शूद्रं दृष्ट्वा वशयति । तादृशे-
स्वांशे शुके लभे सति शूद्रं दृष्ट्वा वशं नयति । गुरुः—

चन्द्रे शुक्रांशगे लभे नीचारातिगृहैर्विना ।
शूद्रस्य वदनं दृष्ट्वा वश्यस्यान्मरणान्तिकम् ॥
शुके स्वांशगते लभे नीचारातिगृहैर्विना ।
शूद्राणां गृहमागत्य स्पृष्टस्तैर्वश्यतां ययुः ॥

इति । शुक्रांशे चन्द्रे शूद्रो दृष्ट एव वश्यः स्यात् । तथा स्वांशस्थे
शुके लभे स्पृष्टो वश्यो भवति ।

दृष्ट्वा शूद्रं सितांशस्थे शशाङ्के स्ववशं नयेत् ।
 * दृष्ट्वा तत्स्वांशगे शुक्रे वशं नयति साधकः ॥
 इति । अथवा अन्येऽपि योगा गुरुणोक्ताः—
 सौम्ये शुक्रांशगे लग्ने नीचारातिगृहैर्विना ।
 शूद्रसंस्पर्शनादेव वश्यः स्यात् वंशजैस्सह ॥
 जीवे शुक्रांशगे लग्ने नीचारातिगृहैर्विना ।
 शूद्रस्य गृहमागत्य तं शूद्रं वश्यतां नयेत् ॥
 भौमे शुक्रांशगे लग्ने नीचारातिगृहैर्विना ।
 शूद्रस्य वदनं दृष्ट्वा वश्यस्यान्मरणान्तिकम् ॥
 केतौ जीवांशगे लग्ने मुखपुच्छविवर्जिते ।
 शूद्रस्य गृहमागच्छेद्वश्यो भवति नित्यशः ॥

इति । अपरार्धेन स्त्रीवश्ययोगानाह—

**जीवांशस्थे स्त्रियमिह लग्ने सौरांशस्थे सवि-
 तरि वेश्याम् ॥ १९ ॥**

इह शुक्रे जीवांशगे लग्ने स्थिते यां कांचित् स्त्रियं दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा
 वशयति । मन्दांशगे सूर्ये लग्ने वेश्यां स्त्रियं वशयति । गुरुः—

शुक्रे जीवांशगे लग्ने नीचारातिगृहैर्विना ।
 स्त्रीणां राज्ञां मुखं दृष्ट्वा वश्याः स्युः स्त्रीनराधिपाः ॥
 मन्दांशगे रवौ लग्ने नीचारातिगृहैर्विना ।
 वेश्यास्त्रीभिषणेनैव वश्याऽवश्यमृते स्वयम् ॥

इति । शत्रूणामपि मैत्रीकारकं योगद्वयमाह—

**लग्ने गुरुः शशिसिनौ हिबुके यदा स्तः संभा-
 षणं सह तदा द्विषता विदध्यात् । मित्रत्वमेति**

रिपुरस्य तथैकराशौ वर्गोत्तमे गुरुसितौ च विल-
ग्नौ वा ॥ २० ॥

लग्ने गुरुः चतुर्थे शशिशूक्रौ यद्येको योगः । एकस्मिन् राशौ
वर्गोत्तमांशे स्थितौ गुरुशुक्रौ द्वौ लग्ने यदि स्तोऽन्यः, अस्मिन् योगद्वये
शत्रुणा सह संभाषणं कुर्यात् स शत्रुमित्रिभवाति तस्य गुरुः—

जीवे लग्नगते चन्द्रशुक्रौ हिवुकमाश्रितौ ।

यदा तदा मित्रयोगः शत्रुसम्भाष्य मित्रकृत् ॥

वर्गोत्तमांशगौ जीवशुक्रौ सह विलग्नौ !

शत्रुभिः सह सम्भाष्य मित्रं कुर्यात् परस्परम् ॥

इति । अन्ये च मित्रयोगा गुरुणाक्ताः—

चन्द्रजीवसिताः कर्मलग्नवेश्मसु मित्रकृत् ।

चन्द्रजीवसिताः वेश्मकर्मलग्नेषु मित्रकृत् ॥

स्वगृहस्थे सिते तोये स्वगृहस्थे विधूदये ।

मित्रर्क्षस्थे गुरौ दृष्टे दृष्टो मित्रं भविष्यति ॥

रक्तेऽस्ते गुरुलग्ने च मन्देऽस्ते भार्गवोदये ।

रिप्ते मन्दे सिते लग्ने त्रयो योगाः सुमित्रदाः ॥

शूर्पे चन्द्रे सिते लग्ने वैरिदर्शनमुत्तमम् ।

मैत्रद्वितीयपादेन्दावुदयत्यपि भार्गवे ॥

इति । एषु दृष्टा न केवलं शत्रवो मित्रीभवन्ति ; राजादयोऽप्यतिस्त्रि-
ग्धाः स्युः । गुरुः—

एषु योगेषु राजानो द्रष्टव्या मैत्रमिच्छता ।

भृत्येन वाऽरिणाऽन्येन तेऽतिस्त्रिहन्त्यसंशयः ॥

इति । दृष्टस्य मित्रस्य स्वामिना संग्रहणकालमाह—

स्ववश्यभवने स्वामी कुर्यात् भृत्यस्य संग्र-

म् । स्वकर्मराशौ वा कालः प्रोक्तोऽत्रान्यैर्विवाह-
वत् ॥ २१ ॥

स्वामी प्रभुः स्वस्य जन्मनो नाम्नो वा वश्यराशौ स्वस्य कर्म-

राशौ दशमराशौ वा भृत्यस्य सेवकस्य संग्रहं कुर्यात् । तथा च गुरुणा
अनेनैवाभिप्रायेणोक्तं —

स्वस्वामिराशिवश्यक्षं चन्द्रे लग्नेऽथ वा व्रजेत् ।

भृत्यः स शुभदो दृष्टो दृष्टेष्वेवं शुभाशुभम् ॥

इति । मुहूर्तसारेऽप्युक्तं—

उत्तरात्रयहस्ताश्विनसुविष्णुसुरेज्यमम् ।

पौष्णेन्दुत्वाष्ट्रमैत्राणि सेवायां शुभदान् विदुः ॥

दर्शाष्टरिक्ता निन्धाः स्युः शेषाश्च तिथयः शुभाः ।

शकुनादीनि विष्टिं च दुष्टयोगांश्च वर्जयेत् ॥

अर्कार्किवारवर्गाणां वारवर्गोदयाः शुभाः ।

स्थिरक्षाणि च शस्तानि मध्यमान्युभयानि च ॥

शुभाः केन्द्रत्रिकोणस्थाः पापाः षष्ठत्रिलाभगाः ।

सेवासौख्यावहाः सर्वे नेष्टा रन्ध्रस्थिता ग्रहाः ॥

चन्द्रे सद्गुणसंयुक्ते स्थिरराशौ स्थिरांशके ।

विधोर्बल्युते काले सेवा सर्वसुखावहा ॥

भृत्यर्थकर्मणामारम्भकालमाह—

कर्मण्यर्के गुतौ लग्ने स्मरे तोयेऽपि वाविधौ ।

प्रारब्धं सिध्यति तदा श्रेष्ठश्च द्रव्यसहः ॥ २२ ॥

दशमेऽर्के शुभे लग्ने गुरौ सप्तमे विधावेको योगः । अत्र चन्द्रे चतुर्थे अन्यः । अस्मिन् योगद्वये प्रारब्धं कर्म विद्याकृष्यादि कर्म अविघ्नेन सिध्यति तथा अस्मिन् योगद्वये द्रव्यसंग्रहश्च शुभः । गुरुः—

जीवे लग्नगते चन्द्रे स्मरे वा तोयगे विधौ ।

स्वस्थेऽर्केऽर्थानि गृहीयात् प्रारब्धं च फलप्रदम् ॥

जीवकर्किणि स्वांशस्थित्येदमेव योगान्तरम् । यथोक्तं गुरुणा—

आश्लेषाद्यन्तयोरंशे जीवलग्नं स्मराम्बुगे ।

चन्द्रे खेऽर्के विना विघ्नं प्रारब्धमिह सिद्ध्यति ॥

इति । विवादभूमेः स्वत्वापादनोपायमाह—

पितृसलिलरोहिणीनां तुर्यांशे स्वस्य शीतगो-
रुदये । मृत्स्नां विवादभूमौ गृहीयात् सा भवेत्
स्वीया ॥ २३ ॥

मघापूर्वाषाढारोहिणीनां चतुर्थपादस्थस्य चन्द्रस्योदये विवादभूमिं
गत्वा तत्र मृत्तिकां गृहीयात् । सा भूमिरनायासेनार्थिनः स्वकीयैव स्यात् ।
तथा च गुरुः—

पित्रद्याप्यरोहिणीनां तु चतुर्थांशोदिते रवौ ।

विवादभूमौ गृहीयात् मृदं सा स्वा धरा भवेत् ॥

इति । मृद्गृहश्च शत्रोस्त्रिजन्मजा(?)ष्टमोदयादिषु कार्यः । गृहीतां मृदं
स्वगृहे चुल्यादौ विन्यसेत् । यथाऽऽह गुरुः—

पैत्राजपादरोहिण्यां तुरीयांशे विधूदये ।

विवादमृदमादाय न्यसेत् चुल्यामूलखले ॥

इति । अत्र केचिदाहुः । प्रोक्ततारागतचन्द्रोदये भूमौ कृषिं कृत्वा पुन-
स्तद्योगे ततो मृदं गृहीत्वा स्वगृहे चुल्यादौ निक्षिप्य पुनस्तद्योगे तत्र

गत्वाऽऽखुकृत्यां कुर्यादिति । तथा गुरुः—

रोहिण्यामुदिते चन्द्रे व्यवहारावनौ कृषिम् ।
कृत्वा तु विवदेदेषा भूः सा स्यादवशेन तु ॥
चन्द्रनक्षत्रयोगे तु मृदमुद्धृत्य निक्षिपेत् ।
स्वधाम्नि लग्ने भूयो व्यवहारावनीर्विशेत् ॥
तत्रोत्साहं विदध्यात्तु सा भूः स्वा स्यात् फलैः सह ।

अत्र अन्ये नक्षत्रयोगा गुरुणोक्ताः—

हस्ते चन्द्रोदये हत्वा मृदं तत् प्रतिरूपकम् ।
कृत्वाऽवटे खनेत् सा भूः स्वस्य स्यादरिनाशतः ॥
रोहिण्यजैकपादाभ्यां यद्यर्कस्योपरागतः ।
तदा मृदं गृहीत्वैव व्यवहारभुवं विशेत् ॥
चैत्रमे च शशिकीटभोदये प्रारभेत कृषिभूविलावनम् ।
व्यवहारिकभुवं पुनर्मघाकीटमे स्वविवदेज्जयेच्छया ॥
सौम्यर्क्षे तद्विलग्ने वा मृदमादाय तद्गृहे ।
विन्यस्याऽमिन् पुनर्योगे कृषिं कुर्यादविघ्नकृत् ॥

जीवे लग्नगते सिते गगनगे चन्द्रे स्मरायस्थिते
लाभे मन्दमहीजयोर्दिनकरे षष्ठे विलग्ने गुरौ ।
लग्नान्बुस्मरगेषु शुक्रशशभृन्मन्देषु मृत्संग्रहः तद्वा-
गोऽधिविवादधात्रि तनुते स्वीयामयत्नेन ताम् ॥२४

एतेषु त्रिषु योगेषु विवादभूमौ यो मृदमादत्ते भक्षयते वा
तत्फलमुपभुङ्क्ते वा सा भूरयत्नेन तस्य स्वीयैव स्यात् । गुरुः—

कर्मणि शुके जीवे लग्ने लाभगतेन्दौ कामगते वा ।
मृद्गहणाद्वा तत्फलभोगाद्वादधरा स्यादिति वाच्यम् ॥

आयगौ यमधरासुरौ यदा षष्ठेगे दिनकरे गुरु-
दये । व्यावहारिकधरासु वादयेत् निर्विशङ्कमरि-
णा जयं व्रजेत् ॥ २५ ॥

लग्नगृहकामराशिषु भृगुशशिमन्दाः स्थिता यदि तदानीं । व्यव-
हारवति क्षेत्रे मृदमादत्ते स्वका भूस्यात् । इति योगान्तराण्याह—

स्वांशे विधौ गुरुदिति गुडयुक्तदृष्टे लग्ने स्व-
भांशगतमन्दतेक्षिते वा । मन्देऽथ वाऽथ सहजे
भवने भुजङ्गे मृत्सादनात् भवति वादमही स्वकैव ॥

एते त्रयोऽपि योगा विवादभूमौ मृद्भक्षणात् तां स्वकीयां
कुर्वन्ति । तत्र प्रथमद्वितीययोगयोरिक्तातिथियोगो द्रष्टव्यः । गुरुः—

गुरुवारे स्वभांशेन्दौ गुरुलग्नेक्षणे गुरोः ।

व्यवहारावनौ भुक्त्वा मृदं रिक्तासु तां जयेत् ॥

मन्दस्य लग्ने स्वर्क्षांशे मन्दलग्नेक्षणेऽपि वा ।

रिक्तायामपि मृद्भक्षाद्यवहारस्वभूः स्वका ॥

आये राहौ सहजेन्दौ मन्दे मृद्भक्षणात् स्वयं विवादभूमिरायाति । विवा-
देन विना हठादिति ; वाशब्दादन्येऽपि ईदृशा योगा अप्यत्र द्रष्टव्याः—

लग्ने बुधगुरु तोये सितेन्दू सूर्यजन्मगौ ।

राहारौ कर्मगौ योगो यदि स्यान्मुद्गहः शुभः ॥

जीवेन्दू रोहिणीयातौ लग्नस्थौ चेत्तदा बुधः ।

विवादभूमृदं गेहे स्वे स्थाप्य विवदेत्तदा ॥

कुम्भस्य पञ्चमांशे मन्ददिने मन्दयुक्तनक्षत्रे ।

स्वमतीष्टकोपं लिखेत् विवादभूमौ खनेत् स्वका भूस्त्यत् ॥

इति

अर्केण सहिते भौमे बुधे वा लग्नमागते ।

प्रत्यर्थिना तु संभाष्य संकृह्यात् भुवं बुधः ॥

इत्यादयो द्रष्टव्याः—

सावित्रश्रवणविशाखयाम्यमैत्रै

पादेऽन्त्ये नवमकुळीरवृश्चिकेषु ।

गृह्णीयान्मृदमथवा फलं तदीयं

प्रत्यर्थी न च बलते विवादभूमौ ॥

शुक्रेन्दुसूरिविसौम्यशनैश्चराणां

वारान्वितेषु करणेषु बवादिकेषु ।

होरा नराद्यनुगुणेन विवादभूमौ

मृत्संग्रहाद्भवति भूमिरियं स्वकीया ॥

गुरुः—

बुधवारे धनुर्लग्ने वारुणे मूषिकावटे ।

आरग्वधं खनेच्छङ्कुं सप्ताङ्गुलमधोमुखम् ॥

चतुर्थीविष्टियामे तु तदाशायां खनेद्बुधः ।

अच्छिद्रपद्मपत्रान्तरस्थिभस्म निधाय च ॥

विवादभुवि वा सीम्नि स्वा भूः स्यादरिनाशतः ।

सौगन्धिकदले भस्म साप्तवर्णं युतं खनेत् ॥

एकादशी विष्टियामे आरामे वा गृहाङ्गणे ।

रिपोः क्षेत्रेऽपि वा स्वा स्यात् सा भूमिः शत्रुनाशतः ॥

रोहिणी शूर्पयाम्यानामन्त्यांशे वृश्चिकोदये ।

व्यवहारो जयाय स्यादाहवे च तथेषुभिः ॥

अश्विन्यास्तु तृतीयांशे बुधे षष्ठे गुरौ यदि ।

व्यवहारो जयाय स्याद्युद्धे बाणविसर्जनात् ॥

विष्णुशूर्पयमान्त्यांशेष्वलिकर्कुदये वदेत् ।

व्यवहारकवाक्यानि स्थैर्यं स्यादात्मो धनम् ॥
दर्शनादिभिः परधनादीनां स्वत्वापादनयोगाश्च तेनैवोक्ताः—
यदैकांशोदितौ भौममन्दौ गुरुदृशा युतौ ।
यः पश्येत् ब्राह्मणस्य स्वं षण्मासात्तस्य तद्धनम् ॥
यदैकांशे विलग्नस्थौ भौमराहू कचित्तदा ।
ब्रह्मक्षत्रधनं दृष्टं सप्ताहात् प्रेक्षकस्य तत् ॥
यदैकांशगतौ भौमभृगुपुत्रौ कचित्तदा ।
ब्रह्मक्षत्रधनं दृष्टं सप्ताहात् प्रेक्षकस्य तत् ॥
यदैकांशोदितौ चन्द्रचन्द्रजौ शुभवर्गौ ।
परदारग्रहं कुर्यात् सोदके स्यान्निजाङ्गना ।
यदैकांशे विलग्नस्थौ शुक्रराहू कचित्तदा ॥
संग्राह्या दासवर्गाः स्युः ते मासात् स्वं भविष्यति ॥
इति । क्षेत्रादिसंग्रहयोगानाह—

एकांशस्थौ वपुषि सितज्ञौ ग्राह्यं क्षेत्रं बहुफ-
लवृद्धयै । मन्दज्ञौ वा यदि गुरुशुक्रौ संगृहीयात्
फलमभिवृद्धयै ॥ २७ ॥

कचिद्राशौ शुक्रज्ञौ एकांशकस्थौ लग्ने यदि स्तः तदा क्षेत्रं
गृहीयात् । तथा मन्दज्ञौ शुक्रगुरु वा द्वौ तादृशौ लग्ने यदि स्तस्तदा
स्वक्षेत्रमध्यात् फलं संगृहीयात्—

गुरुः—

यदैकांशोदितौ सौम्यभृगुपुत्रौ कचित्तदा ।
क्षेत्रं यत्नेन गृहीयात् महाफलदतामियात् ॥

अपि च—

- रविराहू यदैकांशे प्रोद्धतौ ग्रहणं विना ।
तदा भूग्रहणं कार्यमर्धवृद्धयै तु मेदिनी ॥
रविकेतू यदैकांशे प्रोद्धतौ मन्ददर्शने ।
भूमिसंग्रहणं श्रेष्ठं पञ्चवृद्धये मही भवेत् ॥

यदैकांशे समायुक्तौ गुरुशुक्रौ क्वचित्तदा ।
क्षेत्रस्य चाग्रतो मध्ये गत्वा हत्वा फलं भजेत् ॥
यदैकांशे विलग्नस्थौ सौम्यमन्दौ क्वचित्तदा ।
क्षेत्रमध्यात् फलं ग्राह्यं बहुवृद्धिर्भविष्यति ॥

इति । परक्षेत्राणामाक्रमणमृद्धहणभक्षणफलोपभोगादिभिः स्वत्वापादकान्
योगानाह—

एकांशोपगयोः सुरेज्यबुधयोः लग्ने द्विजानां
मही सर्वेषां भृगुसौम्ययोः झफणिनोः मृत्सादनात्
सा भवेत् । ब्रह्मस्वं कुजमन्दयोर्नृपधनं सर्पारयोः
प्रेक्षणात् स्वं स्यादिन्दुविदोस्तथा हि सितयोः
प्राप्तं परस्त्रयादिकम् ॥ २८ ॥

कुत्रचिद्राशावेकांशस्थयोः गुरुबुधयोः उदये विप्राणां भुवं गत्वा
ततो मृदमादाय अद्यात् । सा भूः स्वीयैव स्यात् । तादृशयोः शुक्र-
बुधयोः बुधराहोर्वोदये सर्वेषां विप्राणां अन्येषां वा भुवं गत्वा मृद्वक्ष-
णात् फलग्रहणाद्वा सा भूः स्वस्यैव स्यात् । तादृशयोः कुजसौरयो-
रुदये प्रेक्षितं विप्राणां कुप्याकुप्यात्मकं धनं प्रेक्षकस्य स्वस्यैव स्यात् ।

तादृशोः कुजराहोरुदये दृष्टं क्षत्रधनं विप्रधनं च स्वं भवेत् । तादृशयोः
चन्द्रबुधयो राहुशुक्रयोर्वोदये परस्त्रीदासादि स्वस्यैव भवति । तथाच
गुरुः—

यदैकांशोदितौ सौम्य देवपूज्यौ क्वचित्तदा ।
क्षेत्रं विप्रस्य गत्वा तु स्वं भवेत् मृत्तिकाशनात् ॥
यदैकांशोदितौ सौम्यभृगुपुत्रौ क्वचित्तदा ।
अन्यक्षेत्रात् फलं ग्राह्यं वर्षात् तत् स्वं भविष्यति ॥
यदैकांशे विलग्नस्थौ सौम्यराहू क्वचित्तदा ।
परक्षेत्रान्मृदं भुक्त्वा हत्वा च स्वं भविष्यति ॥

इति । क्षत्रियभूग्रहणयोगश्च गुरुणाक्तेः—

सूर्ये जीवांशगे . . . नीचारातिग्रहैर्विना ।
भूपस्य मेदिनीं दृष्ट्वा मासेनैवाप्नुयात् स ताम् ॥

इति । गृहादिषु मूषिकादिबाधापनयनोपायकालमाह—

दृष्टे रवौ सपरिधौ सति लोहकीलं तारापतौ
तु निदधातु शिलां स्वसीम्नि । ते द्वीपनिष्कुटख-
लाङ्गणमन्दिरादौ छिन्तः पृथक् मृगवराहगवाखु-
बाधाम् ॥ २९ ॥

रवौ व्योम्नि परिवेषसहिते दृश्यमाने सति लोहकीलमारामादिषु
मृगादिबाधापनयनाय निक्षिपेत् । तथा चन्द्रे सपरिवेषे दृष्टे सति स्वसी-
मगारामादिषु लोहकीलं शिलां च निक्षिपेत् । ते निक्षिप्ते लोहकीलशिले
द्वीपारामखलाङ्गणगृहक्षेत्रादिषु मृगवराहपशुपक्षिमूषिकादिबाधां प्रत्येकं
हरतः । दिवा रवौ सपरिविष्टे दृष्टे सति स्वसीमगारामादिषु निहितं लोह-
कीलं मृगाद्युपद्रवं हरति । तथा रात्रौ चन्द्रे सपरिविष्टे दृष्टे गृहारामादिषु

स्वस्वीमायां निहिता शिला च तेषु मृगाद्युपद्रवं हरति । वास्त्वध्यायानु-
क्तकालस्य गृहकर्मणः कालमाह—

**शशिशुक्रयुते लग्ने स्थिरे गुरौ केन्द्रगे च शुभ-
वरो । गृहकार्यं सर्वमपि प्रशस्ततिथितारके शस्तम्**

शुभवारे शुभतिथिनक्षत्रान्विते स्थिरे लग्ने शशिशुक्रयोरन्य-
तरस्योदये गुरौ केन्द्रे सर्वमुक्तकालमनुक्तकालं च गृहकार्यं शुभं भवति ।
गृहादिस्थिरकार्ये अन्ये योगा गुरुणोक्ताः—

देवेव्यशुक्ररविजा यदि साकमेक-

मंशं गताः शुभाविलम्भमुपागताश्च ।

सम्पत्करस्थिरकराणि शुभावहानि

प्रासादगेहकरणप्रतिमादिकानि ॥

एकांशे लग्नगाश्चेद्बुधगुरुभृगुजा यज्ञराजाभिषेकं

ग्रामं कुर्यान्नृपाद्यालयविबुधगृहान् वेदवेदाङ्गशास्त्रम् ।

नानामित्रं (नानातनुच) वैद्यकटककृतिमहावेधयन्त्राधिकं च

प्रारम्भं ग्रामराष्ट्रापणपुरकटककक्ष्मानिवेशादिकानाम् ॥

कुजज्ञजीवशुक्रेषु गतेष्वेकांशकं तदा ।

लग्नकेन्द्रेऽथवा तेषु गृहशिल्पाद्युपक्रमः ॥

चन्द्रे लग्ने शुभांशे च शुभलग्ने शुभेक्षणे ।

मान्दिरादौ गृहान्तेषु स्तम्भस्थापनमीरितम् ॥

गोषु बन्धनकालमाह—

**स्वातीरुद्रसमेते शनिवारे तावुरुदये गोष्ठम् ।
वधनीयात् शुभदृष्टे ध्रुवभे वा मन्दजीवदिनसहिते॥**

स्वात्याद्रायुक्ते मन्दवारे वृषभराशौ लग्ने गवां निवासार्थं गोष्ठं कुर्यात् । तथा स्थिरनक्षत्रे मन्दवारेण वा सहिते शुभदृष्टे स्थिरे लग्ने वा गोष्ठं कुर्यात् । एतद्योगत्रयं गोष्ठार्थं । दार्वानयनादियोगा गुरुणोक्ताः ।

कुम्भाद्यन्तांशगे भानौ दारूण्यापाद्य साधिते ।

गोष्ठे वासं गवां कुर्यात् वृद्धिः स्यान्निरुपद्रवा ॥

घटस्य नवमांशस्थे जीवे लग्नमुपागते ।

महिषीसङ्ग्रहं कुर्यात् तासां वृद्धिं यदीच्छति ॥

गवां सङ्ग्रहणकालमाह —

श्वव्याघ्रसिंहकरणानि तदीययोनिवारान् विहा-
य वृषभान्त्यघटास्पदेषु । अश्वेभगोमृगमाहिष्यज
योनिभेषु कुर्यात् गवां प्रथमसंग्रहणं समृद्धयै ॥

विष्टिबालववकरणानि तद्योनिवारान्—कुजसोमशुक्रवारांश्च
हित्वा अन्यकरणवारेषु अश्वदियोनिशुभभेषु वारुणाश्विपौष्णोत्तरात्रयमत्रै-
हस्तस्वातीतिप्यभेषु वृषकुम्भमनिलग्नौ वृद्धयर्थं गवां प्रथमसङ्ग्रहं क्रयरूप-
मुपादानं कुर्यात् । केचिदुत्तरात्रयमष्टमीचतुर्दशीदर्शतिथीश्च वर्जयन्ति ।
तथा च श्रीपतिः—

चित्रोत्तरावैष्णवरोहिणीषु

चतुर्दशीदर्शदिनाष्टमीषु ।

स्थानप्रवेशं गमनं विदध्यात्

धीमान् पशूनां न कदाचिदेव ॥

इति । अन्ये पूर्वात्रयज्येष्ठाश्रविष्ठासौम्यादितिशूर्पभानि ग्राह्याण्याहुः ।

तथा च रत्नः—

शूर्पत्रितयं पूर्वाः पौष्णात् वसुभात् पुनर्वसोः द्वितयं ।

सौम्यं हस्तश्च तथा गवां क्रये विक्रये भगः ॥

इति । गवां संग्रहणयोगमाह—

सौरस्य वारे वणिजेन युक्ते प्रशस्तनक्षत्रसम-
न्वितेच । वृषोदये संग्रहणं विध्यात् गवां समृद्धयै
शुभ एष योगः ॥ ३३ ॥

मन्दवारे वणिजकरणे स्वातीमैत्रादिशुर्भक्षयुक्ते वृषभराश्युदये गाः
सङ्गृहीयात् । एष योगो गवां वृद्धिकृत् । ननु सर्वत्र तारालगादि
प्रधानतया गृह्यते । इह तु वारकरणादि प्राधान्येनोक्तमित्यत्राह—

गोकार्येषु समस्तेषु वाराश्च करणानि च । ऋ-
क्षादिभ्यो विशिष्यन्ते शूर्पं चित्रां च वर्जयेत् ॥ ३४

सर्वेषु गोकार्येषु क्रयविक्रययात्रापोषणरक्षणादिषु नक्षत्रतिथियो-
गेभ्यो वाराःकरणानि च विशेषतः प्राधान्येन ग्राह्याणि । गोकार्याणि
वर्ज्यानीत्यर्थः । विशेषतो वारकरणेषु शुभेषु कार्याणि निषिद्धेषु
त्याज्यानीत्यर्थः । चशब्दात् गोकार्येषु चित्राशूर्पभे च वर्जयेत् ।
व्याघ्रयोनित्वात् । चित्रविशाखयोरपि गोकार्याणि वर्ज्यानीत्यर्थः ।
सङ्गृहीतानां गवां पोषणरक्षणादिकालः श्रीपतिनोक्तः—

शुभग्रहोदये शुद्धे नैधने स्वर्क्षयोनिषु ।

रक्षावृद्धिक्रियाः शस्ताः पशूनां मुनिभिः स्मृताः ॥

इति ।

मकराद्यन्तपादस्थे रवौ लग्ने च बन्धयेत् ।

मण्यादीन् गोधनादीनां रोगचोरादिशान्तये ॥

पूर्तादिकर्मणां कालमाह—

कूपतटाकमहाद्रुमवृषभोत्सर्गादिकेषु कार्येषु ।

कूपादीनां प्रथमे सलिलादाने च चौलवत्कालः ॥

कूपतटाकपरिखादिखनने महाद्रुमादिस्थापने वृक्षोत्सर्गसन्त्रादि-
कार्येषु आदौ कूपतटाकादिसलिलस्वीकारे च चौलवत् —चौळोक्तनक्षत्र-
तिथिवारादिकालसदृशः कालः स्यात् । अनुक्तकालानां सर्वेषां शुभ-
कर्मणां कालमाह—

**विवाहमेकं परिहृत्य सिद्धे सर्वाणि कार्याणि
करोतु सिद्धयै । तुषारमूर्तेरुदये गुरोर्वा स जीव-
वारः खलु दुर्लभोऽयं ॥ ३६ ॥**

सिद्धे—पुष्यनक्षत्रे । अर्थात् शुभवारयुते विशेषतो गुरुवारयुते
चन्द्रोदये गुरोरुदये वा विवाहमेकं विहाय तदन्यानि सर्वाणि कार्याणि
शुभकर्माणि कार्यसिद्धयै कुर्यात् । पुष्यनक्षत्रमात्रेऽपि शुभकार्याणि
कार्याणि स्युः । गुरुवारयुक्ते किं पुनरित्यर्थः । अत्र खल्विति प्राप्ति-
वाचकशब्दाभिधानात् ग्रहवेधादिदोषयुक्तेऽपि पुष्ये शुभकार्याणि कुर्यात् ।
इत्युक्तं भवति । तथाच श्रीपतिः—

ग्रहेण विद्धोऽप्यशुभान्वितोऽपि

विलोमतारोऽपि विलोमगोऽपि वा ।

करोत्यवश्यं सकलार्थसिद्धिं

विहाय पाणिग्रहेमेव पुष्यः ॥

इति । ग्रहवेधदोषसहितस्यापि तिष्यस्य प्रशस्यत्वं च तेनैवोक्तं—

परकृतमखिलं निहन्ति पुष्यो

न खलु निहन्ति परस्तु पुष्यजातम् ।

ध्रुवममृतकरेऽष्टमेऽपि पुष्ये

विहितमुपैति सदैव कर्म सिद्धिम् ॥

इति । सर्वारम्भसिद्धियोगः श्रीपतिनोक्तः—

व्ययनैधनसंशुद्धौ संहृष्टोपचयोदये ।
सर्वारम्भेषु संसिद्धिश्चन्द्रे चोपचयस्थिते ॥

ज्योतिषार्णवेऽपि—

जीवोदये स्मरे चन्द्रे त्रिषडायेष्वसद्गहाः ।
शुके ज्ञे वा चतुर्थेऽस्ते योगोऽयं स्यात्त्रिपुष्करः ।
शुभकर्माणि सर्वाणि कुर्यादस्मिन् सुसिद्धये ॥

पौष्टिकादिकर्मणां कालमाह—

अभिवर्धिष्णु यत्कार्यं तारासूध्वमुखीषु तत् ।
ऊर्ध्वास्यानां तु राशीनां उदयेषु विधीयताम् ॥

अभिवर्धिष्णु पौष्टिकं कर्मानुक्तकालं द्रुमलताशाखाङ्कुरार्पणा-
दिकं वा तत्सर्वमूध्वमुखेषु पुण्यादिनवमेषु ऊर्ध्वमुखानां ; तुशब्दान्मू-
धोदयानां वा राशीनामुदये कुर्यात् । एतत् संज्ञाध्याये ‘तत्तत्समं तत्त-
त्फलम्’ इत्यत्रोक्तम् । केचित्तिर्यग्वक्त्रभेष्वपि पौष्टिकमिच्छन्ति । तथा
च ज्योतिषार्णवे—

आर्यम्णविश्वाच्चत्वरि तथाऽऽहिर्बुध्न्यमात्रयं
ब्रह्मादित्यद्वयं मैत्रं उत्तरत्रितयं तथा ।
एकास्ताराः प्रशस्ताः स्युः पौष्टिकेषु विशेषतः
वृषभो मिथुनं चैव पाथोनश्च कुळीरकः ॥
जूकश्चापं प्रशस्तं स्यात् पौष्टिकेषु विशेषतः
तिथिवारक्षयोगेषु ये शुभास्ते शुभावहाः ।
सिद्धानन्दामृताद्यास्तु पौष्टिकेषु विशेषतः
त्रिषडेकादशे पापाः शुभाः केन्द्रत्रिकोणगाः ॥

पौष्टिके शुभदाः सर्वे रन्ध्रस्थाःसर्वनाशनाः
 पैरावतगते चन्द्रे सुरेश्वरगतेऽथ वा ।
 देवलोकगते वाऽपि पुष्करांशगतेऽथ वा
 वर्गोत्तमगते चन्द्रे सद्गुणस्थे बलान्विते ॥
 कलावृद्धिसमायुक्ते शुभभावभयोगयोः
 योगे धुरधुराख्ये च अधियोगादिकेषु च ।
 अन्येषु शुभयोगेषु पौष्टिकं सुशुभावहम् ॥
 इति । अनुक्तानां विद्याद्रव्योपकरणविनोदपरिकर्मादीनां कालमुक्तं
 पौष्टिककालवद्वदेत् । तथाचोक्तं ज्योतिषार्णवे—
 गेयनृत्तादिकं वाद्यं मृदङ्गपटहादिकम् ।
 रङ्गारम्भावतारादि शङ्खकाहळमेव च ॥
 अमत्रे भोजनं भाण्डसङ्ग्रहं घटसङ्ग्रहम् ।
 छत्रचामरर्पिष्ठाद्यमुपानत्पादुकादिकम् ॥
 पीठासनादिग्रहणं पात्र द्रव्यादिसङ्ग्रहम् ।
 दन्तच्छेदमजादीनां नखच्छेदं च वाजिनाम् ॥
 गजरथ्योक्षकादीनां दर्शनं दमनं तथा ।
 व्याघ्रसर्पकुरङ्गानां नकुलास्वादिसङ्ग्रहम् ॥
 तेषां च दमनं बालकेशादीनां च सङ्ग्रहम् ।
 चकोरशुकचक्राहकुक्कुटादिपरिग्रहम् ॥
 तेषां च दमनं कार्यं वाहनारोहणं तथा ।
 गोभूमिबान्धवादीनां दर्शनं तीर्थसेवनम् ॥
 दर्शनं दर्पणादीनां शरीरस्य च संस्क्रिया ।
 ग्रहस्य सङ्ग्रहं भूतपिशाचादिप्रमोचनम् ॥
 कुड्याद्यारोहणं तेषां सेवनं दन्तसङ्ग्रहम् ।

त्वक्कर्मादि तथा सैव्यं शिलाशूर्पादिसङ्ग्रहम् ॥
 तुलाप्रस्थादिमानानां करणं सङ्ग्रहं तथा ।
 छेदकाभरणादीनां रथशस्त्रास्त्रसङ्ग्रहम् ॥
 औषधग्रहणं चैव सर्वोपकरणानि च ।
 सर्वोपकरणानां च ग्रहणं सर्वशिल्पिनाम् ॥
 भूमिद्रव्यविभागश्च लीलाकन्दुकविग्रहः ।
 हलरज्वादिसङ्ग्राह्यं शिक्षासाधनसङ्ग्रहम् ॥
 चतुरङ्गाक्षरादीनां साधनानां च सङ्ग्रहम् ।
 गणनासाधनादीनां लेख्यादीनां च सङ्ग्रहम् ॥
 वाणिज्यारम्भणं चैव तेषां साधनसङ्ग्रहम् ।
 अजिनादि च सङ्ग्राह्यं संग्राह्यं शिविकादिकम् ॥
 दासीदासखरादीनां सङ्ग्रहं रक्षणाविधिः ।
 हेमराजतताम्रादि विकाराणां च सङ्ग्रहम् ॥
 माणिम्फटिकरत्नादि सङ्ग्रहं कोशसङ्ग्रहम् ।
 क्षौमाणां कम्बळादीनां शाल्यादीनां च सङ्ग्रहम् ॥
 एवमादीन्यनुक्तानि पौष्टिकोक्तेषु कारयेत् ।

इति । विद्वेषणादि कालमाह—

पुंसो जन्मेशारिराशौ विदध्यात् षष्ठे भे वा
 कर्म विद्वेषणाख्यम् । नक्षत्रादौ शात्रवाणामनिष्टे
 कुर्यात्सर्वं मारणोच्चाटनाद्यम् ॥ ३८ ॥

स्वशत्रोः पुरुषस्य जन्मेशस्य शत्रुराशौ शत्रुजन्मनः षष्ठराशौ
 वा विद्वेषणाख्यं सुहृदोः मिथो वैरोत्पादकं कर्म कुर्यात् । तथा शात्र-

¹ छेदकारोहणा । छेदकातरणा ॥

वाणां शत्रूणां अनिष्टे — विपत् प्रत्यरवैनाशिकादौ नक्षत्रे अष्टमादिराशु-
दये तज्जन्मेशवैरिग्रहाणां वारांशकोदयेषु शत्रूणां मारणं मारणोत्पदकं
कर्म उत्सादनं । उच्चाटनं स्वस्थानात् । आदिशब्देन स्तम्भनमोहना-
दीनि गृह्यन्ते । ईदृशानि सर्वकर्माणि कुर्यात् । उक्तं च—

शत्रोर्जन्मेशलग्नेशशत्रुराशुदयादिषु ।

शत्रुभे वा नरः कुर्यात् कर्म विद्वेषणादिकम् ॥

इति । अर्णवेऽपि—

जन्मत्रये च शत्रोश्च तथैव विपदादिषु ।

चन्द्राष्टमे विनाशर्क्षे वैनाशेऽष्टमराशिके

स्वनुकूलगते चन्द्रे शत्रुनाशादि कारयेत् ॥

इति । विशेषमाह गुरुः—

भानौ भौमांशगे लग्ने नीचारातिगृहं विना ।

शत्रूच्चाटनकर्म स्यात् कुहां वा जन्मभे विषे ।

पर्वसन्धिकाले जन्मर्क्षविषनाड्यो यदि स्युः सा कुहूरिति । तथा च

गुरुः—

यस्य जन्मर्क्षगश्चन्द्रो विषनाड्यां कुहूं व्रजेत् ।

अभिचारेण किं तस्य स्वयमेव पतिष्यतः ॥

दिव्यसारस्वते—

पौर्णमासीमन्दभानुयुक्ता विद्वेषकर्मणि ।

चतुर्दश्यष्टमी कार्ष्णीं अमावास्या तथैव च ।

मन्दारार्कादिनोपेता शस्ता मारणकर्मणि ॥

अष्टम्यां शुक्लपक्षे मृगपतिधनुषी मेषमाश्रित्य नाथे

तिष्ठत्यह्वामधीशे गतवति . . . मध्यमाशामुदीचीम् ।

पश्यन् क्षेत्रे निरुद्धे दशपलममलं शुक्लमश्मानमेकं

कुर्यात् स्वातं निगूडं रजनिक्लृदुदये यद्यरातेर्ज्वरः स्यात् ।
उच्चाटनादिषु योगानाह—

उच्चाटनं चरगृहे चरतारकायां चन्द्रादिशीघ्र-
खचराभ्युदये चरांशे । संस्तम्भनाह्वयमथो विप-
रीतकाले वश्याख्यमाचरतु साधकवश्यराशौ ॥

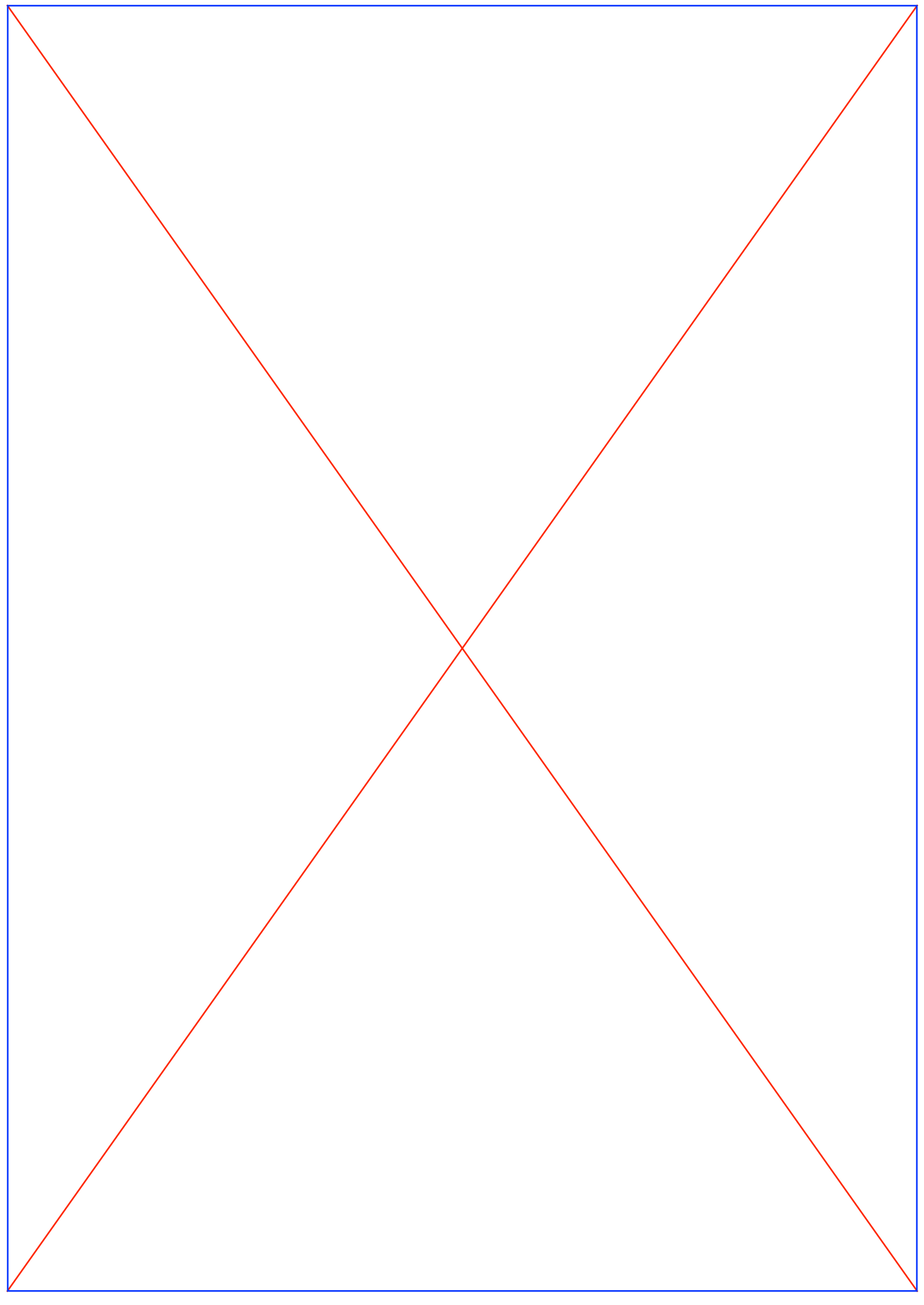
चरेषु नक्षत्रराश्यंशेषु चन्द्रादीनां शीघ्रग्रहाणां शीघ्रातिशीघ्राख्य-
गतिमतां वा ग्रहाणामुदये शत्रूच्चाटनकर्म कुर्यात् । अतोऽन्यथा कोल-
स्थिरताराराश्यंशकेषु स्थिरग्रहाणां सूर्यादीनां मन्दाख्यगतिमतां वा ग्रहा-
णामुदये शत्रूणां स्तम्भनाख्यं कर्म कुर्यात् । तथा साधकः स्वस्य
वश्यराशौ तत्सम्बन्धितारासु च तदधिपग्रहोदये वश्यकर्म कुर्यात् ।
दिव्यसारस्वते—

काष्णी चतुर्दशी तद्वदष्टमी मन्दवारागा ।
उच्चाटने शुभा सेयं प्रदोषेषु विशेषतः ॥
बुधचन्द्रदिनोपेता पञ्चमी दशमी तथा ।
पौर्णमासी च देवेशि शस्ता स्तम्भनकर्मणि ॥
गुरुचन्द्रयुता षष्ठी चतुर्थी च त्रयोदशी ।
नवमी पौष्टिके शस्ता दशमी चाष्टमी तथा ॥
पञ्चमी च द्वितीया च तृतीया सप्तमी तथा ।
बुधगुर्वोर्वारयुक्ता शान्तिकर्मणि पूजिता ॥

आकर्षणेऽप्युक्तम्—

दशम्येकादशी चैव भानुशुक्रदिनाऽन्विता ।
आकर्षणे त्वमावस्या प्रतिपन्नवमी तथा ॥

अथ पुंसामभ्युदयार्थं उपद्रवादिशान्त्यर्थं च क्रियमाणे होमबलिरक्षाकर-



वादाग्निदानतरुभेदाविषास्त्रकर्म चौर्यादिवन्धमृग-
यारणंसाहसेषु । भौमस्य दुष्टदमने वधधातुकार्ये
वारोदयावसृगपाकरणे च शस्तौ ॥ ४१ ॥

वादो—धातुवादादिः । अग्निदानमरण्यादिः । गवादीनां रोगशान्त्यर्थं
अग्निकर्म च । तरुभेदः कृष्याद्यर्थं वनादिवृक्षादिच्छेदनम् । भिन्नानां
वा तरूणां क्रकचादिना भेदनं च । विषकर्म—हिंसार्थं रोगशान्त्यर्थं
च । बाह्यादिरम्भावृत्तिक्रियार्थं च । शस्त्रपातोऽस्त्रकर्म । चापाद्यस्त्रकरणं
वा । चौर्यं परद्रव्यापहरणं । आदिशब्देन वञ्चनादि ग्राह्यम् । बन्धो
दुष्टादीनां । मृगया आखेटः । रणं कलियुद्धादि । साहसं—बला-
त्कारेण परस्वापहरणादि । दुष्टानामशीलानां गवाश्वादीनां दमनं वध ।
शब्वादीनामभिघातादिः । अथवा वधकार्यं मारणादिकर्म । धातूनां
धातुद्रव्याणां स्वर्णताम्रविद्रुमादीनां कार्यं धातुकार्यम् । त्वग्विकारेषु
शृङ्गजळूकादि भीरक्तापनयनमसृगपाकरणं एतेषु कर्मसु कुजस्य वार
उदयश्च शस्यते । कुजवारे कुजोदये च एतानि कर्माणि कुर्यादित्यर्थः ।
एतत् प्रागेवापवादाध्यायोक्तम् । चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः । तेन एतेषु
कर्मसु एते ग्राह्याः । गुरुः—

मित्रोच्चमस्थेऽवनिजे भृगुजज्ञौ

शुभाज्ञयोः शत्रुविनाशनाय ।

विद्वेषणोच्चाटनशस्त्रशाणा

ध्वादिकं वा विदधीत धीमान् ॥

....द्रेक्काणगे सौम्य विलम्बे विवदेत् स्वयम् ।

अरिणा सह युद्धे वा विजयी स्याद्रिपोर्बलात् ॥

इति ।

दृष्टे ग्रहेऽथ परिधौ क्रमतो रवीन्द्रोः सङ्ग्रह

लोष्टयुगलं च सिताशमयुग्मम् । तद्धर्षयेत्पुरुषयोः
कलहे द्ववृत्ते तत् स्यात्तयोर्महदतीव रणाय योगात् ॥

इति । वेताळकमर्णोऽपि काल उक्तः—

पित्र्येशयाम्यमूलेन्दुभेषु शुद्धेऽष्टमेऽपि च ।

वेताळसिद्धिः पाताळे भृगौ ज्ञे घटलग्नगे ॥

इति ।

यमभे कुजवारस्थे चतुर्दश्यष्टमीयुते ।

कृष्णे पापोदये कुर्यात् दुष्टग्रहविसर्जनम् ॥

मन्दांशगे रवौ लग्ने तुङ्गमित्रस्वभान् विना ।

शत्रूणां कुलनाशाय कुर्यात् कर्म सुदारुणम् ॥

इति । श्रीपतिः—

सकूरैः कूरवर्गस्थैः चन्द्रे बलनि साधने ।

अरिष्टयोगे कर्तव्यो ह्यभिचारोऽरिनेधने ॥

गुरुश्च—

अर्काक्यारहि केतुनां बलेष्वन्यतमोदये ।

गुरौ विक्रमगे कुर्यात् शत्रुनाशाय कर्म तु ॥

निखनेत् कौमुदे पत्रे निम्बभस्मयुतं भुवि ।

अष्टमीविष्टिदिक्काले शत्रोः शत्रुविनाशनम् ॥

भस्म मूलकजं निम्बपत्रे कृत्वा वपेद्रिपोः ।

प्राङ्गणे पूर्णिमाविष्ट्यां शयने वा महानसे ॥

रिपुरोगावहं तस्य रोगशान्तिस्तथोचते ।

निखनेत् सप्तमीविष्ट्यां स्नानभूमौ तु काकजम् ॥

अलाबुपात्रके भस्म रिपोः सर्वाङ्गरोगिता ।

दशमीविष्टिकाले तु गजदन्तं नवाङ्गुलम् ॥

शत्रोः पादे निखन्यात्तदङ्गुहीनो भवेद्रिपुः ।
 विष्टिकाले चतुर्दश्यां श्वजिह्वाभस्मकं खनेत् ॥
 पटोलपत्रे निक्षिप्य त्वभिचारावनौ रिपोः ।
 शत्रोस्तु गळशूला स्यात् रिपोरान्त्रामयोद्धवा ॥
 विष्टियामे तृतीयायां गृहभस्म तु गूढकम् ।
 निर्गुण्डीपत्रमध्ये च शत्रुपादोत्थपांसुयुक् ॥
 निखनेत्मातृकास्थाने पादरोगी भवेदरिः ।
 सर्वेषां थोक्ष्यमाणानामुद्धृते रोगमोक्षणम् ॥

इति ।

त्वाष्ट्रमैत्रान्त्यपादस्थे शीतागौ मिथुनोदये ।
 दम्यस्य विषमैर्दण्डैर्विदध्याद्मनं बुधः ॥

इत्यादयो द्रष्टव्याः । एतानि क्षुद्रकर्माणि मन्दवारोदययोरपि कार्याणी-
 त्याह—

दिवसोदययोस्सौरेः गोदासादिपरिग्रहम् । कु-
 र्यात् सर्वं स्थिरं कर्म भौमवारोदितं च यत् ॥

शनेर्दिवसे उदये च गोदासमहिषखरोष्ट्रतिलायसादिस्वीकारं कु-
 र्यात् । तस्मिन् स्थिरं स्थावरं गृहनिवेशादि कर्म च कार्यं । ‘यच्च वादा-
 मिदान’ इत्यादिकं भौमवारोक्तं कर्म तच्च कुर्यात् । स्वांशगस्य तस्यो-
 दयेऽपि स्थिरं सर्वं कार्यं । तथा च गुरुः—

मन्दे च स्वांशगे लभे नीचारातिग्रहैर्विना ।
 नक्षत्रे च स्थिरे स्थाप्यं चिरकालं स्थिरं भवेत् ॥

इति । श्रीपतिः—

दशमैकादशे लभे वित्तकेन्द्रत्रिकोणगैः ।
 शुभैः पुण्यस्य कर्मोक्तं वार्जयित्वा चतुदर्शीम् ॥

गुरुः—

सिंहे सिंहांशके लम्ने गुरुभास्करदर्शने ।

सम्पदे होमदानादि कर्तव्यं च महात्मभिः ॥

श्रीपतिः—

पूर्णे चन्द्रे वेश्मगेऽर्केऽम्बरस्थे

जीवे लम्ने वाक्पतेर्वासरे च ।

श्रीमन्त्यायुष्याणि कर्माणि कुर्यात्

युक्तस्तस्मिन्नेव राजाभिषेकः ॥

इति । एवं धर्मक्रियायां क्षपितसकलदुरितस्य शुद्धचित्तस्य श्रेयोर्थिनः
पुरुषस्य ज्ञानग्रहणकालमाह—

शुभोदये पापदृगुज्झिते विधौ बुधार्कगे ज्ञान-
परिग्रहः शुभः । गुरौ नभस्स्थे विवलैश्शुभस्थितैः
शुभेतरैर्दीक्षणकर्म मोक्षदम् ॥ ४४ ॥

चन्द्रे बुधक्षेत्रे पापयुतिदृष्टिर्हाने स्थिते सति शुभोदये आत्मज्ञा-
नग्रहणं कार्यं तथा गुरौ दशमस्थे पापेष्वबलेषु नवमस्थेषु तत् ज्ञानज-
नकं प्रव्रज्याख्यं दीक्षणं मुमुक्षुभिर्ग्राह्यम् । अत्र श्रीपतिः—

शीतांशौ बुधराशिस्थे शुभेषूदयवर्तिषु ।

ज्ञानस्य ग्रहणं कार्यं हित्वा क्रूरग्रहोदयम् ॥

देवाचार्ये कर्मभावं प्रपन्ने

पापैर्धर्मस्थानगैः वीर्यहीनैः ।

योगे प्रव्रज्याह्वये सुस्थिरे च

कार्यास्तज्ज्ञैस्तत्र दोक्षा मुमुक्षोः ॥

इति । प्रव्रज्यायोगा जातकेऽभिहिताः—

सौरः शुभभागस्थः पश्यति चन्द्रं ग्रहांस्तथैवान्यान् ।

कुम्भांशेषु प्राप्तान् जनयति दीक्षान्वितं पुरुषम् ॥

जन्मेशोऽन्यैर्यद्यदृष्टोऽर्कपुत्रं

पश्यत्यार्किर्जन्मपं वा बलोनम् ।

दीक्षां प्राप्नोत्यार्किदृक्काणसंस्थे

भौमाकर्कशे सौरदृष्टे च चन्द्रे ॥

सुरगुरुशशिहोरास्वार्किदृष्टामु धर्मे

गुरुरथ नृपतीनां योगजस्तीर्थकृत् स्यात् ।

नवमभवनसंस्थे मन्दगेऽन्यैरदृष्टे

भवति नरपयोगे दीक्षितः पार्थिवेन्द्रः ।

‘एकस्थैश्चतुरादिभिर्बलयुतैर्जात’ ॥

इत्यादयः । अत्र जन्मस्थाने तत्काललग्नं ग्राह्यं । तथा च गुरुः—

श्रवणे मन्दवारस्थे शुभलग्ने यमे तिथौ

दीक्षा या दीयते वज्रिन् मुक्तिदा समयेष्वपि ।

जीवशुक्रार्किसूर्येषु एकांशे यदि लग्नगे

तदा राज्यादिसिद्धयर्थं जपहोमाद्यमारभेत् ॥

सौम्यवासवहस्तेषु चतुर्दश्यां च पर्वणि ।

कुजवारे हरौ लग्ने रक्षा कार्या नृणां बुधैः ॥

श्रीपतिः—

हिबुकेऽर्के गुरोर्लग्ने धर्मारम्भो रवेर्दिने ।

मङ्गल्यमभिचारश्च स्वस्थे सूर्ये गुरुदये ॥

अन्यत्र—

श्रुतिस्मृतिपुराणादिप्रोक्तानां सर्वकर्मणाम् ।

गुरुजलघ्नवर्गेषु प्रारम्भः तद्वले सति ॥
अथ रोगाणां अगदक्रियाकालं विवक्षुः रोगारम्भदिनवशात् साध्यासा-
ध्यतामभिधित्सन् सर्पदष्टस्य तावदसाध्यत्वमाह—

भुजङ्गभूतेशमखाविशाखाकृतान्तकार्शांनवनै-
र्ऋतेषु । छिद्रासु दर्शप्रतिपद्विषेषु न प्रायशः प्रा-
णिति सर्पदष्टः ॥ ४५ ॥

अश्लेषा, अर्द्रा, मखा, विशाखा, भरणी, कृत्तिका, मूलभेषु
छिद्रासु तिथिषु दर्शप्रतिपदोश्च नष्टचन्द्रयोस्तिथ्योः विषे—विषाख्ये
तारातिथ्यादियोगे । अथवा विषगुलिकस्तस्योदये । यद्वा—विषनाडीषु
विषभागेषु वा सर्पदष्टः प्रयशो न प्राणिति । न जीवतीत्यर्थः । केवलेषु
नक्षत्रादिषु कृच्छ्रेण जीवति । छिद्रादियुक्तेषु तेषु न जीवति । तारा-
तिथिविषाणां त्रयाणां योगे कृच्छ्रेणापि न जीवति । यदाह श्रीपतिः—

यः कृत्तिकामूलमधाविशाखा-

सार्पान्तकार्द्रासु भुजङ्गदष्टः ।

स वैनतेयेन सुरक्षितोऽपि

प्राप्नोति मृत्योः सदनं मनुष्यः ॥

तत् पापवारादियुक्तर्क्षेषु ज्ञेयम् । यस्मात् गुरुः—

द्विदैवत्यमखा श्लेषाभरण्यार्द्रासु नैर्ऋते ।

बहुलायां विषैर्दष्टो न प्राणिति कुवारतः ॥

इति । गारुडतन्त्रे —

चतुर्दशी चतुर्थी च षष्ठी द्वदश्यमाऽष्टमी ।

प्रतिपन्नवमी चैव दृष्टा दष्टस्य मृत्युदा ॥

इति । जयार्णवेऽपि—

यात्राविवाहमङ्गलसेवाराजैष्टदर्शनं सर्वम् ।
नाशयति गुलिकवेला दष्टं नष्टं कृतं समरे ॥

इति । कालदीपे विशेष उक्तः—

कृत्तिका भरणी स्वाती मूलपूर्वात्रयाश्विनी ।
विशाखाऽऽर्द्रा मखाऽऽश्लेषा चित्रा श्रवणरोहिणी ॥
तारास्ताः सर्पदष्टस्य दुष्टा मन्दकुजौ तथा ।
पञ्चम्यष्टम्यमा षष्ठी रिक्ता दष्टस्य निन्दिताः ॥
तस्याति निन्दिताः कृष्णपञ्चमी च चतुर्दशी ।
सन्ध्याचतुष्टयं दुष्टं दग्धयोगाश्च राशयः ॥

इति । विषनाड्यो नक्षत्रेषु प्रागुक्ताः । विषभागाश्च श्रीपतिनोक्ताः—

मेषादिभेषु क्रमशोऽष्टनन्द-
द्वाविंशतिश्चाकृतितत्त्वचन्द्राः ।
वेदत्रयोविंशधृतिर्नृपाश्च
मूर्च्छादिशोमृत्युकरास्तभागाः ॥

इति । असाध्यरोगारम्भकालमाह—

ज्येष्ठाममीरोगरौद्रपूर्वात्रयेषु नो जीवति जा-
तरोगः । छिद्रासमेतेषु सपापवारेष्वाग्नेयवस्वन्तक-
वारुणेषु ॥ ४६ ॥

ज्येष्ठास्वात्याश्लेषाऽऽर्द्रापूर्वात्रयेषु जातरोगो न जीवति । श्रीपतिः
स्वात्याऽऽश्लेषारौद्रपूर्वा शाक्रे
रोगोत्पत्तिर्जायते यस्य पुंसः ।

तद्वैषज्यव्यापृतो निम्प्रयत्नः

स्यात् दुग्धाब्धेर्लब्धजन्माऽपि वैद्यः ॥

इति । अपिच पापवारराहितेषु छिद्रातिथिभिश्चान्वितेषु कृत्तिकाधनिष्ठा-
भरणीवारुणेषु च जातरोगश्च न जीवति । तथा च वैद्यके—

उरगवरुणरुद्रा वासवेन्द्रत्रिपूर्वा

यमहुतवहताराः पापवारेण युक्ताः ।

तिथिषु नवमिषष्ठीद्वादशीभिश्चतुर्थी-

सहितमरणयोगा रोगिणामत्र मृत्युः ॥

इति । अत्र दुष्टतारातिथिवारणां त्रयाणामपि योगे रोगी न प्राणिति ।
तारातिथ्योस्तारावारयोर्द्वयोयोगे चरेण कृच्छ्रात् जीवति । केवलामु
तारासु कियद्विरहोभिरुल्लाघो भवितेति । नक्षत्राणां दिनसङ्ख्यामाह—

वैश्वे सौम्ये च मासाद्विभुभादिवसकृत्शूर्पश-
क्रेषु पक्षात् रोगी चित्राप्रचेतायमहरिषु सुखं वि-
न्दते रुद्रसंख्यात् । विंशादहो मघायां गुरुभगसु-
रसूधातृबुधयेषु भूभृत्सङ्ख्यान्मूलाश्वियुक्त हुतभु-
जि नवमान्मित्रपूष्णोस्तु कृच्छ्रात् ॥ ४७ ॥

वैश्वसौम्ययोर्नक्षत्रयोरुत्पन्नज्वरादिरोगो मासात्—मासं त्रिंशतं
दिनानि संक्लिश्य परतः सुखं प्राप्नोति । धनिष्ठाहस्तविशाखाश-
क्रेषु चतुर्षु पक्षात् मासार्धात् परं । चित्राशतभिषग्भरणीश्रवणेषु भेषु
रुद्रसङ्ख्यादेकादशसङ्ख्यात् दिनात् परतः । मघायां विंशादहो विंशति-
पूरणात् दिनाद्ध्वं । पुष्योत्तरफल्गुनीपुनर्वसरोहिणिविघ्नयभेषु भूभृ-
त्सङ्ख्यात्—सप्तमादिनात् । मूलाश्विनीकृत्तिकाम्बु नवमादिवसात् परस्तात्

सुखं लभते । मित्रपूषभगोः गेगी चिरं संक्लिश्य कृच्छ्रेण सुखमाप्नोति ।

अत्र गुरुः—

कदार्धितश्चिरं पौष्णे मैत्रे पापदिनैर्युते
 रिक्ताभिर्द्वादशीपष्ठयोः जीवेद्रोगी कथंचन ।
 सौम्ये वैश्वे शुभे वारे रिक्ताविष्टिविवर्जिते
 तिथौ रोगी परं मासात् जीवेदिह न संशयः ॥
 मघायां विंशतौ प्रोक्तो दिनात् जीवेत् शुभे दिने
 ज्येष्ठाविशाखाहस्तेषु रोगी मासार्धतः सुखी ।
 चित्रायां वैष्णवे याम्ये वारुणे सौम्यवारगे
 रोगी सैकादशार्हने सुखी स्याद्विवसादपि ॥
 मूलाह्वकृत्तिकापुष्यपुनर्वस्वः सुवारगाः
 यदि रोगी नवाहाद्वा सप्ताहाद्वा सुखी भवेत् ।
 रोहिण्युत्तरफलगुन्योराहिर्बुध्नये तथाऽऽमयी
 सप्ताहाद्वा नवाहाद्वा सुखी भवति वृत्रहन् ॥

श्रीपतिनापि धनिष्ठायां पक्षात् सुखमित्युक्तम् ‘पक्षाद्धस्ते वासवे सद्धि-
 दैव’ इति । मतद्वयमप्याश्रित्य अभिहितमाचार्येण ‘वसुभदिवसकृच्छ्रपूषशक्रेषु
 पक्षादिति’ । अनुक्तेषु स्वात्यार्द्राऽऽश्लेषापूर्वात्रयेषु चिरात् कृच्छ्रेण
 जीवतीत्यर्थः । अयमभिप्रायः—सर्वेषु भेषु क्रूरवारहोराशेच्छिद्रातिथि-
 विष्टिदुष्टयोगयोगिनीषूत्पन्ना रोगाश्चिरं प्रवाधन्ते । सौम्यदिनादियुक्तेषु
 प्रोक्तदिनानि स्वात्यादिषु सौम्यवारादिसंयुक्तेष्वपि चिरं प्रवाधन्तेतरा-
 मिति । नक्षत्रेषु दिनसङ्ख्या कचिदन्यथा ख्यायते । तथा च भरद्वाजः—

दशरात्रं धनिष्ठासु रोगो भवति देहिनाम् ।
 षडहं द्वादशाहं वा वारुणे भवति ज्वरः ॥
 तथा भाद्रपदे चैव पूर्वे हि मरणं ध्रुवम् ।

उत्तरे तु भवेन्मोक्षो दिवसैः हि चतुर्दशे ॥
 अष्टरात्रं चतुरात्रं रेवत्यां वर्तते ज्वरः ।
 अश्विन्यामपि षड्रात्रात् सुखं भवति हि ज्वरे ॥
 यमदैवे यमस्तिष्ठेन्नराणां पञ्चमेऽहनि ।
 कृतिकासु गृहीतस्य सप्तमे मृत्युमादिशेत् ॥
 ऊर्ध्वं यद्यतिवर्तेत त्रिपक्षे संशयो भवेत् ।
 रोहिण्यामष्टरात्रेण मुञ्चेदेकादशेऽहि वा ॥
 मृगे तु षडहे जीवेन्नवरात्रं तदा भवेत् ।
 आर्द्रायामुत्थितो व्याधिः दशरात्रेण शाम्यति ॥
 पुनर्वसूद्भवो व्याधिरष्टरात्रात् प्रशाम्यति ।
 तिष्ये त्रिरात्रं ज्वरितः सप्ताहाद्वा सुखी भवेत् ॥
 आश्लेषासु भवेन्मृत्युः दीर्घकालक्रमादपि ।
 मघासु द्वादशाहेन ज्ञेयो मृत्युर्न संशयः ॥
 ऊर्ध्वस्थयमरेखायां पुनरेव सुखी भवेत् ।
 पूर्वासु चोपदिष्टस्य दशाहं भवन्ति ज्वरः ॥
 उत्तरासु तथाऽष्टाहं नवरात्रमथापि वा ।
 एकविंशतिरात्रं वा ज्वरः सौम्ये विमुञ्चति ॥
 हस्ते च सप्तमे मोक्षंश्चित्रायामष्टमे सुखम् ।
 स्वातियोगे दशाहेन मुञ्चेत् पक्षत्रयादपि ॥
 विशाखासु भवेद्याधिरेकविंशेऽहि शाम्यति ।
 ज्वरस्तु दिवसानष्टावनूराधासु वर्तते ॥
 ज्येष्ठायामुत्थितो व्याधिर्दशाहेन प्रशाम्यति ।
 मूलेन चोपदिष्टस्य दशरात्रं भवेज्ज्वरः ॥
 अषाढास्वेव पूर्वासु दशमेऽहनि मुच्यते ।

उत्तराषाढजो व्याधिर्मासं क्लिश्येन्न संशयः ॥

श्रवणेनाष्टरात्रं तु क्लिश्यते ज्वरपीडितः ॥

इति । अपिच—

आधानजन्मानिधनप्रत्यगन्त्ये विपत्करे ।

नक्षत्रे व्याधिरुत्पन्नः क्लेशाय मरणाय वा ॥

इति । अत्र रोगोदयर्क्षं रोगिजन्मलघ्ने च ज्ञात्वा साध्यासाध्यत्वाविवेकः
कार्यं इत्याहुः । तथा च—

रोगोदयर्क्षं नरजन्मलघ्ने

ज्ञात्वा त्रयं चिन्त्यमनिष्टमिष्टम् ।

मीनजं (?) वस्विन्दुरवी तृतीये

व्याध्युद्गमे जीवति स त्रिरात्रम् ॥

तृतीयितारे रविणैकरात्रं

चन्द्रेऽर्कयुक्ते दशमस्थिते वा ।

जामित्रगौ भौमयमौ शशाङ्कात्

रोगोदये सप्तादिनं च जीवेत् ॥

सव्यापसव्ये चतुरश्रगेषु

पापेषु रोगी दशरात्रजीवी ।

सूर्यत्रिकोणोपगतः शशाङ्को

वामे तदा द्वादशरात्रजीवी ॥

चन्द्रे त्रिकोणे चतुरश्रगेऽर्के

दुर्व्याधिना जीवति स त्रिरात्रम् ॥

एवं साध्यासाध्यत्वे विचार्य रोगस्य साध्यत्वे निश्चिते सत्यौषधक्रियार-
म्भकालमाह—

रोद्रे भेषु चरेषु सोममृदुषु क्षिप्रेषु नन्दाह्वया-

रिक्तास्वारगुरुज्ञवासरकृतां वारोदयांशेषु च ।
 दद्यान्मेषकुळीरयोश्च सकलव्याधिक्षयायौषधं
 जीवेन प्रतिरोगमत्र कतिचिद्योगाः पृथक्कीर्तिताः ॥

उग्रैः पञ्चभिः । मृदुभिः चतुर्भिः भैः सहितेषु चरेषु पञ्चसु
 क्षिप्रेषु च त्रिषु भेषु रौद्रे अर्द्रायां चेत्यष्टादशसु भेषु नन्दाजयारिक्तासु
 नवसु तिथिषु कुजगुरुसौम्यसूर्याणां चतुर्णां वारेषु तेषामुदये तदंशेषु
 चशब्दात्तद्गोरासु च मेषकर्कटयो राशयोः चशब्दाच्चरराशिषु वा सर्वव्या-
 धिक्षयार्थं औषधं दद्यात् । रोगिण इति शेषः । तथा च गुरुः—

क्षिप्रोग्रचरनक्षत्रे मेषकर्कटकोदये

चरग्रहदिनस्वांशे मृदुवृक्षे(?) हरे तिथौ ।

नन्दायां चरलग्ने वा कण्टके शुभसंयुते

सर्वव्याधिविनाशाय विदध्यादौषधं बुधः ॥

अन्ये तु—

आराऽर्काजीवेन्दुतनूद्भवानां

वारांशके भेषजमामनन्ति ।

तिथिं सुपूर्णां च विहाय रिक्तां

विष्टिं चराष्ट्रान्त्यनृत्युग्मभेषु ॥

इति । अत्र रौद्रादिभेषु सर्वव्याधिक्षयाय औषधं दद्यादित्यविशेषेणोक्तं
 यद्यपि ; तथाप्यन्यत्र विशेषेण विभज्योक्तं दृष्टव्यम् ।

वारुणाद्राश्रविष्ठासु मेषकर्कटकोदये ।

आर्कशनिराहूणां दर्शने भेषजं शुभम् ॥

ज्योतिषार्णवे ---

उत्तमं विष्टिवर्ज्येषु चरेषु करणेषु च

चरोभयस्थिरर्क्षेषु श्रेष्ठं मध्यं च निन्दितम् ।

शुभाः केन्द्रत्रिणोस्थाः सुखारोग्यप्रदास्सदा

शुभा दुश्चित्कगाः पापाः सर्वेषां ये शुभावहाः ॥

इति । तत्र भैषज्यकर्माणि श्रीपतिः—

पौष्णद्वये चादितिभद्वये च हस्तत्रये च श्रवणत्रये च ।

मैत्रे च मूले च मृगे च शस्तं भैषज्यकर्म प्रवदन्ति सन्तः ॥

इति । शस्त्रदहनादिकर्माणि—

रौद्रैन्द्रोरगमूलभेषु दिनकृत्पुत्रारवारोदये

रिक्तायां क्रियकर्कितौलिवनितालम्ने विशुद्धेऽष्टमे ।

क्रूरेषु प्रबलेषु कर्तुरनुकूले चैव काले द्विजैः

कृत्वाऽऽशीर्विदधीत शस्त्रदहनक्षारादियोगं बुधः ॥

इति ॥

चन्द्रे चतुर्थे तपने च षष्ठे स व्याधिरष्टादशवासरान्तः ।

रवौ स्थिते चन्द्रमसस्त्रिकोणे व्याधिं गतो विशतिवासरान्तम् ।

होराष्टमन्दे कुजमन्ददृष्टे सूर्ये सरोगस्तु विपद्यते सः ॥

इति । उदयजन्मलग्नानां त्रयाणां समं यदा क्वचित् स्पष्टतल्लिङ्गोपलब्धे
रोगारम्भसमयो न सम्यगवधार्यते ; तदा प्रश्नकालविलम्बादिना साध्या-
साध्यात्वं वदेत् । तद्यथाऽऽह कृष्णः—

मन्दः पापसमेतो लग्नान्नवमे शुभैर्युतदृष्टः ।

रोगार्तस्य विदेशे वाऽष्टमगो मृत्युकर एव ॥

उरगैर्वेष्टितकाया द्रेक्काणा गृद्धकोलसदृशसुखाः ।

क्रूराः कुर्यर्मरणं निधने यदि चन्द्रमास्तिष्ठेत् ॥

पृष्ठोदये विलम्बे क्रूरा लग्नास्तहिबुकदशमगताः ।

निधने च शीतरश्मिः म्रियते रोगार्दितः पुरुषः ॥

षष्ठाष्टमयोः क्रूरास्तिष्ठत्यवलोकितोऽथवा रिपुणा ।

नोत्तिष्ठते सरोगी नीरुजति च भक्षणे ताभ्याम् ॥
 पश्यत्यशुभो यतमे राशौ स्थित्वा तु रोगसूत्रस्थम् ।
 ततमे दिवसे व्याधिः सौम्ये सुखमेधते रोगी ॥
 लग्नाच्चन्द्रो यतमे राशौ ततमे दिने भवेद्रोगः ।
 सौम्यः पश्येदिन्दुं यतमे ततमे सुखी दिवसे ॥
 परिपूर्णतनुश्चन्द्रो लग्नोपगतो निरीक्षितो गुरुणा ।
 गुरुशुक्रौ केन्द्रे वा रोगार्तस्तत्र सुखितस्स्यात् ॥

अन्यत्र —

शुभग्रहाः सौम्यनिरीक्षिताश्च विलग्नसप्ताष्टमपञ्चमस्थाः ।
 त्रिषड्दशायेषु निशाकरस्स्यात् शुभं वदेद्रोगनिपीडितानाम् ॥
 इति।अन्ये तु तत्कालप्रश्नलग्नयोश्चरस्थिरद्वन्द्वभावयोगपर्यायैर्यथायोगं जीव-
 रोगमृतिसंज्ञास्तिष्ठःस्तिस्रो वेला स्वसंज्ञासमानफलास्स्युरिति । यथाऽऽहुः—
 चरे चरस्थिरद्वन्द्वः स्थिरे द्वन्द्वचरास्थिराः ।
 द्वन्द्वे स्थिरोभयचरा जीवो रोगो मृतिःक्रमात् ॥
 इति । ज्वरादिव्याध्युदये व्याधिमोक्षदिनान्तं बल्याहरणमुक्तं
 वैद्यके—

यावद्व्याधिप्रमोक्षस्स्यात् तावत्तद्वलिमाहरेत् ।
 चतुष्पथे श्मशाने वा देवागारे गृहेऽथवा ॥
 देववृक्षप्रसिद्धे वा शुद्धे देशे जलाशये ।
 नक्षत्रोदयकाले वा सन्ध्याकाले बलिं हरेत् ॥
 बालानां स्थविराणां च सर्वेषामपि कारयेत् ।
 बलिभिस्सकलैरुक्तं ब्राह्मणानां च योजयेत् ॥

इति । यत्पुनः—

जन्मर्क्षस्यानुकूलर्क्षे दिवसे दोषसंयुते ।

विष्टियोगे व्यतीपाते कुर्याद्व्याधिप्रतिक्रियाम् ॥

रौद्रेन्दुसार्पजलभेषु .याम्ये

स्वातौ त्रिपूर्वासु सरोहिणीषु ।

तिप्याश्विपौष्णादितिहस्तमित्रे-

षूक्तं चरांशे शुभमौषधीनाम् ॥

इति । क्रूरवारतारांशलघ्नादिषूक्तं तच्छस्त्रदहनादिकर्मस्वेव ग्राह्यं न त्वौषधपानलेपादिषु । यस्माच्छ्रीपतिः—

घ्नन्शत्रुनिधनव्ययशुद्धौ सद्गहेषु नितरां बलवत्सु ।

आयुषश्च हितकारिणि योगे कीर्तिना नियतमौषधसेवा ॥

इति । सौम्यवारतारांशलघ्नादिष्वेव पानलेपनाद्यौषधसेवनं कार्यम् । न क्रूरवारादिषु । शस्त्रदहनादिकर्म सौम्यवारादिष्वप्यनिषिद्धम् । भैषज्ये जन्मत्रयं जन्मदिनं च निषिद्धम् । कैश्चिन्नन्दापि निषिध्यते ।

यथाऽऽहुः—

वर्ज्यं सनन्दमपि जन्मदिनत्रयं च ।

इति । अन्यैस्त्वदितिचित्रार्कवसुमूलानि त्यज्यन्ते । यथाऽऽहुः—

भैषज्येऽदितिचित्रार्कवसुमूलोत्तरास्त्यजेत् ।

इति । एवमयं सर्वरोगाणामविशेषणौषधक्रियाकाल उक्तः । अत्र भैषज्य-विधौ जीवेन प्रतिरोगं कतिचिद्योगाः पृथगुक्ताः । त इह ग्रन्थविस्तर-भीत्या दोषत्रयसामान्यप्रशमकराः केचिदेवाभिधीयन्त इत्यर्थः । तान् योगानाह—

वातं घ्नन्ति सजीववासरजयाविष्ट्याश्विनेया-
ग्रयः पित्तं वाय्वजपूषणश्चरतनोः शौक्रेऽहि भद्रा-
न्विताः । वातश्लेष्महरा यमाग्निगिरिशाः कौजेऽहि

लग्ने चरे रिक्ताभूर्पयमेशमित्रर्दिनकृद्वारास्त्रिदोष-
च्छिदः ॥ ४९ ॥

जीववारेण जयातिथ्या च सहिता श्रवणाश्विनीकृत्तिका वातं
घ्नन्ति—वातरोगान्नाशयन्ति । शुक्रवारे भद्रातिथ्यान्विता स्वातीरोहि-
णीरेवत्यः पित्तं—पित्तरोगान्नाशयन्ति । कुजवारे भरणीकृत्तिकार्द्रा वात-
शगान् श्लेष्मरोगांश्च हरन्ति । सूर्यवारे रिक्तातिथियुक्ता विशाखाभर-
ण्यार्द्रानूराधास्त्रिदोषभवं सन्निपातं छिन्दन्ति नाशयन्ति । सर्वत्र
चरलग्नमिष्टम् । अत्र गुरुः—

वारुणे चाग्निदैवत्ये तुरगे गुरुवारगे
जयायां वातशान्त्यर्थं भेषयन्त्रैव पौत्तिके ।
प्राजापत्ये च पौष्णे च स्वातौ शुक्रदिने युते
भद्रायां चरलग्ने च भेषयेत् पित्तशान्तये ॥
याम्याभ्येक्षरौद्रेषु भौमवारे चरोदये
वातश्लेष्मविनाशाय भेषयन्त्रैव पौत्तिके ।
रौद्रमैत्रविशाखासु भरण्यां सूर्यवारगे
रिक्तायां भेषयेद्विद्वान् सन्निपातक्षयाय तु ॥

इति । अत्र द्वितीयपादे योगान्तरं सूचितम् । अत्र गुरुः—

स्वातिनैर्ऋतपुष्येषु गुरुवारे चरोदये ।
नन्दायां पित्तशान्त्यर्थं भेषयेन्मतिमान् भिषक् ॥

इति । तेन प्रतिरोगं च विशेषेण केचिद्योगा उक्ताः । ते यथा—

दर्शं चातिशुभं विद्यात् गुह्यरोगप्रशान्तये ।
क्षिप्रोग्रचरनक्षत्रे भेषकर्कटकोदये ॥
चरग्रहदिनस्यांशे चित्रास्वातिहरौ तिथौ ।

नन्दायां चरलम्ने च कण्टके शुभसंयुते ॥
 गुह्यव्याधिविनाशाय विदध्यादौषधं बुधः ।
 शुभवारतिथिष्वेषु शुभांशे कर्कटे विधौ ॥
 रौद्रमैत्रश्रविष्ठासु चाश्विन्यां पुष्यचित्रयोः ।
 औषधं व्याधिविनाशाय दद्यात्क्रियकुळीरयोः ॥
 क्षिप्रोग्रचरभे वारे सौम्ये रिक्तासु मेहिनाम् ।
 अष्टादशमु मेहेषु कर्तव्या औषधक्रियाः ॥
 पापवारे सतिष्यांशे पापराश्युदये नृणाम् ।
 पापदृष्टे क्रियां कुर्यात् औषधं कण्ठरोगिणाम् ॥
 साधारणाख्यनक्षत्रे चक्रग्रहानिरीक्षिते ।
 वज्र्ये तिथौ कुर्यादौषधं राजयक्ष्मणः ॥
 उग्रयोगेषु कर्तव्यं भैषज्यं दीर्घरोगिणाम् ।
 श्वित्रे क्षये च गुल्मे च अपस्मारे ज्वरेषु च ॥
 शूलविद्धे चरे लम्ने भैषज्यं शुभमिच्छताम् ।

अनुक्तकालानां भैषज्याक्रियाकालश्च अन्यत्रोक्तः—

नक्षत्रेषु मुहूर्तेषु राशिष्वंशेषु भुक्तिषु ।
 अधोमुखेषु सर्वेषु रिपुर्नाचस्थितेषु च ॥
 ग्रहेषु ग्रहणान्ते च सायाहे दिवसक्षये ।
 विनाशांशे विनाशर्क्षे लम्नाष्टमादिनेषु च ॥
 विपत्प्रत्यरपातेषु गुल्लिके क्ष्वेळकेऽपि वा ।
 अष्टपर्वाणि रिक्तायां विष्टयां च क्रूरवासरे ॥
 भैषज्यं परिशेषेण पापयोगे शुभायुषाम् ।
 उभये तत्समं प्रोक्तं चरे चन्द्रदिवाकरौ ॥
 यदि युक्ता स्थिरे नैव कर्तव्यं व्याधिशान्तिदम् ।

क्षिप्रर्क्षे च चरर्क्षे च चरराशौ चरांशके ॥
 सर्वव्याधिप्रशान्त्यर्थं भेषयेत् स्नापयेच्च तत् ।
 अपचारादिरोगाणां एवं शान्तिप्रदाः . . . ॥
 कर्तव्याः प्रोक्तकालेषु मन्त्रौषधविशारदैः ।
 विपरीताख्यविष्ट्यां च कर्तव्यं शुभमिच्छता ॥
 औषधं नासिकायां वा अमृताख्ये विषात्परे ।

इति । अनुक्तपौष्टिकरसायनादीनां कालमाह—

लग्ने शुभग्रहगृहे शुभयुक्तदृष्टे क्षिप्रे स्थिरे मृ-
 दुनि भे शुभवासरे च । योगे शुभे शुभतिथौ
 शुभतारकायां पुष्ट्यर्थमौषधमुशान्ति रसायनाद्यम् ॥

क्षिप्रे स्थिरे मृदुनि वा शुभाख्ये नक्षत्रे शुभवारे शुभग्रहराशौ
 शुभयुक्तेक्षिते पुष्ट्यर्थं पौष्टिकं रसायनाद्यमौषधं; तथा शुभनक्षत्रे शुभ-
 तिथौ शुभयोगे वा पौष्टिकं रसायनाद्यमौषधं ग्राह्यमिति वदन्ति । अयमेक
 एव योगो वा ; एवं योगद्वयं वा । यथाऽऽह गुरुः—

शुभर्क्षे शुभवारे तु शुभनक्षत्रसंयुते ।
 आरोगणस्तु पुष्ट्यर्थं कुर्यादौषधमुत्तमम् ॥
 शुभयोगेषु वारेषु शुभतिथ्यंशके शुभे ।
 शुभग्रहोदयेक्षायां रसायनमुदाहरेत् ॥

इति । योगान्तरमुक्तम्—

बुधजीवसिताकर्षाख्या यदैकांशसमायुताः ।
 लग्ने यदि तदा नृणां सोऽयं रसभुजां शुभः ॥

अन्येऽपि योगाः—

शुभग्रहयुते लग्ने पष्ठे च शुभसंयुते ।

चन्द्रे शुभक्रियायुक्ते कुर्यादौषधमृद्धिदम् ॥

इति । अन्येऽपि—

मन्दांशे मन्दलग्ने च मन्ददृष्टियुतोदये ।

मन्दराशौ क्रियां कुर्यात् शिरसः काष्ण्यसिद्धये ॥

किंच—

विशल्यकरणादीनां मृतसंजीवनादिषु ।

सन्धानकरणादीनामपि कालाद्विना फलम् ॥

इति । रोगान्तस्नानकालमाह—

स्वातीदस्रविधूतराम्बुजभुवो रोगावसानोचित-
स्नाने भार्गवजीवशीतमहसां वाराः प्रशस्ताः
स्मृताः । भूतेशनिदधेन्द्रयाम्यफणभृत्पूर्वा मखा-
कृत्तिकाः पापानां दिवसाश्च निन्दिततमाः ताराः
परा मध्यमाः ॥ ५१ ॥

स्वात्यादयः सप्त ताराः शुक्रगुरुचन्द्राणां वाराश्च रोगिणां
रोगावसानोचिते आरोग्यारूपे स्नाने श्रेष्ठाः । आर्द्राज्येष्ठाभरण्याश्लेषात्रि-
पूर्वामघाकृत्तिकाः नव ताराः पापवाराश्च पापानां दिवसाश्च—निन्दिततमा
पौनःपुन्येन रोगप्रदा इति निन्दिततमा उक्ताः । परास्तदन्यास्तिष्यादिः
तिहस्तचित्राशूर्पमैत्रमूलश्रवणवसुवारुणरेवत्यो मध्यमा एकादश ताराः
भवन्ति । अत्र गुरुः—

त्रिषुत्तरेद रोहिण्यां वायुसोमाश्विभेषु च ।

गुरुशुक्रेन्दुवारेषु स्नातो निरोगतामियात् ॥

शिवशक्राहियाम्याग्निमघापूर्वात्रयं तथा ।

पापवारयुता योगाः पौनःपुन्यसमाह्वयाः ॥

एषु भैषज्यरोगान्तस्नानशावत्रतान्यपि ।
 पुनर्गृह्णाति तस्मात्ता वर्जयेत्तेषु शोभनम् ॥
 इति । पारास्तारा एकादश अदितितिप्यहस्तचित्राशूर्पमैत्रमूलश्रोणा-
 धानिष्ठा वारुणरेवत्यः स्नाने मध्यमाः । अन्ये त्वाहुः—
 विशाखा रुद्रतारा च वाजिभात्रितयं गुरुः ।
 चान्द्रं कालद्वये पूर्वफल्गुनी शुभदा सदा ॥
 रिक्ताष्टमीषु दर्शाख्ये नीरोगी स्नानमाचरेत् ।
 बुधजीवकुजानां तु वारवर्गोदयाः शुभाः ॥
 पुनर्वसुपौष्णभे वर्ज्ये इति श्रीपतिः । तथा चोक्तम्—
 इन्दोर्वारे भार्गवे च ध्रुवेषु
 सार्पादित्यस्वातियुक्तेषु भेषु ।
 पित्र्ये चान्त्ये चैव कुर्यात् कदाचित्
 नैव स्नानं रोगनिर्मुक्तजन्तुः ॥
 इति । अनेन स्वात्युत्तरारोहिण्यो रोगान्तस्नाने प्रशस्तत्वेनात्रोक्ताः ; ता
 एव तत्र वर्ज्याः श्रीपतिनोक्ताः इति विरोध आपतति, विषयभेदान्नेति
 ब्रूमः । तथा ह्यत्र स्वात्यादयः सर्वरोगान्तस्नानेषु शस्ताः इत्याविशेषे-
 णोक्ताः । श्रीपतिना तु कुष्ठमसूरिकात्रणापस्मारादिरोगान्तस्नाने वर्ज-
 नीयत्वेन विशेषेणोक्ता इति विभागः कार्यः । तत्र क्रूरर्क्षादीनां ग्राह्य-
 त्वश्रवणात् । तथाचाहुः—
 क्रूराष्टर्क्षक्रूरवरांशलम्ने
 रिक्ता षष्ठी द्वादशी वा यदि स्यात् ।
 रोगार्णादिध्वंसनं तत्र कार्यं
 रोगान्मुक्तः स्नानमप्यत्र कुर्यात् ॥
 इति । नन्वेतदपि कुष्ठादिरोगान्तस्नानविषयं न भवितुमर्हति । रोगा-

न्मुक्त इत्याविशेषाभिधानात् इति चेत्, न, कुतः; ज्ञापकादिति ब्रूमः ।
किं तत् “ उग्रयोगेषु कर्तव्यं भैषज्यं दीर्घरोगिणाम् ” इति गुरुवचनम् ।
योगान्तराण्याह- —

नक्षत्रे तु चरे विधौ चरगृहे स्वांशे चरांशो-
दये रिक्तायां रविपुत्रजीवदिनयोर्गद्वा व्यतीपातके ।
सर्वव्याधिशमाय सद्भिरुदिता स्नानौषधप्रक्रिया
कालोऽसावृणमोचने च सदृशः शावव्रतोत्सर्जने॥

चरांशके नक्षत्रे स्वांशे चरांशे वा चन्द्रे स्थिते चरराशौ चरांशे
च लग्ने सत्येको योगः । अत्र तुशब्दोऽनुक्तसमुच्चयार्थः । तेन क्षिप्राख्ये
च नक्षत्रे चरराशौ लग्ने चरांशे अन्यो योगः । मन्दजीवदिवसे तदंशे च
रिक्तायां च तिथौ तयोः स्वांशोदये अपरो योगः । स्वांशे नक्षत्र इत्यनु-
वर्तते । तेन मन्दजीवांशकनक्षत्रे चेति शेषः । यद्वा व्यतीपातके योगे-
अपरो योगः । एषु योगेषु सर्वव्याधिशान्तये स्नानौषधप्रक्रियां स्नानं
रोगान्तस्नानं आरोग्याख्यं औषधं पानलेपाशनादि तयोः प्रक्रिया आरम्भः
सा उदिता गुर्वादिभिरित्यर्थः । गुरुः—

चरमे स्वांशके चन्द्रे चरराश्यंशकोदये ।

भैषज्यं रोगनाशाय कारयेत् स्नापयेच्च तम् ॥

क्षिप्रर्क्षे च चरर्क्षे च चरराशौ चरांशके ।

सर्वव्याधिप्रशान्त्यर्थं भेषयेत् स्नापयेच्च तम् ॥

गुर्वाक्ष्यंशकनक्षत्रे गुरोर्वार्किदिने यदि ।

तद्दिनेशांशके रिक्ते रोगिणां च प्रतिक्रियम् ॥

अपि च—

गुरुदयांशवाराणां रिक्तायोगोऽर्कजस्थ वा ।

कुर्यात्तद्दृष्टिलभे वा रोगर्णादिप्रतिक्रियाम् ॥
व्यतीपाते क्षये दाने व्यतीपाते च रोगिणाम् ।
स्नानभैषज्ययोर्योगः शत्रूणां च प्रतिक्रिया ॥

मन्दवारादि मध्यमित्यन्ये—

मध्यमं मन्दवारादि स्नाने स्यान्मुक्तरोगिणाम् ।
चन्द्रभार्गवयोर्वारवर्गलभ्यांश्च वर्जयेत् ॥

इति । स्थिरराशयो वर्ज्याः । यत उक्तम्—
पौनः पुन्यं स्थिरे स्वर्क्षवारांशकादिषु ।

अपि च—

चरस्थिरोभयक्षेषु श्रेष्ठं मध्यं तथाऽधमम् ।

शुभानां(?) श्रेष्ठा इति केचित् प्रचक्षते

इति । असौ—रोगप्रतिक्रियायामुक्तः कालः ऋण मोचने ऋणमोक्षे
शाव्रतोत्सर्जने च सदृशः । गुरुः—

ये योगाश्चोदिता रोगे ते शाव्रतसर्जने ।

ऋणादिशान्तये चैव चोदिता मुनिसत्तमैः ॥

इति । अत्रान्ये चेदृशा योगा गुर्वादिभिरुक्ताः । यथा—

वारुणार्द्राश्रविष्ठासु क्रिया कर्क्युदये यदि ॥

आराक्यर्काहिसंदृष्टे रोगर्णादिप्रतिक्रिया ।

यदैकांशे विलम्बस्थौ मन्दकेतू कुजध्वजौ ॥

रोगर्णादिविनाशाय योगयुग्मे प्रतिक्रिया ।

एकाङ्गगेषु चन्द्रार्ककुजज्ञेषु प्रतिक्रिया ॥

चन्द्रेमन्दांशगे लभे तुङ्गमित्रस्वभान् विना ।

ऋणरोगादिनाशाय कुर्यादत्र प्रतिक्रियाम् ॥

केतौ भौमांशगे लभे मुखपुच्छविवर्जिते ।

शत्रुनाशनयोगोऽयमृणरोगविनाशनः ॥
 भौमे मन्दांशगे लग्ने तुङ्गमित्रस्वभैर्विना ।
 विषनाडी समायोगे कुर्याच्छत्रुविनाशनम् ॥

विधिरले—

मैत्रदक्षांशगे चन्द्रे लग्ने मैत्रमुहूर्तगे ।
 अल्पदानादृणं नश्येच्छत्रुयोगोऽतिमित्रदः ॥
 भौमसूर्यार्किवारेषु सरित्ते गुळिकोदये ।
 किञ्चित् दद्यात् ऋणं नष्टं शत्रुनाशं तदा स्मरेत् ॥
 इन्द्रारबुधजीवानां एकांशस्थं यदोदयम् ।
 तदा रिपुबले कुर्यात् मरणाद्यं विचक्षणः ॥

इति ।

शुभांशकगते चन्द्रे शुभर्क्षे शुभवीक्षिते ।
 भवारिभ्रातृगे पापे स्वामिदर्शनमुत्तमम् ॥
 दशायगेऽथवा पापे शुभे लग्नेऽर्थगेऽपि वा ।
 चन्द्रे वा रन्ध्रगे योगे स्वामिदर्शनमुत्तमम् ॥

स्थिरादिभेषु कृत्यान्याह—

कार्यं स्थिरे स्थिराख्यं क्षिप्रे क्षिप्रं चरे चरं
 कुर्यात् । मृदुनि मृदून्यत्युग्राण्युग्रे तीक्ष्णे च दारु-
 (मार)णादीनि ॥ ५३ ॥

स्थिरे नक्षत्रगणे स्वात्युत्तरारोहिणीषु स्थिराख्यं कर्म पुरग्रामगृहा-
 रम्भप्रवेशविवाहपट्टबन्धक्षेत्रोद्यानवापादि कार्यं स्यात् । पुष्ये भगणे पुष्या-
 श्विहस्ताभिजित्सु क्षिप्रं कर्म विद्यागजाश्वशिक्षाक्रयविक्रयदूतलेख्यादि
 कुर्यात् । चरे भगणे श्रवणत्रयस्वात्यादित्येषु चरं कर्म यात्राशिल्पसेवा-
 वाणिज्यनौशकटारोहादि सर्वं चलात्मकं कुर्यात् । मृदुनि भगणे मैत्र-

चित्रासौम्यपौष्णेषु मृदुकर्म चौळोपनयनवस्त्रभूषणशान्तिकपौष्टिकमङ्ग-
लगृहप्रवेशादि कुर्यात् । उग्रे भगणे त्रिपूर्वामघायाम्येषूग्राणि कर्माणि
दहनबन्धनमारणविषदानसङ्ग्रामदासीदासादीनामधिकारादीनि कुर्यात् ।
तीक्ष्णे भगणे ज्येष्ठामूलाऽऽर्द्राऽऽश्लेषासु दारुणादीनि मायामन्त्रयन्त्रास्त्र-
शिक्षापरदारगमनचौर्यसाहसादीनि क्रूरकर्माणि कुर्यात् । चशब्दात् ती-
क्ष्णयोरपि कृत्तिकाविशाखयोरपि साधारणं कर्म हेमरूप्यताम्रत्रपुसीस-
लोहकांस्यचुल्लीभाण्डकुण्डादीनि कर्माणि कुर्यात् इत्युक्तं भवति ।
एतत् प्रागेव संज्ञाध्याये प्रपञ्चितमाचार्येण । तत्र भानां संज्ञामा-
त्रकथनात् अत्र तत्संज्ञाऽनुगुणं कर्म तेषु कुर्यादित्युक्तं ; न पौन-
रुक्त्यप्रसङ्गः । अथवा स्थिरे वर्गे तिथिवारग्रहराश्यंशादौ स्थिर-
कार्याणि कुर्यात् । क्षिप्रे वर्गे क्षिप्रकार्यामित्यादि नेयम् । तिथिवारग्र-
हादीनां स्थिरादिसंज्ञा संज्ञाध्याये मया प्रदर्शिता । अन्तरङ्गबहिरङ्गन-
क्षत्रकृत्यान्याह—

**यदात्मनीनं शुभमन्तरङ्गे तद्वे विदध्यादशुभं तु
बाह्ये । सप्रेतकायं च पराभिचारविद्वेषणोत्सादन-
पूर्वकं यत् ॥ ५४ ॥**

यत्कार्यमात्मनीनं—आत्मने हितं—शुभं—पौष्टिकं शान्तिकं मङ्गल्यं
च तदन्तरङ्गबहिरङ्गनक्षत्रे कुर्यात् । तच्छुभफलमात्मन एव स्यात्, यत्पुनः
पराभिचारविद्वेषणोच्चाटनस्तम्भनमोहनादिकं; प्रेतकार्येण—परेतानां दाह-
संचयैकोद्दिष्टश्राद्धादीनां सपिण्डीकरणश्राद्धान्तेन संस्काररूपेण कर्मणा
सहितं शुभं—रोगर्णादिप्रतिक्रियारूपं कर्म तद्बहिरङ्गनक्षत्रे कुर्यात् ।
तत्फलं परस्य भवति नात्मनः । रोगर्णयोःप्रतिक्रिययोः स्वस्य तच्छान्तिरेव
स्यात् ।

अथ श्राद्धकालमाह—

श्राद्धेष्विन्दुमुकुन्दतिष्यवसवः पूर्वात्रयं वारुणं
चित्रामित्रयमाश्विमारुतमघाहस्ताः प्रशस्ताः स्मृ-
ताः । मन्देन्द्रोर्दिवसौ शुभावशुभदौ भौमस्य ते
मध्यमाः शेषाणां भृगुनन्दनोदयदिनक्षेत्रांशकादी-
स्त्यजेत ॥ ५५ ॥

श्राद्धेषु पैतृकेषु भृगशीर्षादिपञ्चदश ताराः शस्ताः । तथाच
गुरुः—

हस्तश्चित्राश्रविष्ठा च स्वाती मैत्राश्वियाम्यभाः

सौम्यवैष्णवातिष्याश्च ॥

एतान्येव पूर्वात्रययाम्यवार्जितानि एकादश भानि प्रेतश्राद्धेषु ग्राह्याणि ।

तथाच वसिष्ठः—

हस्तश्चित्राश्रविष्ठे च स्वाती श्रवणमाश्विनः

मघा मैत्रं च पुष्यश्च वारुणं सोमदैवतम् ।

एकादशैते कथिताः प्रशस्ताः प्रेतकर्मणि

सुखाय सम्भवन्त्येते नराणां योगसम्पदा ॥

इति । अन्ये तु श्राद्धेष्वेकतारानक्षत्राण्याहुः—

एकतरासु नक्षत्रे त्रिपूर्वासु च केचन ।

इच्छन्ति मुनयः श्राद्धं नान्यतारासु शोभनम् ॥

इति । पैतृके प्रेतके च श्राद्धे शनिसोमयोर्वारौ शस्तौ । भौमशुक्रयो-
र्वर्ज्यौ । शेषाणां सूर्यजीवबुधानां वारा मध्यमाः । अत्र गुरुः—

मन्देन्दुदिवसौ श्रेष्ठौ सूर्यवारस्तु मध्यमः ।

अधमो भौमवारस्स्यात् न श्राद्धं निशि भोजनम् ॥

शुक्रस्योदयवारराशिनवांशककालहोराद्यास्त्याज्याः । तथाचाऽऽहुः—

शुक्रवारोऽपि वर्ज्यः स्यादस्य(?) ऋक्षग्रहेक्षणाः ।

कालहोरांशकादींश्च शावे शुक्रस्य वर्जयेत् ॥

इति । अत्र शुक्रवारस्यैव विशेषतो वर्ज्यत्वकथनात् पारिशेष्येण गुरु-
ज्ञवारौ मध्यावित्युक्तमाचार्येण ।

नन्वत्र 'शावे शुक्रस्य वर्जयेदिति' शुक्रवारस्य प्रेतकार्येष्वेव
वर्ज्यत्वं न पैतृके इति ; नैतदाभिमतं, शुक्रवारस्य पिण्डदानमात्रे निषे-
धदर्शनात् —

नन्दायां भार्गवदिने चतुर्दश्यां त्रिजन्मसु ।

पिण्डदानं न कर्तव्यं कुलक्षयकरं हि तत् ॥

इति । अपि च —

सर्वथा सर्वकार्येषु भार्गवोऽस्मिन् क्रियाविधौ ।

गर्हितः पूजितः सौरिः ग्रहाणां तु विशेषतः ॥

इति । शुक्ले तदनन्तरं—

शुक्लाष्टम्याः परं तेषां निशाख्या बहुलाष्टमी ।

इति । अथ श्राद्धकालयोगा मुनिभिरुक्ताः केचनोपदिश्यन्ते—

नभस्यमासे संप्राप्ते कृष्णपक्षे समागते ।

तत्र श्राद्धं प्रकुर्वति सकृत् द्वादशवार्षिकम् ॥

विशिष्टदिवसे कर्तुंश्चन्द्रताराबलान्विते ।

नन्दाख्यास्तिथयो निन्द्या भूतायां शस्त्रघातिनाम् ॥

द्वितीया मध्यमा ज्ञेया तृतीया भरणीयुता ।

पूज्या यदि चतुर्थी वा श्रीप्रदा पितृकर्मणि ॥

आनन्दयोगं पञ्चम्यां पादक्षस्थे निशाकरे ।

भोजयेद्यः पितृस्तत्र पुत्रपौत्रघनं लभेत् ॥

यशस्करी सप्तमी स्यादष्टमी भोगदायिनी ।
 श्राद्धकर्तुश्च नवमी सर्वकामफलप्रदा ॥
 कन्याकुम्भगते सूर्ये कृष्णपक्षे विधीयते ।
 पञ्चम्याः परतः सर्वा वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ॥

इति ।

कन्यागते रवौ पुष्ये नक्षत्रे तिथिभिर्युते ।
 दशम्याद्यैस्त्रिभिः पापवारैर्योगः पित्रुत्सवः ॥
 कन्यायां भास्करे मासि नभस्येऽस्य त्रयोदशी ।
 पितृभेन युता चेत्तत् पितृणां दत्तमक्षयम् ॥
 पित्र्ये विधौ त्रयोदश्यामर्के हस्तगते तदा ।
 योगोऽयं कुञ्जरच्छाया पितृणां श्राद्धदोऽनृणः ॥
 असिते प्रोष्ठपान्मासि पक्षे चित्रादि भत्रयम् ।
 द्वादश्यां वा त्रयोदश्यां सा छाया कुञ्जराह्वया ॥
 नभस्यकृष्णपक्षे तु द्वादश्यां पितृभं यदि ।
 सार्पं वाऽथ दशम्यां तु पितृणां दत्तमक्षयम् ॥
 माघे मास्यसिते पक्षे द्वादशी वा त्रयोदशी ।
 वैश्रादिभत्रयैर्युक्ता सा छाया कुञ्जराह्वया ॥
 भानौ कुम्भगते माघे मासि कृष्णचतुर्थ्यपि ।
 हस्तादितिभसंयुक्ता पितृणां दत्तमक्षयम् ॥
 नभस्यासितपक्षस्य द्वितीया यदि याम्यमे ।
 तृतीया चार्किवारेण सहिता पितृतृप्तिदा ॥
 उपरागे यदाऽर्केन्द्रोः तदा छाया गजाह्वया ।
 सप्तमी कृष्णपक्षस्य सूर्यवारसमान्विता ॥
 अमावास्येन्दुवारेण चतुर्दश्यारवारगा ।

खरच्छायेति विज्ञेया पितृणां तृप्तिदा सदा ॥

कृष्णपक्षे तु माघस्य मैत्राद्यत्रयभेषु च ।

तिथयः सप्तमीपूर्वाः पितृणां तृप्तिदाः सदा ॥

एषु ज्येष्ठाष्टमीमुख्या तिसृष्वप्यष्टकासु च ।

नवम्या सहिता ज्येष्ठा विशेषात् पितृतृप्तिदा ॥

माघे नभसि यन्मासिमासि तद्भास्करे युते ।

कुम्भ पाथोनराशौ च क्रमात् समगते वदेत् ॥

इति । इदमत्राभिहितं — पैतृकेषु भृगोर्वारक्षोदया वर्ज्या एव । प्रेतका-
र्येषु कालहोरांशकद्रेक्काणाश्च वर्ज्यन्ते । अंशकादयश्चन्द्रेणाधिष्ठिताः ।
यथाऽऽह वसिष्ठः —

द्रेक्काणांशकहोरासु शुक्रस्य रजनीकरः ।

यदि तिष्ठति नेच्छन्ति प्रेतकर्म विचक्षणाः ॥

इति । अपि च—

नक्षत्राण्यशुभान्याहुः आस्थितानि शुभग्रहैः ।

वर्जयेत्तु विशेषेण शुक्रेणाध्युषितं तु भम् ॥

इति ।

अंशकेक्षणहोरास्तु शुभानां परिवर्जयेत् ।

पापदृग्युतवर्गाद्याः शस्ताः । गुरुः—

स्थिरक्षेत्रे न शस्ता स्त्युरुभया मध्यमास्तथा ।

चरास्तथाऽतिशस्तास्त्युश्चरेष्वपि च पैतृके ॥

राशयश्शुभदास्सर्वे पापदृष्टयुता अपि ।

भृगोरिति तुला नेष्टाः कैश्चिच्छेषास्तु शोभनाः ॥

इति । गार्ग्यः—

मुहूर्ताश्च समाख्याता नक्षत्रसदृशा गुणैः ।

यथा तिथिस्समाख्याता करणाश्च शुभाशुभाः ॥

इति । अथ तिथीराह—

षष्ठ्यादयोऽनभिहिताः दश शुक्लपक्षे मध्याः
स्मृताः प्रमुखतो बहुलस्य पञ्च । श्राद्धे पराः
परिपठन्ति तिथीः प्रशस्ताः नन्दां सदा परिहरन्ति
चतुर्दशीं च ॥ ५६ ॥

श्राद्धे शुक्लषष्ठ्यादयो राकान्ता दश त्रितयो नेष्टाः । ततः कृष्णप्र-
तिपदादयः पञ्च तिथयो मध्यमाः स्युः । अन्यास्तिथयः कृष्णषष्ठ्यादि-
शुक्लपञ्चम्यन्ताः पञ्चदश प्रशस्ता भवन्ति । तासु शुक्लां कृष्णां च नन्दां
चतुर्दशीं च श्राद्धे त्यजन्ति । शस्त्रादिहतानां चतुर्दश्यां कुर्वन्ति ।
तथा च स्मृतिः—

वृक्षारोहणलोहाद्यैः विद्युत्ज्वालाविषादिभिः ।

नखिदंष्ट्रिविपन्ना ये तेषां शस्ता चतुर्दशीं ॥

‘अपरपक्ष ऊर्ध्वं चतुर्थ्याः पितृभ्यो दद्यादिति’ वसिष्ठस्मृतिः । अन्ये
त्वात्ययिके पौर्णमासीं विहाय सर्वास्तिथयो ग्राह्या इत्याहुः । तथा च
गार्ग्यः—

पौर्णमास्यां न कुर्वीत शेषं कुर्याद्विचक्षणः ।

इति । गुरुश्च—

निशार्धं पौर्णमासी स्यात् मध्याह्नः स्यात् कुहूर्विधौ ।

कुतपारुख्यः शुभः कालो नृणां प्रोक्तो दिनार्धजः ॥

अमावास्यातियामा स्यात् कुतपः पैतृकस्तयोः ।

योगोऽतिशोभनो नृणां श्राद्धकर्मणि पैतृके ॥

इति । य अपिच । कृष्णाष्टम्याः परं पित्रयमहः । महालयश्राद्धं तु सूर्ये
कन्यास्थ एव कार्यमिति केचित् । तथाच गुरुः—

कन्यां गतो यदाऽऽदित्यः पितृभिः सह गच्छति ।

शून्यं प्रेतपुरं तावत् यावत्तु तुलदर्शनम् ॥
 तुलायां तु रवौ प्राप्ते निराशाः पितरो गताः ।
 ततः स्वभवनं यन्ति शापं दत्त्वा सुदारुणम् ॥
 इति । अन्ये च श्राद्धकालाः स्मृतिषूक्ताः यथा—
 अमावास्याष्टका वृद्धिः कृष्णपक्षोऽयनद्वयम्
 द्रव्यब्राह्मणसम्पत्तिर्विषुवत्सूर्यसङ्क्रमः ।
 व्यतीपातो गजच्छया ग्रहणं चन्द्रसूर्योः
 श्राद्धं प्रतिरुचिश्चैव श्राद्धकालाः प्रतिकीर्तिताः ॥
 तत्र 'हेमन्तशिशिरयोश्चतुर्णामपरपक्षाणामष्टमीष्वष्टका' इति शौ-
 नकः । मन्वादयो युगादयश्च श्राद्धकालाः । अथ यदुक्तं स्मृतिषु—
 नन्दायां भार्गवदिने कृत्तिकासु मघासु च
 भरण्यां भानुवारे च गजच्छायाह्वये तथा ।
 अयनद्वितये चैव युगादिषु चतुर्वर्षि
 पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥
 इति । तत्तु(?) पितृवक्त्रादियोगेदं श्राद्धं कार्यम् । तेषां लक्षणमुक्तं
 ज्योतिषार्णवे—
 क्रूरोदये तथाऽस्ते वा शेषेष्वन्ये तथाऽष्टमे ।
 पिगृवक्त्रमिति ख्यातं पितृणां दत्तमक्षयम् ॥
 इति ।
 मूर्तिस्थे तु यदाङ्गारे कामस्थाने शनैश्चरे
 अष्टमेषु तथाऽन्येषु छायेयं स्यात् गजस्य तु ।
 मन्दोदये स्मरेऽङ्गारे चन्द्रे चैवाष्टमस्थिते
 द्वादशेषु तथाऽन्येषु यागोऽयं स्यात् गजाह्वयः ॥
 शकटाख्यस्तथा योगः पितृकल्याणकारकः ।

एषु शुभकर्माणि वर्ज्यानि—

पितृवत्रगजच्छायागजेषु शकटेऽपि च ।

शुभानि शुभकार्याणि वंशनाशाय सर्वदा ॥

इति । वर्ज्यनक्षत्राण्याह पद्यार्धेन -

**भार्यापुत्रसमन्वितस्य नियमान्नेच्छन्ति जन्म-
त्रयं कर्तुः स्वस्य च सङ्कृतित्रिघनभे त्याज्ये स्थि-
रक्षणाणि च ॥ ५७ ॥**

पत्नीपुत्रसहितस्य कर्तुः जन्मत्रयं नेष्टम् । अत्र यजमानस्य ज्येष्ठपत्न्याः ज्येष्ठपुत्रस्य च त्रिजन्मभानि त्याज्यानि । तयोरेवाधिका-
रात् । यजमानस्य स्वस्य चतुर्विंशसप्तविंशे च नक्षत्रे त्याज्ये । स्थिरनक्ष-
त्राणि चत्वारि वर्ज्यानि । तथाच गुरुः—

कर्तुजन्मत्रयं वर्ज्यं दारसून्वोस्त्रिजन्म च ।

चतुर्विंशतिभं कर्तुः सप्तविंशतिभं तथा ॥

तत्फलं चोक्तम्—

स्वामिनो जन्मनक्षत्रे कर्तुर्वाऽस्तं समेयुषि

आग्निं पिण्डोदकं वाऽपि तस्य तस्याचिराद्भवेत् ॥

इति । ननु यथा शुभेषु विपदाद्यनिष्टर्क्षपापवर्गेषूदयादिदोषाः वर्ज्यन्ते;

अत्रापि तथा वर्ज्यास्त्युरित्याशङ्क्य पद्यार्धेन परिहरति—

**नक्षत्रं विपदादिकं च यदसद्वर्गापराह्णादिकं य-
च्चान्येषु शुभेषु दृष्टमिह तत्तत्सर्वमिष्टं स्मृतम् ॥**

विपत्प्रत्यखवधवैनाशिकनक्षत्राणि चकारादष्टमद्वादशाद्यनिष्टरा-
शयः पापषड्वर्गापराह्णकृष्णपक्षाविष्टिगुलिकसप्तहादयो ये दोषाः; अपिचाऽ-

न्येषु शुभकर्मसु दुष्टा व्यतीपातसङ्क्रमायनविषुवमन्वादियुगादिसूर्येन्दुग्रहाः
शून्यदग्धविद्धादयो ये दोषाः; इह श्राद्धकर्माणि तेते सर्वे इष्टा स्मृताः ।
येये शुभकर्मसु शस्ताः शुभोदयादयस्ते सर्वे श्राद्धेषु वज्याः ।
तथा चोक्तम्—

नक्षत्राष्टमराशौ वा विपत्प्रत्यरनैधने ।
तथा वैनाशिकं श्रेष्ठं कर्तव्यं सर्वथा भवेत् ॥
न ग्राह्यं शुभकार्येषु दिवसं दोषसंयुतम् ।
प्रशस्तं प्रेतकार्येषु तथैव भवनादयः ॥
श्राद्धे च शावे क्षौरे च शुभाः कालाः न शोभनाः ।

इति ।

पूर्वाह्णे न प्रशस्तं स्यात् मध्याह्णे मध्यमं भवेत् ।
उत्तमं चापराह्णे स्यात् कुतपश्चोत्तमोत्तमः ॥
सन्ध्याद्वयं च रात्रिश्च विवज्याः प्रेतपैतृके ।
यदि वा स्याद्विवारम्भः शेषं सा साधयेन्निशि ॥

सङ्क्रान्तिग्रहणादिनिमित्तेषु पैतृकेषु पूर्वाह्णादयः शस्यन्ते । यत उक्तं
विधिरले—

अनिमित्तेषु पूर्वाह्णे सन्ध्ययोर्निशि वर्जयेत् ।

इति ।

जन्मराश्युदयो नेष्टः शुभयोगे च पुष्कले ।
चन्द्रोदये चास्तमये बलवच्छुभवीक्षिते ॥
तथा ग्रहणां सर्वेषां शुभानामुदयास्तयोः ।
विद्वद्भिर्नेप्यते कैश्चित् पापानां तु शुभायते ॥
चन्द्रजीवज्ञदैत्यानामुदयेषु विचक्षणाः ।
वर्जयन्ति चितारोहं प्रेतस्याग्रद्युदकार्पणम् ॥

भौमसूर्यजसूर्येषु चतुष्टयगतेषु च ।
 .पिण्डानिर्वापणं श्रैष्ठमिति गार्ग्यस्य शासनम् ॥
 वर्गोत्तमगते चन्द्रे तथा वर्गोत्तमोदये ।
 प्रेतकार्यं विवर्ज्येत नृणां शोभनमिच्छताम् ॥
 चन्द्रद्वये बलिर्नैव देयः प्रेतस्य शान्तये ।
 यदि दद्यात् द्विचन्द्रेऽन्नं दातुः कुलविनाशनम् ॥
 पूर्णिमासी यदा विद्यात् मध्ये प्राप्तादिनस्य तु ।
 इन्दुद्वयं तदा न स्यादतिक्रान्ते च दोषकृत् ॥

अन्यैरुक्तम्—

जीवोदये स्मरे चन्द्रे त्रिषडायेष्वसद्गृहे ।
 शुक्रे शे वा चतुर्थस्थे योगोऽयं स्यात्त्रिपुष्करः ॥
 शुभकर्म तदा कुर्यात् हेयं मासादिकं तथा ।
 शुभकर्माणि यदिष्टं श्राद्धेषु तद्दृष्टमित्येतद्योगान्तरमुदाहृत्य स्पष्टयति—

**खद्यूनयोर्गुरुसिताविन्दुर्वन्धुसुतात्मसु । यदा
 तदा कृतं श्राद्धं कुटुम्बक्षयकारकम् ॥ ५९ ॥**

यदा श्राद्धकाले दशमे गुरुः सप्तमे शुक्रः चतुर्थपञ्चमलम्बेषु
 चन्द्रस्थिष्ठति तदा कृतं श्राद्धं पिण्डदानादि कर्तुः कुटुम्बनाशकृत् भव-
 ति । तथा च गार्ग्यः—

शुक्रबृहस्पतिसप्तदशस्थौ लभचतुर्थसुतस्थितचन्द्रे ।
 प्रेतकार्यं कृतं मनुजानां सर्वकुटुम्बविनाशनमेतत् ॥
 इति । अयं योगः प्रेतश्राद्धे महालयश्राद्धे पैतृके च समः । प्रेतश्राद्धा-
 दिषु यो विशेषस्तमाह—

शूर्पादित्यहिमूलयाम्यहुतभुक्पौष्णप्रजेशोत्तराः

प्रेतश्राद्धविधौ पुनर्मरणदास्तिस्त्रश्च पूर्वास्तथा ।
ग्राह्यामापदि तारकां सुरपतेर्गर्ग्यो मुनिर्गीतिवान्
ग्राह्यं रुद्रभमष्टकास्वकथयत् पाथोनगेऽर्के गुरुः॥

प्रेतश्राद्धकर्मणि विशाखादीन्येकादश भानि; पूर्वात्रयेण चतुर्दश
भानि पुनर्मरणदान्यतो वर्ज्यानि । आर्द्राज्येष्ठे च वर्ज्ये इति वसिष्ठः—

पौष्णमादित्यमैन्द्राग्रं रोहिणत्रियमुत्तराः ।

आवहेयुरदूरेण पुनर्मरणमेव वै ॥

आग्नेयमार्द्रा सर्पं च तिस्रः पूर्वाश्च नैरूक्तम् ।

ज्येष्ठा च भरणी चात्र निन्दितास्तत्त्वदर्शिभिः ॥

इति । अत्र भरणी ग्राह्येति केचित् । तथाच वसिष्ठः—

प्रेताधिपतिदैवत्वात् भरणी कौश्चिदिष्यते ।

इति । आपदि प्रेतश्राद्धे ज्येष्ठाऽपि ग्राह्येति गार्ग्यः उक्तवान् । अष्ट-
कासु महालयादिषु श्राद्धेषु सूर्ये कन्याराशिस्थे आर्द्रा ग्राह्येति गुरुमुक्त-
वान् ॥

पाथोनगे रवौ रौद्रे नक्षत्रे तिथिभिर्युते ।

सप्तम्यादित्रिभिर्योगः पितृकल्याणसंज्ञितः ॥

इति । तेषु त्रैपक्षिकषाण्मासिकसांवत्सारिकेषु त्रिषु विधानकालमाह—

प्राणात्ययादिषु विलोचनतर्कसूर्यमासेषु रुद्रस-
मिदष्टिमितेष्वहस्सु । श्राद्धं तदादिषु तु पञ्चसु
वा विधेयमिष्टे मृतस्य नुरहन्यशुभे च कर्तुः॥ ६१

प्रेतस्य प्राणोत्क्रान्तिमासानादारभ्य द्वितीयतृतीयषष्ठद्वादशमा-
सेषु क्रमादेकादश एकविंशषोडशसङ्ख्यादिनेषु तदादिषु पञ्चसु वा प्रेत-
स्येष्टे कर्तुरनिष्टे दिने काले च श्राद्धं दद्यात् । एतदुक्तं भवति—

उत्क्रान्तिमासात् द्वितीयमासे तत्तद्दिनात्परमेकादशेऽहि ततः परं पञ्चदि-
नेषु वा विषमे दिने त्रिपक्षाख्यं श्राद्धं कार्यम् । तथा षष्ठे मास्येकविं-
शादिपञ्चदिनेषु षण्मासाख्यं, द्वादशे मासि षोडशादिपञ्चदिनेषूनसंवत्स-
राख्यं कुर्यात् । गुरुः—

त्रिपक्षे द्वादशे पक्षे चतुर्विंशे तथैव च ।

पक्षत्रिपक्षकं कुर्यात् अन्त्ये मध्ये तथाऽऽदितः ॥

इति । प्रेतश्राद्धेषु सर्वेषु विषमदिनं ग्राह्यम् । यथाऽऽहुः—

दिनसङ्ख्या न युग्मा स्यात् शोभना ब्राह्मणेष्वपि ।

ओजाः सर्वत्र संपत्त्यै प्रेतके पैतृकेऽपि च ॥

इति । अपि च—

दशाहे समातिक्रान्ते विषमाहः प्रशस्यते ।

तत्काले अकृतसंस्कारस्य प्रेतस्यास्थिशवादिपुनर्दहनकर्मणि कालवि-
शेषो नारदेनोक्तः—

चतुर्दशीतिथिं नन्दां भद्रां शुक्रारवारयोः ।

सितेढ्ययोरस्तमयं द्वयङ्घ्रिभं विषमाङ्घ्रिभम् ॥

शुक्लपक्षं च संत्यज्य पुनर्दहनमुत्तमम् ।

वसूत्तरार्धादिपञ्चनक्षत्रेषु त्रिजन्मसु ॥

पौष्णब्राह्मभयोः पौनर्दहनात् कुलनाशनम् ।

दिनापरार्धे तत्कर्तुश्चन्द्रताराबलान्विते ॥

पापग्रहबलैर्युक्ते शुक्लग्रांशवर्जिते ।

पुनर्दहनादिकं कर्तव्यमित्यर्थः । त्रिषु पादक्षादिषु प्रेतश्राद्धं वर्जयेत् ।

त्रिजन्मसु त्रिपादक्षे नन्दायां भृगुवासरे ।

धातृपौष्णभयोः श्राद्धं न कर्तव्यं कुलक्षयात् ॥

प्रेतश्राद्धमित्यर्थः—

सकृन्महालये (श्राद्धे) कार्ये न्यूनश्राद्धेऽखिलेषु च ।

अतीतविषये चैवमेतत्सर्वं विचिन्तयेत् ॥

नारदः—

अर्कार्किभौमवारे च भद्रायां विषमाङ्घ्रिभम् ।

त्रिपुष्करस्त्रिगुणदो द्विगुणं यमलाङ्घ्रिभम् ॥

इति । तद्दोषशमनं च नारदेनोक्तम्—

दद्यात्तद्दोषनाशाय गोत्रयं मूल्यमेव वा ।

द्विपुष्करे द्वयं दद्यात् नास्ति दोषो भमात्रतः ॥

इति । अथ तिथिषु काम्यश्राद्धानि नारदेनोक्तानि—

कन्यां कन्यावेदिनश्च पशून् वै सत्सुतानपि ।

घृतं कृषिं च वाणिज्यं द्विशफैकशफांस्तथा ॥

ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रान् स्वर्णरूप्ये सकुप्यके ।

ज्ञातिश्रेष्ठयं सर्वकामानाम्प्रोति श्राद्धदः सदा ॥

प्रतिपत्प्रभृतिष्वेषु वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ।

शस्त्रेण निहता ये वै तेभ्यस्तत्र प्रदापयेत् ॥

इति । नक्षत्रेष्वपि तेनैवोक्तानि—

स्वर्ग्यं ह्यपत्यमोजश्च शौर्यं क्षेत्रं फलं तथा ।

पौत्रश्रेष्ठयं ससौभाग्यं समृद्धिं मुख्यतां शुभम् ॥

प्रवृत्तचक्रतां चैव वाणिज्यप्रभृतीन्यपि ।

अरोगित्वं यशो वीतशोकतां परमां गतिम् ॥

धनं वेदान् मिषक्सिद्धिं कुप्यान् गामप्यजाविकम् ।

अश्वानायुश्च विधिवद्यः श्राद्धं संप्रयच्छति ॥

कृत्तिकादिभरण्यन्तं स कामानामुयात्क्रमात् ॥

इति । पितृणां श्राद्धकर्मफलं यमेनोक्तं—

आयुः पुत्रान् यशः स्वर्गं कीर्तिं पुष्टिं बलं श्रियम् ।

पशून् सुखं धनं धान्यं प्राप्नुयात्पितृपूजनात् ॥

इति । श्राद्धाकरणे प्रत्यवायश्च हारीतेनोक्तः—

न तत्र वीरा जायन्ते नारोगा न शतायुषः ।

न च श्रेयोऽधिगच्छन्ति यत्र श्राद्धं विवर्जितम् ॥

इति । संवत्सरादिश्राद्धेषु तिथिनिर्णय उच्यते—

यस्यामस्तं रविर्याति पितरस्तामुपासते ।

तिथ्यां तेभ्यो यतो दत्तो ह्यपराहः स्वयम्भुवा ॥

या पूर्वास्तमयं स्पृष्ट्वा परेऽह्यस्तमये स्थिता ।

ब्राह्मा परेऽहि सा श्राद्धे पूर्वा पूर्वोक्तवत् स्थिता ॥

व्यापिनी श्राद्धकालस्य भवेद्या तिथिरुत्तमा ।

पूर्वा परा वा सा ब्राह्मा तिथिरित्यपरे विदुः ॥

वृद्धौ षण्णाडिका ब्राह्माः समे तिस्रः क्षये चतुः ।

प्रत्यब्दाहं प्रकुर्वति निर्णयः पितृकर्मणि ॥

अथ नक्तोपवासव्रतादिकालविशेषास्तन्निर्णयश्चाभिधीयन्ते—

नक्तव्रतेषु सा ब्राह्मा प्रदोषव्यापिनी तिथिः ।

पूजाव्रतेषु सर्वेषु मध्याह्नव्यापिनी स्मृता ॥

एकभुक्तोपवासेषु या विंशद्धटिका स्मृता ॥

महाचतुर्थी—

मासि भाद्रपदे शुक्लचतुर्थ्यां गणनाथकम् ॥

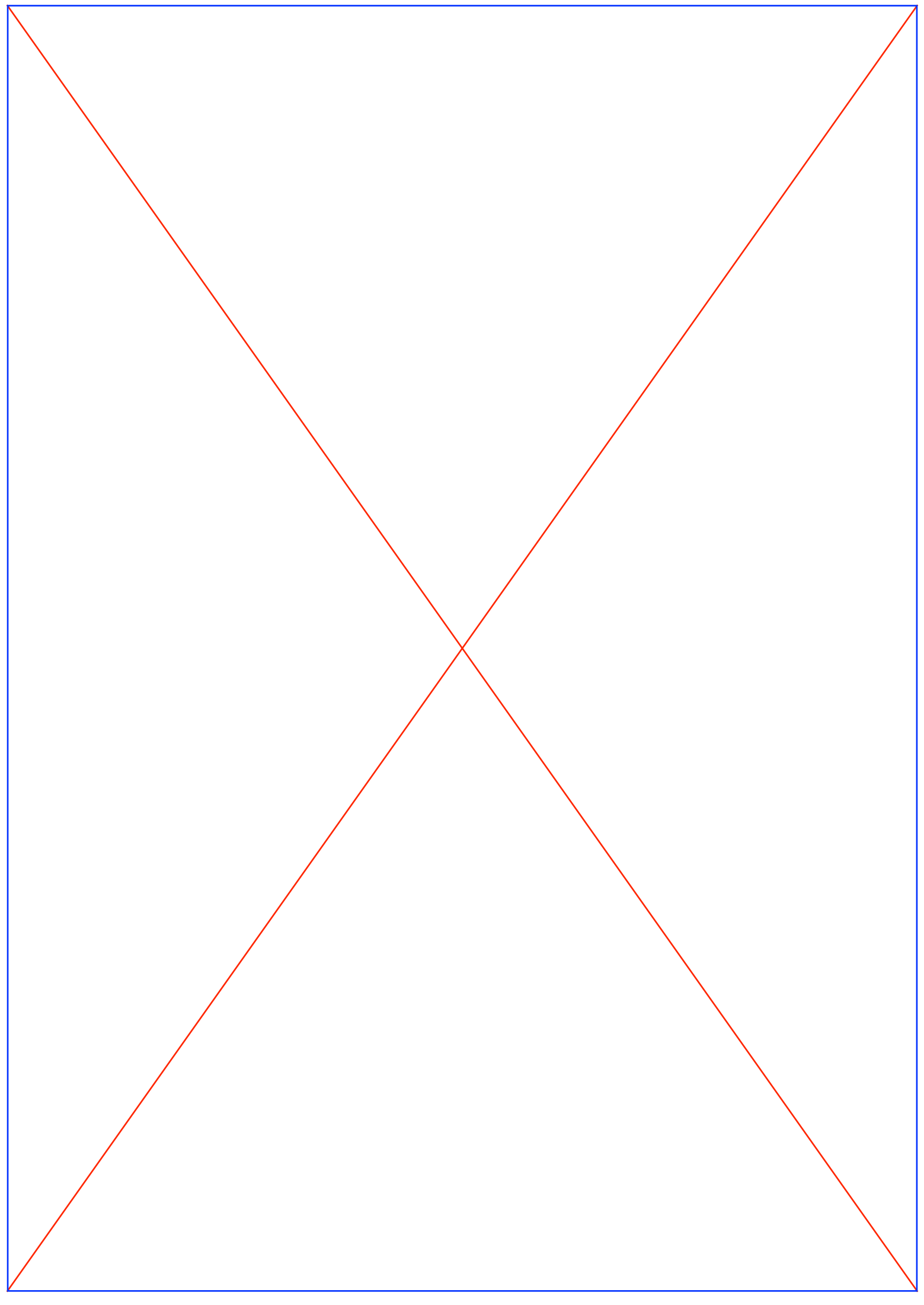
पूजयेन्मोदकाहारं सर्वविघ्नोपशान्तये ॥

रथसप्तमी—

माघशुक्ले च सप्तम्यां योऽर्चयेद्भास्करं नरः ।

अरोगः श्रियमामोति शर्कराघृतपायसैः ॥

मासि भाद्रपदे कृष्णे रोहिणीसहिताष्टमी ।



अध्यायमुपसंहरति—

इति ह्यतमैः पद्यैरिहैकपञ्चाशता विनिर्दिष्टः ।
पूर्णस्त्रयोदशोऽयं नववसनादिप्रकीर्णकाध्यायः ॥

इति रम्यैरेकपञ्चाशत्सङ्ख्यैः पद्यैरुक्तस्त्रयोदशोऽयं नववस्त्राच्छा-
दनस्वर्णभूषणदन्तधावनतैलाभ्यङ्गहेमादिद्रव्यसङ्ग्रहस्वाम्यादिदर्शनविवाद -
भूसृद्ग्रहणगृहादिरक्षातत्कार्यगोष्ठगोकार्यपूर्तादिकर्मपुण्यप्रशंसापौष्टिकविद्वे -
षणादिकृत्यपारकृत्यरोगणारिप्रतीकारनक्षत्रकृत्यश्राद्धकालाद्यभिधायी बहु-
कर्माभिधायित्वादेव प्रकीर्णकाख्योऽयमध्यायः पूर्णोऽभूदित्यर्थः ॥

इत्थं मुहूर्तशास्त्रे प्रकटितनव्याम्बरादिनैकविधिः ।

व्याख्यायि विष्णुनाऽयं प्रकीर्णकाख्यस्त्रयोदशोऽध्यायः ॥

इति मुहूर्तदीपिकायां विद्यामाधवीयव्याख्यायां
त्रयोदशः प्रकीर्णकाध्यायः



तारादिलक्षणाध्यायः

एवं गर्भाधानादिपितृकार्यान्तकर्मणां क्रियाकालमभिधाय अथ तत्कालसाधनं घटीपात्रादिभिः क्रियते । तेषां साध्वसाधुत्वं दिवा शङ्कु-च्छायया ज्ञायते रात्रौ तु नक्षत्रैरिति स्वस्वराश्यंशलिप्तासु नियतोदयानां तेषां उदयश्च पूर्वहरिजस्य पर्वतादिव्यवहितस्यास्फुटदृश्यत्वात् दुरधिगमः, खमध्यस्थितिस्तु सुव्यक्तदर्शनेति नक्षत्राणामुदयेन तद्राशिगतभागादिकं तेषां तेषां खमध्यस्थित्या तच्चतुर्थराशिगतभागांश्च प्रवक्ष्यन् प्रचुरतरतार-तारकानिकरपरिवृते नभसि दक्षादिभानां स्वरूपविवेको दुरवाप इति तेषां तारासन्निवेशप्रकारं विवक्षुरादौ तत्तारासंख्यामाह—

त्रिलोकाः षड्बाणा दहनशशिवेदाम्बुधिरसा-
श्चतुर्नेत्राक्षीषु क्षितिशशिचतुर्वेददहनाः । भवान्ना-
याम्भोधित्रिशरशतनेत्राक्षिदशनाः क्रमेणेत्यश्वि-
न्याद्युडुनिकरताराः परिमिताः ॥ १ ॥

लोकास्त्रयः, भवा एकादश, आम्नायाश्चत्वारः, दशना द्वात्रिंशत् इत्युक्तवत् क्रमेण व्याद्येकैकपदगतसङ्ख्यापरिमिता अश्विन्यादिसप्त-विंशतिभानां तारा भवन्ति । अत्र केषांचित् भानां तारासङ्ख्यावैमत्यं कचित् दृश्यते । तद्यथा—

शिखिशिखिरसशरगुणशशिकृतगुणरसविषयमलयमविषया ।

शशिशशिकृतयुगगुणशिवयुगयुगगुणदहनजलधिशतयमलाः ॥

यमलरदाः साभिजितां तारासङ्ख्यायैमाश्विनादीनाम् ॥

इति । अत्र पुष्यमघाधनिष्ठादीनां तारासङ्ख्या वैमत्येन रल्लेनोक्ता ।

शिखिगुणरसोन्द्रियानलशशिगुणविषयर्तुपञ्चवसुपक्षाः ।

विषयैकचन्द्रभूतार्णवाग्निरुद्राश्विवसुदहनाः ॥

भूतशतपक्षवसवो द्वात्रिंशद्वेति तारकामानम् ॥

इति । वराहमिहिरेणोक्ते बहूनां दृश्यते । स्यादेतत्—नभसि प्रत्यक्षदृश्य-
भानां ताराणां कथं तारासङ्ख्यावैमत्यमिति । अत्र ब्रूमः—भताराणामत्या-
सन्नतारान्तराणां दृश्यत्वसम्भवात् तत्संख्याया अनिश्चय इति । तद्यथा—
कौश्विदत्यासन्नतारान्तराणि तन्नक्षत्रतारासन्निवेशे निक्षिप्य नक्षत्रतारा-
संख्योक्ता, कैश्वित् तैर्विनेत्युपपन्नम् । एषां नक्षत्राणां मण्डलदक्षिणोत्तरा-
वस्थितिस्तदन्तरांशाश्च शरसंज्ञाश्च भास्करेण सिद्धान्तशिरोमणावुक्ताः—

दिशोऽर्काश्च सार्धाब्धयः सार्धवेदा

दशेशा रसाः खं स्वराः खं च सूर्याः ।

त्रिचन्द्राः कुचन्द्रा द्विपादौ च दस्रौ

तुरङ्गामयस्सन्निभागं च रूपम् ॥

विपादद्वयं सार्थरामाश्च सार्धा

गजाः सन्निभागेष्वो मार्गणाश्च ।

द्विषष्टिः खरामाश्च षड्वर्गसङ्ख्याः

त्रिभागो जिना उत्कृतिः खं च भानाम् ॥

निरुक्ताः स्फुटा योगताराशरांशाः

त्रयं ब्रह्मधिष्णयाद्विशाखादिषट्कम् ।

करो वारुणं त्वष्टृभं सार्षमेषां

शरा दक्षिणा उत्तराः शेषभानाम् ॥

इति । तारासन्निवेशप्रकारमाह —

क्रमशो हयमुखयोनिक्षुरभाकटमृगोत्तमाङ्गम-
णिगृहवत् । शरचक्रवच्च शयनवदथ पर्यङ्कानुरूप-
मृगयुगलम् ॥ करमुक्ताफलविद्रुमतोरणवत् त्रि-
वालिवच्च कुण्डलवत् । मृगपतिविक्रमशय्यागज-
पतिश्रृङ्गाटकत्रिविक्रमवत् ॥ कूश्माण्डवच्च वृत्तं
यमलद्वयवत्ततोऽन्यदृक्षयुगम् । पर्यङ्कवन्मुरजव-
द्विवि भान्यश्वयादिकानि दृश्यन्ते ॥

अश्विन्यादिसप्तविंशतिभानि क्रमेणाश्वमुखाद्याकारतारासन्निवेश-
वन्ति दिवि दृश्यन्ते । तद्यथा—अश्विन्यश्वमुखाकारा सन्निवेशत्रितारा ।
भरणी योनिवत् त्रिकोणाकारा सन्निवेशत्रितारा कृत्तिका क्षुराकार-
षट्तरा । भान्येतानि त्रीण्युन्मण्डलादुत्तरेण दृश्यन्ते । रोहिणी शकटा-
कारपञ्चतारा । मृगशीर्षं मृगशीर्षाकारत्रितारं । आर्द्रा मणिसदृशैकतारा ।
त्रीण्येतानि भान्युन्मण्डलादक्षिणे लक्ष्यन्ते । पुनर्वसुनक्षत्रं गृहाकार-
चतुस्तारं, गृहाकारपञ्चतारमित्यपरे, कुण्डलाकारद्वितारमिति गुरुः ।
तदुत्तरेण दृश्यन्ते । पुष्यः शराकारचतुस्तारः, कचिच्छराकारत्रितारः ।
स चोन्मण्डलगतो व्योममध्ये दृश्यते । आश्लेषा चक्राकारषट्तरा, कचि-
च्चक्राकारपञ्चतारा, कटीसंस्थानषट्तरा इति गुरुः, सा च दक्षिणतो दृश्यते ।
मघा शय्याकारचतुस्तारा, कचिद्वक्रयष्ट्याकारपञ्चतारेति । सा च व्योम-
मध्ये दृश्यते । फल्गुनीद्वयं पर्यङ्काकारद्वितारं उदक् दृश्यते । तत्राद्य-
मष्टतारमिति कचित् । हस्तः कराकारपञ्चतारः । चित्रा मौक्तिकाकारैक-
तारा, एते द्वे मे दक्षिणतो दृश्येते । स्वाती मौक्तिकाकारैकतारका उत्त-

रतो दृश्यते । विशाखा तोरणाकारचतुस्तारा क्वचित् पञ्चतारेति, द्विता-
रेत्यन्ये* । अनूराधा त्रिवलीसंस्थानचतुस्तारा । ज्येष्ठा कुण्डलाकारत्रितारा ।
मूलं सिंहविक्रमाकारेकादशतारम्, द्वादशतारमित्यन्ये । आप्यं शय्या-
कारचतुस्तारम्, क्वचित् द्वितारमिति । वैश्वं गजविलासाकारचतुस्ता-
रम्, अष्टतारमित्यन्ये, द्वितारमित्यपरे । षडेतानि भानि दक्षिणतः
स्थितानि दृश्यन्ते । अभिजित् शृङ्गाटकाकारत्रितारम् । श्रवणं त्रिवि-
क्रमाकारत्रितारकं, चतुस्तारमिति क्वचित् । धनिष्ठा कूश्माण्डफलाकार-
पञ्चतारा, मृदङ्गाकारचतुस्तारमित्यन्ये । त्रीण्येतान्युदक्स्थितानि । वा-
रुणं वृत्ताकारशततारकम्, दशतारमिति गुरुः । तच्च दक्षिणतः स्थितम् ।
पूर्वाभाद्रपदं यमलद्वयाकारं द्वितारम् । उत्तराभाद्रपदं पर्यङ्काकाराद्वितारकम् ।
एते द्वे उदग्दृश्येते । रेवती मुरजाकारद्वात्रिंशत्तारा मध्ये दृश्यते ॥

तुरगमुखसदृशं योनिरूपं क्षुराभं

शकटसममथैणस्योत्तमाङ्गेन तुल्यम् ।

मणिगृहशरचक्राभानि* शय्यासमाभं

शयनसदृशमन्यच्चात्र पर्यङ्करूपम् ॥

हस्ताकारमतश्च मौक्तिकसमं चान्यत् प्रवालोपमं

धिष्ण्यं तोरणवत् स्थितं वलिनिभं सत्कुण्डलाभं परम् ।

क्रुध्यत्केसरिविक्रमेण सदृशं शय्यासमानं परं

चान्यद्वास्तिविलासवत् स्थितमतः शृङ्गाटकव्यक्ति च ॥

त्रिविक्रमाभं च मृदङ्गरूपं वृत्तं ततोऽन्यद्यमलद्वयाभम् ।

पर्यङ्कतुल्यं मुरजानुरूपमित्येतदश्वयादिभचक्ररूपम् ॥

इति । अश्वयादिनक्षत्रोदये मेषादिराशिगतभागानाह—

वस्वृक्षाङ्गपुराणलोचनदिशो वेदांस्तिथिं सङ्कृतिं

* 'शालोपमं च' इति पाठो ग्रहगणिते दृश्यते.

विद्येध्माब्धिविकृत्यनुष्णकिरणात्यष्ट्याकृतीन् भा-
स्करान् । विद्येन्दिन्द्रभभूमिपोत्कृतिगिरीन् भांशान्
दशोपान्तिमांस्तीर्त्वांशानुदयन्ति भानि परतो
भागैः क्रियादेः क्रमात् ॥

अश्विन्यादीनि भानि क्रमेण मेषादिराशीनामष्टमाद्यंशानतीत्य
तावत्सङ्ख्यैस्तद्राशिभागैः स्वयमुदयन्ति, मेषादिराशीनामष्टमाद्यंशमित-
ध्रुवस्थितयोऽश्विन्यादयस्तेषां तावत्स्वशेषु कृतोदया इत्यर्थः । यथा—
अश्विन्यां प्रोदितायां मेषस्याष्टावंशा गताः स्युः, भरण्यां सप्तविंशतिः,
कृत्तिकायां वृषस्य षडंशाः, रोहिण्यामष्टादश, मृगशिरसि मिथुनस्य
द्वावंशावित्यादि पुरत ऊह्यम् । अत्र भास्करः—

अष्टावष्टादश दिशो मनवोऽर्का द्वयोर्धना ।
द्वाविंशतिश्च विश्वे च नवशक्रास्त्रयोदश ॥
दिशो विंशतिरेकोना द्वादशार्कास्त्रिपञ्चकम् ।
दिशो रसाश्च विश्वे च विश्वे सूर्या धृतिस्तथा ॥
रुद्रास्सूर्यास्त्रिसप्ताथ शैलेन्दुतिथयः क्रमात् ।
पूर्वपूर्वयुता ज्ञेया योगभागा यथोदिताः ॥
आप्यवैष्णवमूलानां पितृवासधयोरपि ।
त्रिंशल्लिप्तास्सयाम्यानां क्षेप्या वैश्वस्य शेषतः ॥
योगभागसमः सर्वः संयुक्तो लक्ष्यते गृहम् ।
अधिकोनकलाकालविज्ञानं चानुपाततः ॥

इति । एवं भास्करोक्तानां ब्रह्मगुप्ताभिहितानां च नक्षत्रध्रुवांशानां च
वैषम्यं दृश्यते । तथाऽऽह ब्रह्मगुप्तः—

अष्टनवैर्मेषे गवि रदलितोनैर्गुणस्वरैर्मिथुने ।

कर्कटके गुणषोडशधृतिभिः सिंहे नवत्रिघनैः ॥

कन्यायां पञ्चनखैः तुलिनि त्रयतिधृतिभिरळिनि ।

सेषुकलैः मद्रिचतुर्दशं ? त्रिधृतिर्धनुषि शशाङ्कमनुनवतत्वैः ॥

मकरेऽष्टनखैः कुम्भे नवषड्विंशैर्ज्ञेषे मुनित्रिंशैः ।

पृथगश्विन्यादीनां ध्रुवकांशैर्योगताराः स्वैः ॥

इति । श्रवणादिनक्षत्रेषु व्योममध्यस्थेषु मेषादिराशिगतभागानाह —

मेषादेः कृतिवेदराड्सुजनाः षड्भानुभाश्चाधृति-
क्षमाविद्यागुणभूमिपोत्कृतिमिताः काष्ठाः समिद्धा-
र्धयः । विंशोपान्त्यदिशो विकृत्यनलदिकृतत्वानि
दिक्कारकाभागा यान्त्युदयं खमध्यनिरतष्वृक्षेषु
विष्णवादिषु ॥ ६ ॥

श्रवणादिनक्षत्रेषु व्योममध्यवर्तिषु स्वमूर्धोपरि दृश्यमानेष्विति या-
वत् । मेषादेरिति जातावेकवचनम् । मेषादिराशीनां विंशादिभागा पूर्व-
हरिज उदयं यान्ति । यथाश्रवणे व्योममध्यगे मेषस्य विंशोऽंश उद्ग-
च्छति, धनिष्ठानक्षत्रे वृषभस्य चतुर्थस्त्रिंशांशः, शतभिषङ्नक्षत्रे
वृषभस्य षोडशोऽंशः इत्याद्युन्नेयं उत्तराषाढे मीनस्य सप्तविंशोऽंश
उदेतीत्यन्तम् । तत्र उपान्त्य एकोनत्रिंशः विकृतिसंख्यस्त्रयोविंशः । अत्र
प्राक्तना आहुः —

गुरोर्धियाज्ञासकलेन यज्ञं

बलेशपथ्यं नरसूनुरत्नम् ।

बेलाम्बरश्रीमृगमीनलभं

जयेन्द्रयागं हिमचारगानम् ॥

कलाक्षिनाभिःपरदायभिन्नं
 जराङ्गनामा दशदायमानम् ।
 शिवेन्द्रनीतिः शिवमायतानं
 प्रियेशरक्षा जयधेनुसेना ॥
 शिमुर्नरार्थीजलगानदीनां
 पट्टज्ञयेदं तिलजप्रदानम् ।
 नयाधनार्धिं जलकृत्प्रधानम्
 जलेन्द्रनिम्नायस्वनिर्धनं नृपः ॥
 तपोभिरत्नायकराळनाटकं
 सुनीतिरूपायकलांशराशयः ।
 आकाशमध्यं श्रवणादिकं क्रमात्
 गतेषु मेषादिभपत्तिराशयः ॥

इति । ‘उदयोदोदयाद्भानो भूमिसाधनखासनाः’ इति बहुसम्मतं मतमा-
 श्रित्य किञ्चिद्दूनाधिका षष्टिघटिका वारप्रमाणमित्युक्तम्; सांप्रतं मतान्त-
 रेण वारप्रमाणमाह—

रसनन्दभूतजलराशिभोगभृतकुलशैलवह्निघटि-
 का दशाहताः । दिवसाधिपप्रभृतिवारभुक्तयः क्र-
 मशोऽत्र कैश्चिद्दृषिभिः प्रकीर्णिताः ॥ ७ ॥

सूर्यादिवारा क्रमेण षष्टिनवतिपञ्चाशत्चत्वारिंशदशीतिसप्तति-
 त्रिंशद्घटिकामिता भवन्तीति कैश्चिद्दृषिभिरुक्तम् । “तद्धिमेभजसां-
 गेति सूर्यादेर्वारभुक्तयः” इति तन्मते सूर्यवार उक्तप्रमाण एव । सोम-
 वारो भौमवारदिनान्तान्तं प्रवर्तते । भौमवारस्ततः परं सौम्ये दिवाविंशति-

घटिकान्तम् । शेषः सौम्यस्य स्ववारः । गुरुवारस्तु शुक्रदिने दिवा विंश-
तिघटिकान्तं भवति । ततः परस्ताच्छुक्रवारः शनिवारदिनान्तान्तं
भवति । शेषः मन्दस्य स्ववारः ॥

इडां प्रपन्ने श्वसने विदध्यात् शुभानि रौद्राणि
तु सूर्यनाडीम् । तत्रापि शंसन्ति वसुन्धरादिभूतो-
दयान् कर्मविशेषकालान् ॥ ८ ॥

श्वसने वायौ इडां सोमनाडी प्राप्ते सर्वाणि शुभानि शान्तिक-
पौष्टिकादीनि कुर्यात् । सूर्यनाडी दक्षिणनाडीम् ॥
नित्यमुहूर्तयोगानाह—

मन्देन्दुशुक्रदिवसेषु नवार्धसङ्ख्यान्यष्टौ बुधे
नव कुजे धिषणे तु सप्त । एकादशार्कदिवसे च
यदा भवन्ति छायापदानि भुवि वासरपूर्वभागे ॥

नित्यास्तदा वारमुहूर्तयोगाः शुभाः प्रदिष्टाः
कथितेषु तेषु । कुर्याच्छुभं कार्यमवश्यकार्यं न तत्र
तारादिकृतोऽस्ति दोषः ॥ १० ॥

केचित् सङ्क्रान्तिचक्रमन्यथाऽऽहुः । अर्णवे—

तिर्यग्रेखात्रये शूलत्रयं मध्ये तथोर्ध्वके ।

मध्यशूलान्तरे तद्गं स्थाप्यं यामावसानकम् ॥

अपसव्यादिति ततो विद्याद्रोहावरोहणम् ।

गणयेत् सभपर्यन्तमारभ्यैवं प्रवेशनम् ॥

शूलेषु नवभैर्नाशः षड्भिर्बाह्यैर्वसुक्षयः ।

द्वादशर्क्षे शुभं विद्यादेवि ! सङ्क्रमणादिषु ॥

इति । मन्त्रादिदीक्षासु मार्गशीर्षमाघाषाढमासाश्च वर्ज्याः । यथोक्तं—

आषाढं मार्गशीर्षं च माघमासं च वर्जयेत् ।

इति । तत्र नक्षत्रादीन्युक्तानि—

उत्तरत्रयरोहिण्यो रेवतीपुष्यवासवाः ।

वायुमित्रपितृत्वाष्टनैरऋताः सौम्यशङ्करौ ॥

इन्द्रवैष्णवहस्ताश्च दीक्षायां सुशुभावहा ।

कौजं सर्वं विवर्ज्य स्यात् चरराशिषु सौख्यदा ॥

त्रिषडायगताः क्रूराः शुभाः केन्द्रत्रिकोणगाः ।

दीक्षायां शुभदाः सर्वे रन्ध्रस्थाः सर्वनाशनाः ॥

समृद्धबलसंयुक्ते शुके देवपुरोहिते ।

शुक्लपक्षेऽथ कृष्णे वा दीक्षा सर्वशुभावहा ॥

कृष्णाष्टम्यां चतुर्दश्यां पञ्चपूर्णदिने तथा ।

ग्रहणादौ व्यतीपाते परिवेषादिके तथा ॥

शुभवेधसमायोगे शुभवर्गे शुभोदये ।

अष्टाक्षरादिमन्त्राणां सङ्ग्रहः सर्वसौख्यकृत् ॥

शिष्यत्रिजन्मनक्षत्रसङ्क्रान्तिविषवेषु च ।

अयने पुण्ययोगेषु ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥

गुलिके शकुनादौ च देहशुद्धिः शुभा भवेत् ।

ग्रहणादिष्वपि ताराद्यानुगुण्यमिष्टम् । यथोक्तं—

कृष्णाष्टमीचतुर्दश्योः ग्रहणादौ च साधकैः ॥

तत्र नक्षत्रतिथ्यादौ करणे योगवासरे ।

मन्त्रोपदेशं गुरुणा साधनं च शुभावहम् ॥

तारामञ्ज्यादिकाध्यायः श्लोकैर्दशभिराहितः ।

समाप्तोऽयमभूद्विद्यामाधवीये चतुर्दशः ॥ ११ ॥

इति विद्यामाधवीये चतुर्दशस्तारादिलक्षणाध्यायः सम्पूर्णः.



अथ पञ्चदशोऽध्यायः.

कन्यानां प्रथमार्तवदर्शनकालाच्छुभाशुभं विवक्षुस्तत्र शुभं नक्ष-
त्रादिकमाह—

वस्वादित्यमघाचतुर्गुरुयमा वैश्वं तथा रोहिणी
वायव्यादिचतुष्कबुधयभयुतं पौष्णं च मुख्यं स्मृ-
तम् । मन्वर्काङ्गनवाष्टवेदतिथयो दर्शान्विता नि-
न्दिताः कन्यानां प्रथमार्तवे ह्यशुभदाः पापांश-
वारोदयाः ॥ १ ॥

वसु धनिष्ठा, आदित्यं पुनर्वसुः, मघादिचतुष्टयं, वस्वादिका
एताः षोडशताराः कन्यानां प्रथमार्तवे प्रथमं योनावस्रसम्भवे श्रेष्ठाः ।
अन्याः एकादश अशुभा इति अर्थसिद्धाः । एतत् प्रतिनक्षत्रफलाभिधा-
यिगार्ग्यवचनेन निगदितं भवति । यथा —

अश्विन्यां विधवा नारी भरण्यां पुत्रिणी भवेत् ।
कृत्तिकायां प्रजाहानी रोहिण्यां सुखभोगिनी ॥
सौम्यर्क्षे गुरुकरुणा स्यादार्द्रायां व्याधिपीडिता ।
आदित्ये भूषणैर्युक्ता पुष्ये राजानुभोगिनी ॥
सार्पक्षे मृतपुत्रा स्यात् पित्र्ये बहुकुटुम्बिनी ।
फलगुन्यां धनपुत्राढ्याऽप्युत्तरे भोगवर्धनी ॥
हस्ते राजानुभावा च चित्रायां रोगपीडिता ।

स्वातौ कुटुम्बिनी चैव विशाखायां धनान्विता ॥
 मैत्रे भोगवती कन्या त्वैन्द्रे राजवती प्रिया ।
 मूले तु मुण्डिनी चैव पूर्वाषाढे तु दासिका ॥
 उत्तराषाढमे धन्या श्रवणे मतिदूषिता ॥
 धनिष्ठायां भोगवती वारुणे च दरिद्रता ।
 पूर्वाभाद्रपदे व्याधिराहिर्बुध्नये तु भोगिनी ॥
 रेवत्यां स्याद्धनवती प्रथमे तु रजस्वला ॥
 इति । तिथिषु मन्वादिसंख्याश्चतुर्दशीद्वादशीषष्ठीनवम्यष्टमीचतुर्थ्यमावा-
 स्या निन्दिताः । तथाहि प्रतितिथिफलम्—

प्रतिपद्यल्पपुत्रा स्यात् द्वितीयायां च सुप्रजाः ।
 तृतीयायां भोगिनी स्याच्चतुर्थ्यां रोगपीडिता ॥
 पञ्चम्यां सुभगा नारी षष्ठ्यां पुत्रविनाशिनी ।
 सप्तम्यां भोगमाप्नोति त्वष्टम्यां क्रूरचेष्टिता ॥
 नवम्यां तु दरिद्रा स्याद्दशम्यां धनभागिनी ।
 एकादश्यां पतिप्रीता द्वादश्यां दूषणान्विता ॥
 त्रयोदश्यां पुत्रवती चतुर्दश्यां तु पुंश्चली ।
 पौर्णमास्यां सुपूर्णा स्यात्कुह्वां तु कुलटा भवेत् ॥

इति । अन्ये त्वाहुः—

पौर्णमास्याममावास्यामुभयोर्नष्टवल्लभा ॥

इति । पापग्रहाणामंशकः तद्वाराः तदुदयाश्चैते कन्यानां प्रथमार्तवे
 अशुभफलप्रदाः स्युः । तथाच प्रतिवारफलकथने नारदेनाभिहितम्—

सरोगा पतिभक्ता च दुःखिनी पुत्रिणी तथा ।

भोगिनी पतिभक्ता च क्लेशिनी रविवासरात् ॥

पापोदया वर्ज्या इत्यभिदधता शुभोदयदृष्ट्यादयः शस्ता इत्युक्तमेव भवति ।

तथाचोक्तमन्यत्र—

अशुभमपि समस्तं चार्तवे संप्रभूते
सुरगुरुसितयुक्ते प्रेक्षिते वाऽथ लम्बे ।
तिमिरमिव कठोरं ज्योतिरुत्पत्तिकाले
क्षयमपि समुपैति प्राप्नुयाच्चापि लक्ष्मीम् ॥

इति ।

मेषलम्बे दरिद्रा स्यात् वृषभे गोप्रवर्धनी ।
मिथुने भोगवित्ता स्यात् कर्क्या विकृतचारिणी ॥
सिंहे सकृत्प्रसूता च कन्यायां कन्यकाप्रजा ।
तुलायां तु तुलाधारी वृश्चिके बहुदूषिणी ॥
कार्मुके भर्तृनिरता मकरे प्रियवादिनी ।
कुम्भे कुलद्वयप्रीता तत्र बन्ध्येति केचन ॥
मीने दारिद्र्यरोगार्ता कन्यका प्रथमार्तवे ॥

इति । अन्ये त्वाहुः—

मेषे पररता नारी वृषभे व्यभिचारिणी ।
मिथुने धनसम्पन्ना कर्कटे अष्टचारिणी ॥
सिंहे त्वेकप्रसूतिस्स्यात् कन्यायां श्रीमती भवेत् ।
विचक्षणा तुलायां च वृश्चिके व्यभिचारिणी ॥
दुश्चारिणी धनुःपूर्वं पश्चिमार्धे पतिव्रता ।
मकरे मानहीना स्यात् कुम्भे धनवती भवेत् ॥
मीने विचक्षणा चैव रजसः प्रथमोदये ॥

मतान्तरेण नक्षत्रफलमाह—

अन्तरङ्गेषु नक्षत्रेष्वृतुयोगः प्रशस्यते । बाह्ये-

पञ्चशुभदस्सर्वेष्विति केचित् प्रचक्षते ॥ २ ॥

कृत्तिकादिष्वन्तरङ्गनक्षत्रेष्वार्तवं प्रशस्यते । पुनर्वस्वादिषु बाह्या-
ख्यनक्षत्रेषु अशुभमिति केचिदाहुः । तथाचान्यत्र —

एवमभ्यन्तरे धिष्ण्ये सार्तवं कन्यका गता ।
मङ्गल्यं पुत्रवृद्धिं च नानासुखमवाप्नुयात् ॥
बाह्यर्क्षे स्यादमङ्गल्यं दौर्भाग्यं च दरिद्रता ॥

इति । अन्ये त्वाहुः —

विश्वादिद्वादशर्क्षेषु पत्युर्भवति बल्लभा ।
पतिरक्ता सुपुत्रा च पुत्रनप्त्रादिसंयुता ॥

इति ।

अशुभा कुलटा रूक्षा चद्रादिषु च सप्तसु ।
वेश्या हस्तादिके नारी मैत्रादौ विधवा च सा ॥

विधिरत्ने —

स्वजन्मराशिलग्न्यामष्टमस्थे निशाकरे ।
अष्टमे वाऽपि लग्नस्थे लग्ने क्रूरग्रहेऽथवा ॥
लग्ने च गुरुशुक्रज्ञयोगदर्शनवर्जिते ।
तारेन्द्रोर्बलराहित्ये मन्दगस्योदयेऽपि वा ॥
विष्टौ कष्टेऽहि वा योषा पुष्पिणी बहुदुःखभाक् ॥

इति । अपि च —

अत्रोपचयगे चन्द्रे दृष्टे काव्येन सूरिणा ।
स्वभर्त्रा रतिमाप्नोति विटेनावनिसूनुना ॥
सूर्येण राजपुरुषेण भृत्येन रविसूनुना ।
पापैस्तु सकलैर्वेश्या ग्रहसंस्था विवाहवत् ॥

भावफलं चोक्तम्—

सार्पे जामित्रसंस्थाः प्रददति मरणं शोकवैधव्यदुःखं
खेटा रिप्फे च तद्वहुधगुरुभृगवोऽस्मिन् शुभाश्चेति कोचित् ।
भानुभौमश्च मन्दो भवसहजरिपुच्छिद्रगः कन्यकानां
पुत्रारोग्यप्रवृद्धिं निधनभवनगो रोगकृद्भूमिपुत्रः ॥
जामित्रे विधवा सूर्ये चन्द्रे पुत्रविनाशिनी ।
कुजे दुष्टा बुधे वन्ध्या दुर्भगा च बृहस्पतौ ॥
कुलटा भार्गवे सौरे गर्भपातनतत्परा ।
दुश्चरित्रा भवेद्राहौ तद्वत्केतुस्थिते फलम् ॥

इति । राशिफलमाह—

गोनक्रयमहद्रोगतौक्षिकारुयेषु राशिषु । शुभं
विन्दत्यृतुमती कन्यायां कन्यका प्रजा ॥ १ ॥

वृषमकरमिथुनकुम्भधनूराशिष्वृतुमती कन्या शुभं फलं विन्दति ।
कन्यायां राशौ ऋतुमत्याः कन्यका प्रजा भविष्यति । रत्नदीपे—
त्रीणि त्रीणि त्रयं त्रीणि पञ्चकं सप्तकं त्रयम् ।
उत्तराषाढमारभ्य प्रथमतो यथाक्रमम् ॥
अर्थसिद्धिः पुत्रसिद्धिः वेश्यात्वं प्रियवादिता ।
अनर्थः पतिभक्तिश्च वैधव्यं चोपजायते ॥

नारदेन त्वश्चिनीरोहिणीसौम्यपुनर्वसुपुष्यमैत्रेरेवत्युत्तराषाढोत्तराचतुष्टयो-
त्तराभाद्राः षोडशताराः शुभफलदा इत्युक्तम् । मघामूले द्वे मध्ये इति ।

श्रीयुता सुभगा पुत्रवती सौम्यान्विताकुला ।

कुलाधिका मानवती त्वश्चिन्यां प्रथमार्तवे ॥

इत्यादि । एवं मुनिमतविप्रतिषेधे साधिवदमिति नैकमुररीकुर्यादिति स्थिते

‘द्वैधे बहूनां वचनम्’ इति बहुमुन्यभिमतं मतमाश्रित्य आचार्येणोक्तमिदं
वस्वादित्येत्यादि अन्तरेज्ज्ञाप्यति च ॥
गण्डान्तांशेष्वार्तवमशुभमित्याह —

आद्यंशे दस्रमखामूलानां सार्पशाक्रपौष्णाना-
म् । चरमे यदि पुष्पवती कुलटा वन्ध्या मृत-
प्रजा भवति ॥ ४ ॥

अश्विनीमखामूलानां प्रथमांशे आश्लेषाज्येष्ठारेवतीनामन्त्यांशे पु-
ष्पमार्तवं तद्वती पुष्पवती कन्या यदि स्यात् सा कुलटा असती वन्ध्या
अप्रजा मृतप्रजा प्रजातमृतापत्या वा भवति । तत्र गण्डान्तत्वादिदमु-
क्तम् । शुभाशुभकाला ज्योतिषार्णव उक्ताः—

पूर्वमध्यान्तभागेषु दिनस्योत्तममध्यमम् ।

अधमं स्यात्तथा रात्रिं केचित् सौम्यदिने शुभम् ॥

शुष्कजाततुषैः शूर्पमार्जन्याद्यशुभैर्युते ।

अशुभैस्संयुते देशे त्वशुभं प्रथमार्तवम् ॥

भुक्तौ च तल्पे या भे च तपनीये च धान्यके ।

सत्पुत्रं सुखमारोग्यं श्रियमायुष्यमेव च ॥

शुभो करणैर्युक्ते शुभदेशे शुभैर्युते ।

स्यादनुकूलशुभं क्षे राशौ सत्कर्मसंयुते ॥

चन्द्रे शुभकरं हेयं दिवसेन समेन तु ।

इति । दुष्टतारावारादिषु यदि प्रथमार्तवं स्यात् तदा तद्दोषप्रशमाय
शान्तिः कर्तव्या । तथाच नारदः—

निन्द्यर्क्षतिथिवारेषु यदि पुष्पं प्रदृश्यते ।

तत्र शान्तिं प्रकुर्वीत घृतदूर्वातिलाक्षतैः ॥

प्रत्येकं शतमष्टौ च गायत्र्या जुहुयात्ततः ।
स्वर्णगोभूतिलान् दद्यात् सर्वदोषापनुत्तये ॥
भर्ता तत्राभिगमनं वर्जयेच्छान्तिदर्शनात् ।
तिथ्यक्षवारा निन्धाश्चेत् शेषकर्म न कारयेत् ॥
दोषाधिक्ये गुणाल्पत्वे तत् तथापि न कारयेत् ।
दोषाल्पत्वे गुणाधिक्ये शेषकर्म तु कारयेत् ॥

शान्तिश्च पञ्चमेऽहि कर्तव्या । यत आह नारदः—

रजोदर्शनतोऽस्पृश्या नार्यो दिनचतुष्टयम् ।

ततः शुद्धाः क्रियास्वेताः ततः कर्मस्वयं विधिः ॥

अथ ग्रहाणां शुभाशुभगोचरफलं संक्षेपेण विवक्षुराह—

पुंसो जन्मादिभावेषु यत्फलं ग्रहचारतः ।
वराहमिहिरेणोक्तं तत् संक्षेपादिहोच्यते ॥ ५ ॥

पुंग्रहणमुपलक्षणं स्रग्धादीनां, पुंसोऽन्यस्य वा जन्मादिद्वादश-
भावेषु सूर्यादिग्रहाणां चारनिबन्धनं यत्फलं वराहमिहिरेण स्वसंहिताया-
मुक्तं तदिह संक्षेपादुच्यते, मयेति शेषः । अत्र तावत्सूर्यभौमयोः
प्रायेण फलसाम्यात् युगपत् गोचारफलमाह—

आयभ्रातृद्विषदुपगतौ स्थानमानादिलाभं वित्ते
वित्तक्षयमथसुहृत्पुत्रगौ क्लेशभीतिम् । कामे रोगान्
व्यसनमतुलं धर्मगौ सूर्यभौमौ भौमो भङ्गं दिश-
ति दशमे कर्मसिद्धिं च सूर्यः ॥ ६ ॥

सूर्यकुजावेकादशतृतीयषष्ठगतौ जन्मिनां स्थानादिलाभं दिशतः-
स्थानमावासः, मानो राजपूजादिः, आदिशब्देन धनशत्रुक्षयलाभादि-

गृह्यते । वित्ते द्वितीये वित्तक्षयं वित्तहानिं, चतुर्थपञ्चमगौ क्लेशभीति
देहायसभयं, यद्वा दैन्यावमाननारिपीडादिदुःखज भयं, कामे सप्तमे
स्थितौ नानारोगान्. नवमगौ महद्वयसनं कृच्छ्रं दिशतः । दशमे
तु भौमो भङ्गं शत्रुपराभवं दिशति । दशमे सूर्यः कर्मसिद्धिं दिशति ।
शिष्टेषु जन्मष्टमाद्वादशेषु गतयोः फलं परस्ताद्वक्ष्यति ॥

चन्द्रस्य सामान्यं गोचरफलमाह—

**क्रमेण भोगोदयमर्थनाशं जयं भयं रोगमरा-
तिभङ्गम् । सुखान्यनिष्टं रुजमिष्टसिद्धिं मुदं व्ययं
च प्रददाति चन्द्रः ॥ ७ ॥**

चन्द्रः क्रमेण जन्मादिद्वादशभावेषु भोगोदयादिफलानि
ददाति । भोगाः सुवस्त्रान्नगन्धस्रगादयस्तेषामुदयं सम्पत्तिं जन्म-
नि ददाति । द्वितीये अर्थस्य धनस्य कार्यस्य वा नाशं, तृतीये
जयं परेभ्य उत्कर्षवृत्तिं, चतुर्थे मानक्षयादिभयं शत्रुभयं वा, प-
ञ्चमे रोगं ज्वराजीर्णादिकं, षष्ठे अरातीनां शत्रूणां क्षयं, सप्तमे
धनभोगादिसुखानि, अष्टमे अनिष्टं असुखं रोगायासकलहादिभिः,
नवमे रुजं राजादिकोपकृतां दशां, दशमे इष्टस्य कार्यस्य सिद्धिं,
एकादशे मित्रधनागमादिभिर्मुदं, द्वादशे नृपारिप्रमादादिभिर्धनादेः व्ययं
ददातीत्यर्थः ।

बुधस्य गोचरफलमाह—

**अर्थक्षयं श्रियमरातिभयं धनाग्निं भार्यासुता-
दिकलहं विजयं विरोधम् । पुत्रार्थलाभमथ विघ्नम-
शेषसौख्यं पुष्टिं पराभवभयं च ददाति चान्द्रिः ॥**

चान्द्रिर्बुधः जन्मादिद्वादशसु भावेषु गतः एतानि द्वादशपदमितानि फलानि ददाति । विजयं शत्रुजयं, विरोधं सर्वजनद्वेषं, विघ्नं कर्मविघातं, पुष्टिं धनसम्पत्तिं, पराभवभयं शत्रुभिरिति शेषः-जीवस्याह—

नानादुःखं वित्तसमृद्धिं स्थितिनाशं बन्धुक्लेशं
पुत्रधनाग्निं रिपुबाधाम् । भोगान् रोगान् वित्त-
सुखाग्निं धनहानिं स्थानप्राप्तिं नाशभयं यच्छति
जीवः ॥ ९ ॥

जन्मादिद्वादशभावेष्वेतानि द्वादशफलानि ददातीत्यर्थः ॥

शुक्रस्याह—

अखिलविषयभोगं वित्तसिद्धिं विभूतिं सुतसु-
हृदभिवृद्धिं पुत्रलब्धिं विपत्तिम् । युवतिजनित-
बाधां संपदं श्रीसुखाग्निं कलहमुदयमग्निं दैत्य-
मन्त्री विधत्ते ॥ १० ॥

शुक्रः जन्मादिद्वादशभावेष्वेतानि फलानि पोषयति । अन्नमुग-
न्धयोषादयो विषयाः, तेषां उपभोगं, वित्तसिद्धिं धनलाभं, विभूतिं धना-
दिसम्पत्तिं, विपत्तिं शात्रवादिभूतं व्यसनं, सम्पदं देहधनादिपुष्टिं, कलहं
शत्रूदिभिः, उदयमभिवृद्धिं, अग्निं धनागमम् ॥

मन्दस्याह—

नानारोगशुचं सुखार्थविहतिं स्थानार्थभृत्योद-
यं स्त्रीबन्ध्वर्थसुखव्युत्तिं धनसुतभ्रंशं सपत्नक्षयम् ।

मार्गासक्तिमनन्तदुःखनिचयं धर्मप्रणाशामयं दारिद्र्यं धनलाभमर्थविहर्ति धत्ते क्रमादर्कजः ॥ ११

जन्मादिद्वादशभावेष्वेतानि फलानि पदक्रमादुक्तानि पोषयति । मार्गासक्तिं प्रवासं, धर्मप्रणाशामयं नित्यकर्मादिधर्माणां प्रणाशं आमयं रोगं च, दारिद्र्यं धनहानिमित्यर्थः । वराहमिहिरः— -

जन्मन्यायासदोऽर्कः क्षपयति विभवं कोष्ठरोगाध्वदाता

वित्तभ्रंशं द्वितीये दिशति च न सुखं वञ्चनं दृग्युजं च ।

स्थानप्राप्तिं तृतीये धननिचयमुदाकल्पकृच्चारिहन्ता

रोगान् धत्ते चतुर्थे जनयति च मुहुः स्रग्धराभोगविघ्नम् ॥

पीडा स्यात् पञ्चमस्थे सवितरि बहुशो रोगारिजनिता

षष्ठेऽर्को हन्ति दोषान् क्षपयति च रिपून् शोकांश्च नुदति ।

अध्वानं सप्तमस्थो जटरगदभयं दैन्यं च कुरुते

तिग्मांशौ चाष्टमस्थे भवति सुवदना न स्वाऽपि वनिता ॥

^१कुजोभिघातं प्रथमे द्वितीये

नरेन्द्रपीडाकलहारिदोषैः ।

कृशश्च चिन्तानलचोररोगैः

उपेन्द्रवज्रप्रतिमोपमेयः ॥

तृतीयगश्चोरकुमारकेभ्यो

भौमः सकाशात् फलमादधाति ।

^१ अत्र “रवावापदैर्न्यं हागति नवमे चित्तचेष्टाविरोधो

जयं प्राप्नोत्युग्रं दशमगृहगे कर्मसिद्धिं क्रमेण ।

जयं स्थानं मानं विभवमपि चैकादशे रोगनाशं

सुवृत्तानां चेष्टा भवति सफला द्वादशे नेतरेषाम्” ॥

इतीदं नवमदशमैकादशस्थानगतरविग्रहगोचरफलावबोधकं पद्यं लेखकप्रमा-
दात्पतितमिति प्रतिभाति.

प्रदीप्तिमाज्ञां धनमोक्तिकानि
 धात्वाकराख्यानि किलापराणि ॥
 भवति धरणिजे चतुर्थगे
 ज्वरजठरगदासृगुद्भवः ।
 कुपुरुषजनिताच्च सङ्गमात्
 प्रसभमपि करोति वा शुभम् ॥
 रिपुगदरोगभयानि पञ्चमे
 तनयकृताश्च शुचो महीसुते ।
 द्युतिरपि नास्य चिरं भवेत् स्थिरा
 शिरसि कपेरिव मालती कृता ॥
 रिपुभयकलहैर्विवर्जितः
 सकनकविद्रुमताम्रकागमः ।
 रिपुभवनगते महीसुते
 किमपरवत्तूविकारमीक्षते ॥
 कलत्रकलहाक्षिरुजठररोगकृत् सप्तमे
 ज्वरक्षतजरूषितक्षपितपित्तमानोऽष्टमे ।
 कुजेऽनवमसंस्थिते परिभवोऽर्थनाशादिभिः
 विलम्बितगातिर्भवत्यबलदेहेधातृक्लमैः ॥
 दशमगृहगतेऽश्रमो महीजे
 विविधधनासिरुपान्त्यगे जयश्च ।
 जनपदमुपरि स्थिरे च भुङ्क्ते
 वनमिव षट्चरणः सुपुष्पिताग्रम् ॥
 नानाव्ययैर्द्वादशगे महीसुते
 सन्तप्यतेऽनर्थशतैश्च मानवः ।

स्त्रीकोपचितैश्च सनेत्रवेदनैः

योऽपीन्द्रवंशाभिजनेन गर्वितः ॥

शशी जन्मन्यन्नप्रचुरशयनाच्छादनकरो

द्वितीये मानार्थं श्लथयति सविघ्नश्च भवति ।

तृतीये वस्त्रस्त्रीधननिचयसौख्यानि लभते

चतुर्थे विश्वासं शिखरिणि भुजङ्गेन सदृशम् ॥

दैन्यं लाभं शुचमपि शशी पञ्चमे मार्गविघ्नं

षष्ठे वित्तं जनयति सुखं शत्रुरोगक्षयं च ॥

यानं मानं शयनमशनं सप्तमे वित्तलाभं

मन्दाक्रान्ते फणिनि हिमगौ चाष्टमे भीर्नरस्य ।

नवमगृहगो बन्धोद्वेगश्रमोदररोगकृत्

दशमभवने राज्ञां कर्मप्रसिद्धिकरश्शशी ।

उपचयसुहृत्संयोगार्थप्रमोदमुपान्त्यगः

वृषभचरितान् दोषानन्त्ये करोति च सव्ययान् ॥

दुष्टवाक्यपिशुनाहितभेदैः

बन्धनैः सकलहैश्च हतस्वः ।

जन्मगे शशिसुते पथि गच्छन्

स्वागतेऽपि कुशलं न शृणोति ॥

परभवाधनगते धनलब्धिः

सहजगे शशिसुते सुहृदार्तिः ।

नृपतिदस्युभयशङ्कितचित्तो

द्रुतपदं व्रजति दुश्चरितैः स्वैः ॥

चतुर्थगे स्वजनकुटुम्बवृद्धयो

धनागमो भवति च शीतरश्मिजे ।

सुतस्थिते तनयकलत्रविग्रहो
 निषेवते न च रुचिरामपि स्त्रियम् ॥
 सौभाग्यं विजयमनोन्नतिं च षष्ठे
 वैवर्ण्यं कलहमतीव सप्तमे ज्ञः ।
 मृत्युस्थे सुतजयवस्त्रवित्तलाभो
 नैपुण्यं भवति मतिप्रभाषिणी च ॥
 विघ्नकरो नवमे शशिपुत्रः कर्मगतो रिपुबन्धनदश्च ।
 सप्रमदं शयनं च विधत्ते तद्गृहतोऽथ कुथास्तरणं च ।
 धनसुतसुखयोषिन्मित्रवाहासितुष्टिः
 तुहिनकिरणपुत्रे लाभगे मृष्टवाक्यः ।
 रिपुपरिभवरोगैः पीडितो द्वादशस्थे
 प्रभवति च न भोक्तुं मालिनीभोगसौख्यम् ॥
 जीवे जन्मन्यपगतधनधीः
 स्थानभ्रष्टो बहुकलहयुतः ।
 प्राच्यार्थेऽर्थान्मुनिरपि कुरुते
 कान्तास्याब्जे भ्रमरविलसितम् ॥
 स्थानभ्रंशं कार्यविघातश्च तृतीये
 नैकक्लेशैर्बन्धुजनार्थैश्च चतुर्थे ।
 जीवे शान्तिं पीडितचित्तश्च स विन्देत्
 नैव ग्रामे नापि वने मत्तमयूरे ॥
 जनयति च तनयभवनमुपगतः
 परिजनशुभसुतकरितुरगवृषान् ।
 सकनकगृहपरयुवतिवसनकृत्
 गुणमणिनिकरकृदपि विबुधगुरुः ॥

न सखीविदनं तिलकोज्ज्वलितं
 न च वनं शिखिकोकिलनादितम् ।
 हरिणप्लुतशब्दविचित्रितं
 रिपुगते मनसः सुखदं गुरौ ॥
 त्रिदशगुरुः शयनं रतिभोगं
 धनमशनं कुसुमान्युपवाह्यम् ।
 जनयति सप्तमराशिमुपेतो
 ललितपदां च गिरं धिषणां च ॥
 बन्धं व्याधिं त्वष्टमे शोकमुग्रं
 मार्गक्लेशं मृत्युतुल्यांश्च रोगान् ।
 नैपुण्याज्ञापुत्रकामार्थसिद्धिं
 धर्मे जविः शालिनीनां च लाभम् ॥
 स्नानकल्यधनहा दशर्क्षगः
 तत्प्रदो भवति लाभगो गुरुः ।
 द्वादशेऽध्वनि विलोलदुःखभाक्
 याति यद्यपि मनोरथोद्धतः ॥
 प्रथमगृहोपगो भृगुसुतः स्मरोपकरणैः
 सुरभिमनोज्ञगन्धकुसुमाम्बरैरुपचयम् ।
 शयनगृहासनाशनयुतस्य चानु कुरुते
 समदविलासिनीमुखसरोजषट्चरणताम् ॥
 शुक्रे द्वितीयगृहगे प्रसवार्थधान्य
 भूपालसङ्गतिकुटुम्बहितान्यवाप्य ।
 संसेवते कुसुमरत्नविभूषितश्च
 कामं वसन्ततिलकद्युतिमूर्धजोऽपि ॥

आज्ञार्थमानात्मजभूमिवस्त्र-
 शत्रुक्षयं दैत्यगुरुस्तृतीये ।
 धत्ते चतुर्थे स सुहृत् समाजं
 रुद्रेन्द्रवज्रप्रतिमां च शक्तिम् ॥
 जनयति शुक्रः पञ्चमसंस्थो
 गुरुपरितोषं बन्धुजनासिम् ।
 सुतधनलब्धिं मित्रधनाना-
 मनवसितत्वं चारिवलेषु ॥
 षष्ठे भृगुः परिभवरोगताप्रदः
 स्त्रीहेतुकं जनयति सप्तमेऽशुभम् ।
 यातोऽष्टमे भवनपरिच्छदप्रदो
 लक्ष्मिवितीमुपनयति स्त्रियं च सः ॥
 नवमे तु धर्मवनितासुखभाक्
 भृगुणाऽर्थवस्त्रनिचयश्च भवेत् ।
 दशमे च मानकलहं नियमात्
 प्रमिताक्षराण्यपि वदन् लभते ॥
 उपान्त्यगो भृगोः सुतः सुहृद्वनान्नगन्धकृत् ।
 धनाम्बरागमोऽन्त्यगे प्रमाणिका प्रियायुतिः ॥
 प्रथमे रविजे विषवह्निहतः
 स्वजनैर्वियुतः कृतबन्धवधः ।
 परदेशमुपेत्य सुहृद्वनो
 विसुखार्थसुतोऽटकदीनमुखः ॥
 चारवशाद्वितीयगृहगे दिनकरतनये
 रूपसुखापवार्जिततनुर्विगतमदबलः ।

अन्यगुणैः कृतं च वसु यत्तदपि खलु
 भवत्यम्बिव वंशपत्रपातितं न भवति चिरम् ॥
 सूर्यसुते तृतीयगृहगे धनानि लभते
 दासपरिच्छदोष्ट्रमहिषाश्चकुञ्जररथान् ।
 सद्मविभूतिसौख्यमामितं गदव्युपरमं
 भीरुरपि प्रशास्यति रिपूंश्च धीरललितैः ॥
 चतुर्थं गृहे सूर्यपुत्रेऽभ्युपेते
 सुहृद्वित्तभार्यासुतैर्विप्रयुक्तः ।
 भवत्यस्य सर्वत्र चासाधु दुष्टं
 भुजङ्गप्रयातानुकारं च वृत्तम् ॥
 धनसुतपरिहीनः पञ्चमस्थे
 प्रचुरकलहयुक्तश्चार्कपुत्रे ।
 विनिहतरिपुयोगः षष्ठ्याते
 पिबति च वनितास्यं श्रीपुटोष्ठम् ॥
 गच्छत्यध्वानं सप्तमे चाष्टमे च
 स्त्रीभिः पुत्राद्यैः सूर्यजे दीनचेष्टः ।
 तद्वद्धर्मस्थे वैरहृद्रोगबन्धैः
 धर्मोऽप्युत्सीदेद्वैश्वदेवक्रियाद्यः ॥
 कर्मप्राप्तिर्दशमेऽर्थक्षयश्च
 विद्याकीर्त्योः परिहारश्च सौरेः ।
 तैक्ष्ण्यं लाभे परयोषार्थलाभां-
 श्रान्ते प्राप्नोत्यपि शोकोर्मिमालाम् ॥
 इति । शुभाशुभफलान्याचार्येणोक्तानि द्रष्टव्यानि ।

अथ रविगुरुमन्दकुजानां केषुचित् स्थानेषु फलविशेषमाह—

द्वादशजन्माष्टमगाः पुंसां दिननाथजीवशानि-
भौमाः । वित्तक्षयं प्रवासं रोगान् जनयन्ति
मरणभीतिं वा ॥ १२ ॥

पुरुषाणां द्वादशजन्माष्टमेषु गताः रविगुरुमन्दभौमास्तज्जन्म-
वतां पुंसां वित्तक्षयं प्रवासं रोगान् जनयन्ति । बहवो युगपत्तेषु
गताश्चेन्मरणभयं च कुर्वन्ति । तथाचाहु —

द्वादशाष्टमजन्मस्थाः शन्यर्कगुरुभूमिजाः ।

कुर्वन्ति प्राणसन्देहं स्थाननाशं धनक्षयम् ॥

इति । स्रग्धादीनां स्वामिवल्लभतया गोचरं फलं न सम्यगायातीति
पुंसामित्युक्तम् । वारशब्देन वेधाष्टवर्गाद्यानुकूले शुभमशुभं च सम्यगा-
याति, तद्विरोधे न सम्यग्भवतीति । तथाच श्रीपतिः—

सर्वे लाभगृहस्थिताः त्रिखरिपुण्ड्रकः कुजार्की त्रिषट्-

प्राप्तौ त्रयादिखमन्मथारिषु शशी स्वास्तारिवर्ज भृगुः ।

धीधर्मास्तधनेषु वाक्पतिररिस्वाष्टाम्बुस्वस्थो बुधः

श्रेष्ठो जन्मगृहाधिगोचरविधौ विद्धो न चेत स्याद्गृहैः ॥

इति । अत्र वेधो नाम जन्मतः स्थानविशेषगतग्रहस्य जन्मतत्स्थाना-
न्तरीस्थितेन ग्रहेण प्रोक्तफलापवादः, तद्विपरीतफलप्राप्तिश्च । एवं गोचर-
फलस्य वेधस्थानस्थो ग्रहो बाधकः । वामवेधे तु वेधस्थानस्थस्य ग्रहस्य
गोचरोक्तस्थानस्थग्रहान्तरेण वेधाच्छुभफलत्वम् । यथाऽऽह रल्लः—

एकादशे तृतीये दशमे षष्ठे च भास्करः शुभदः ।

यदि च ग्रहैर्न विद्धः पञ्चमनवमार्णवान्त्यगतैः ॥

जन्मानलर्तुसप्तमदशमैकादशगतः शशी शुभदः ।

यदि विषयनवद्वादशपक्षसमुद्राष्टगतैर्गृहतः ॥
 भ्रातृसरुद्रसंस्थावङ्गारकसूर्यजौ शुभफलौ स्तः ।
 यदि विद्धौ न स्यातां द्वादशनवपञ्चमोपगतैः ॥
 पक्षसमुद्रषडष्टमदशरुद्रगतः शुभावहः सौम्यः ।
 यदि न हतो विषयानलनवाद्यवस्वन्त्यगैः खचरैः ॥
 जीवोऽप्येकादशनवपञ्चमद्वितीयगः श्रेष्ठः ।
 यदि न हतोऽष्टमदशमभ्रातृचतुर्थान्त्यगैः खेटैः ॥
 रुद्रान्त्यपक्षवस्वेकवेदाशिखपञ्चनवमगः शुक्रः ।
 यदि न हतोऽग्निरसाच्चलविषयाष्टदिगेकनवभवगैः ॥
 एभिर्वेधैर्विद्धा विफलाः स्युर्गोचरे ग्रहाः सर्वे ।
 विपरीतवेधविद्धाः पापा अपि सौम्यतां यान्ति ॥
 इति । एवमविशेषेण सर्वस्य सर्वेण वेधप्रसङ्गे सूर्यसौरयोः सोमसौम्ययोः
 न वेध इत्याहुः । यवनाचार्येण —
 न शनैश्चरो दिनकरं दिवसकरो वा न वेधयेत्सौरम् ।
 एवं चन्द्रबुधावपि निर्दिष्टौ वेधतत्त्वज्ञैः ॥
 इति । अत्र केचित् जन्मतः स्थानविशेषगतस्य ग्रहात् स्थानान्तरगतेन
 वेध इत्याहुः । तदसत्, यत आह वासिष्ठः—
 जन्मराशिगतश्चन्द्रो जन्मतः पञ्चमे स्थितः ।
 ग्रहो यदाऽन्यो मुनिभिर्वेधगोऽनिष्टदः स्मृतः ॥
 इत्यादि । इदं जन्मराशिमधिकृत्य ग्रहगोचरज्ञानम् । जन्मलग्नमधिकृत्य
 तु शास्त्रान्तरस्थम् । यथा—
 तिग्मांशुर्दशषड्व्ययत्रिसुखगश्चन्द्रास्त्रिषट्कर्मगो
 वक्रोऽपि त्रिदशारिपुत्रगृहगः सर्वेऽप्युपान्त्ये शुभाः ।
 सौम्यस्त्रयाद्यदशाम्बुषष्ठसहितो जीवोत्रिरन्ध्रान्त्यगो-
 षट्खास्तान्त्यगतः सित सुखदशत्रयाचारिगः सूर्यजः ॥

इति । कदाचित् ग्रहस्य अन्यदृष्टियोगेन गोचरे नैष्फल्यं भवति ।
यथोक्तम्—

अशुभेक्षितः शुभफलो शुभफलदश्शुभनिरीक्षितश्चापि ।

द्वावप्यफलौ स्यातां रिपुणा च विलोकितो विफलः ॥

इति । नीचारिस्थाः शुभानि नाशयन्ति, पापानि वर्धयन्ति । तथा च
यवनेश्वरः—

द्विद्वेश्मगा नीचगृहे स्थिता वा

दुर्मार्गगाः सूर्यमनुप्रविष्टाः ।

उक्तं विनिघ्नन्ति शुभानि चैते

फलान्यनिघ्नान्यपि वर्धयन्ति ॥

मन्दस्यास्तं गतस्य सूर्यवत् फलम् । यथोक्तं रत्नकोशे—

रविजोऽर्कसमफलः स्यात् चन्द्रसुतश्चन्द्रसमफलः सहितः

अस्तंगतोऽपि रविजो निजं फलं नैव हापयति ॥

चन्द्रस्तु यादृशेन युक्तः तादृक्फलः । यथोक्तम्—

यादृशेन ग्रहेणेन्दुः युक्तस्तादृग्भवेत्सोऽपि ।

मनोवृत्तिसमायोगाद्विकार इव वक्रस्य ॥

ग्रहगोचरदौस्थित्ये कृतं कर्म शुभं न फलाय कल्पते । ग्रहमौस्थित्ये

कृतमल्पमपि कर्म महते फलाय कल्पते । यथोक्तम्—

प्रारब्धमसुस्थितैर्ग्रहैः यत् कर्मात्मविवृद्धये बुधैः ।

विनिहन्ति तदेव कर्म तद्वैतालीयमिव यथाकृतम् ॥

सौस्थित्यमपेक्ष्य यो ग्रहाणां काले प्रक्रमणं करोति राजा ।

अपि स पौरुषेण वृत्तस्यौपच्छन्दसिकस्य याति पारम् ॥

इति । ग्रहराशिसंक्रमे ताराबलमस्ति चेत् शुभम्, अन्यथा कष्टम् ।

अथोक्तगोचरफलाकालस्य व्यवस्था वराहमिरेणोक्ता ।

दिनकररुधिरौ प्रवेशकाले

गुरुभृगुजौ भवनस्य मध्ययातौ ।

रविसुतशशिनौ विनिर्गमस्थौ

शशितनयः फलदस्तु सार्वकालम् ॥

इति । वक्रातिचारराशिसन्धिषु फलविशेषो रत्नकोशेऽभिहितः—

झषसन्धिगताः खेटा राशिसन्धिगतास्तथा ।

एप्यराशेः फलं दद्युर्वक्रे तु विपरीतकम् ॥

सर्वे ग्रहा विकृतिजं दद्युः सांष्ट्रिकं फलम् ।

अतिचारे च वक्रे च दद्युः पूर्वफलं ग्रहाः ॥

तत्र च—

पक्षं दशाहानि तथैव सार्धं

मासं दशाहं खलु षट्च मासान् ।

भौमादिखेटास्त्वातिचारवक्रे

दद्युः फलं पूर्वगृहे यदुक्तम् ॥

इति । एवमुक्तं गोचरफलं ग्रहाणां तत्तद्राशिसङ्क्रमणकालचन्द्रताराबला-
नुगुण्येन योज्यम् । तच्च वेधाष्टकवर्गाभ्यां तदनुगुणमवसेयम् । तदपि
शुभाशुभदृष्टियोगेन नीचोच्चादिस्थित्या च तदनुगुणं चिन्तनीयम् ।
तत्रापि पाकेशमित्रारित्वादिवशेन फलं वाच्यम् । योगीन्द्रेण—

गोचरोक्तमफलं सति वेधे

सोऽष्टवर्गकविधौ स समाद्यैः ।

तच्च पाकजफले तदशक्यं

शक्तिमत्तमदशासु विरोधे ॥

जातिवंशपितृवासरदेशकालसदृशं देशोचितं जन्मकालिकदशाऽष्टवर्गकं
तत्कालशक्तिसदृशैः फलं वदेदिति ।

इह प्राणिनां प्राचीनकर्मपाकसूचकग्रहराशिकृतं फलं त्रिविधं ---
स्थिरमस्थिरं मिश्रं च । तत्र दशापाकादिजं स्थिरं, गोचराष्टवर्गाद्यस्थिरं
दशारिष्टादि मिश्रम् । तत्र स्थिरमवश्यं भोक्तव्यं शान्त्याद्यसाध्यम् ।
मिश्रं तु शुभयोगदर्शनाद्यनुग्रहे सति शान्त्यादिसाध्यं भवति । अस्थिरं
तु शान्त्यादिसाध्यं भवति । तस्मात् गोचरेणानिष्टो ग्रहः स्वपूजादिभिः
शान्तमिष्टं ददातीत्याह ---

इत्थं समस्तजगतामशुभं शुभं च संजा-
यते हि निखिलग्रहचारयुक्त्या । पूजास्तुतिप्रणति-
भिर्मुदिता ग्रहास्ते कुर्वन्त्यनिष्टगतयोऽपि जन-
स्य लक्ष्मीम् ॥ १३ ॥

इत्थमुक्तप्रकारेण ग्रहचारसामर्थ्येन सर्वेषां जगतां द्विपाच्चतुष्प-
दादीनां मनुजादीनां च प्राचीनकर्मपाकजमशुभं शुभं च फलं संजायते
सम्यग्वर्णितं प्रकाशितं जायते । हि हेतौ यत इत्यर्थः । पूजास्तुतिप्रण-
तिभिः ग्रहपूजास्तवननमस्कारैर्मुदितास्तुष्टास्ते ग्रहाः जनम्याऽनिष्टस्थान
गता अपि लक्ष्मीश्रियं कुर्वन्ति । अत्र गुरुः ---

ग्रहाधीनं जगत्सर्वं ग्रहाधीनाः सदाऽमरा ।
कालज्ञानं ग्रहाधीनं ग्रहाः कर्मफलप्रदाः ॥
सृष्टिरक्षणसंहारी सर्वेशोऽपि ग्रहानुगः ।
कर्मणां फलदातारः सूचकाश्च ग्रहाः सदा ॥

इति—

ग्रहाधीना नरेन्द्राणां उच्छ्रयाः पतनानि च ।
भावाभावौ च जगतां तस्मात् पूज्यतमा ग्रहाः ॥

इति । श्रीपतिश्च—

देवब्राह्मणवन्दनात् गुरुवचस्संपादनात् प्रत्यहं
साधूनामभिभाषणात् श्रुतिरवश्रेयःकथाकर्णनात् ।
भूमावध्वरदर्शनात् शुचिमनोभावात् जपात् दानतः
नो कुर्वन्ति कदाचिदेव पुरुषस्यैवं ग्रहा पीडनम् ॥

इति । अन्ये त्वाहुः—

ग्रहा गावो नरेन्द्राश्च ब्राह्मणाश्च विशेषतः ।
पूजिताः पूजयन्त्येते निर्दहन्त्यवमानिताः ॥
अश्रद्धाधानमशुचिमजपं त्यक्तमङ्गलम् ।
ग्रहा नयन्ति सुव्यक्तं पुरुषं यमसादनम् ॥

इति । ग्रहवैषम्ये सति प्रभुः स्वविभवानुसारेण तच्छान्तिकारिणां
ग्रहयज्ञात्मिकां पूजां कारयेत् ॥ तद्विधिरुच्यते—स च बहुमुनि-
मतानि समाहृत्य योगीन्द्रेण प्रपञ्चित एवाऽस्माभिरभिधीयते ॥

अथ प्रणम्येश्वरमश्विरात्मानां
विधिग्रहाणां यजनस्य वक्ष्यते ।
स नित्यनैमित्तिककाम्यभेदतः
त्रिधाऽथ ते स्युर्वरमध्यमाधाः ॥

स च दिनेदिने भानुवारे त्रिजगर्क्षे अष्टम्यमावास्यायां विष्कम्भादिनवदु-
योगेषु मासिमास्यृतावृतावयने विषुवेऽर्के भौमजीवार्किराशिसङ्क्रान्तिषु
ग्रहणे व्यतीपातादिषु च नित्यः । यज्ञोपनयनोद्वाहपुत्रजन्माद्युत्सवप्रति-
ष्ठाप्रवेशयात्रायुद्धारम्भग्रहपीडादुष्कर्मपाकभयरोगादिव्यसनोत्पातादिषु नै-
मित्तिकः । दैवभूतमानुषाद्युद्भवभयरोगशान्त्यर्थमायुर्वित्तपुत्रपश्वादिपुष्ट्यर्थं
वृष्ट्यादीष्टप्राप्त्यर्थं पराभिचारार्थं च क्रियमाणः काम्यः ॥ स च
प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरसहस्राहुतिसङ्ख्यो मुख्यः । अष्टोत्तरशतसङ्ख्यो मध्यमः ।

अष्टाविंशतिसङ्ख्यः कनीयान् । अत्र गुरुः—

अष्टोत्तरसहस्रेण शतेनाष्टोत्तरेण वा ।

अष्टाविंशतिना वाऽपि मुग्यमध्याधमैर्हुतैः ॥

क्रमादारभ्य सर्वेषां ग्रहाणामर्कपूर्विणाम् ।

नवानां यजनं कार्यं समिदन्नघृतस्तथा ॥

एकाग्रयेकाध्वरं नवाग्निनवाध्वरं वा एकाग्निनवाध्वरं कार्यम् । तत्र नवाध्वरे
यथालाभं ग्रहशाखावयोरूपान्विता ऋत्विजः स्युः । तथा च गुरुः—

वयसा रूपतश्चैव गुणेन कथितैः मम ।

ग्रहस्य विप्रमुग्यो य स तस्यैवारभेत् बुधः ॥

एकाध्वरे ऋत्विगेव आचार्यः । स च—

युवा सौम्यो द्विजो विद्वान् ग्रहचारादिकालवित् ।

ग्रहभक्तः पटुर्धर्मान् सदाचाररतः शुचि ॥

अथ सर्वत्र नवाध्वरे ग्रहार्चनकलशस्थापनाभिषेकपूर्वात्तरतन्नादि-

साधारणकर्मार्थं पृथगाचार्यो वरणीय । सर्वत्र ब्रह्मा तत्राङ्गतो न नित्यः ।

एकाग्निनवाध्वरे तमेव केचिदाचार्यमिच्छन्तो न पृथग्यरणमाचरन्ति ।

नवाग्निपक्षे तत्तद्वत्किर्तृकं तत्तत् ग्रहादिपूजनं तत्तदग्निपूर्वात्तरतन्नादि

च कलशस्थापनं ब्रह्मकर्तृकं मुख्यकर्तृकं वा एतच्च ग्रहाद्यर्चनं कुण्डे

स्थण्डिले वा कार्यम् । अनुदिनहोमात्मकं तु कुण्ड एव । एकाग्रौ

तु कुण्डं चतुरश्रं हस्तमितं तावत्खातं चतुस्त्रिद्वयङ्गुलत्रिमेखलं

चतुरङ्गुलैकमेखलं वा स्यात् । अर्चनाय नव कोष्ठानि सकर्णिकमष्टदलं

वा कार्यम् । तत्र स्वस्वदिक्षु ग्रहाणां स्वस्ववर्णैः स्वस्वमण्डलानि कुर्यात् ।

तद्यथा —

भानुभार्गवसोमारराहुभानुजकेतवः ।

गुरुसौम्यौ च मध्यादिदिक्षु पूज्याः प्रदाक्षिणम् ॥

वर्णं कुण्डं स्थानं च तत्रैवैकैकस्मिन् मण्डले गृह्यतदधिदैवत प्रत्यधिदैवतै-
 प्रतिमास्थापनार्थं मध्यदक्षिणसव्यभागेषु श्वेततण्डुलैः त्रीणित्रीणि वृत्तमण्ड-
 लानि स्युः । नवाग्निपक्षे नव कुण्डाः होतृस्थानवेदिपर्याप्तस्थण्डिले मध्या-
 द्युक्ततत्स्थानेषु उक्तवन्नवकुण्डानि स्थण्डिलानि वा कृत्वा तत्तत्पुरतः प्रादे-
 शचतुरश्रपञ्चाङ्गुलोच्चवेद्युपयुक्तवृत्तादिनवमण्डलानि सान्तस्त्रिवृत्तानि स्युः ।
 यद्वा होमकुण्डानि स्थण्डिलानि च वृत्ताद्याकाराणि कार्याणि तेषु मण्डलेषु
 वलयितताम्रस्फटिकरक्तचन्दनस्वर्णहेमरजतायःसीसकांस्यमय्यो बुधगुरु-
 राहूणांशुक्तिमृत्सुवर्णमय्यो वा अलाभे सर्वेषां कर्षादिमाषावरमानस्वर्णमय्यो
 वा तत्तद्दर्शगन्धे वा पटे मण्डले वा लिखिता स्वमण्डलस्थदर्भकूर्चेषु व्यान-
 मय्यो वा वक्ष्यमाणपद्मासनादिद्विभुजत्वादिमूर्तिध्यानसदृशाकारा अधि-
 दैवतप्रत्यधिदैवतयोश्च तत्तज्ग्रहोक्तद्रव्यमय्यः शिल्पशास्त्रादिसिद्धत्रि-
 णेत्रचतुर्भुजशूलस्रुवादिहस्ता वृषमेषारूढत्वाद्याकाराः स्वेच्छ्रयासाष्टश-
 ताङ्गुलकृत्तिकल्पितमुखाद्यङ्गाः प्रतिमाः कार्याः । केचित्सुवर्णस्य सर्वदै-
 वत्यार्थश्रुतेर्मुख्यगौरवाच्च गोणत्वायोगात् ग्रहाद्यर्चनासु सौवर्णत्वं मुख्य-
 त्वेन आचरन्ति—

अग्निस्तु साग्निना ग्राह्यः सोऽन्यैः श्रोत्रियगेहतः ।

अग्निनामानि—

कपिलः पिङ्गलो धूमकेतुः स्यात् जाठरः शिखी ।

हाटकश्च महातेजा हुताशो रौद्र इत्यपि ॥

नवानामग्नयः प्रोक्ताः ग्रहाणामर्कपूर्विणाम् ॥

विधिश्च यजमानगृह्योक्तो विप्राणां । पुरोहितगृह्योक्तः क्षत्रियाणां विशां
 च । आचार्यगृह्योक्तोऽन्येषां । आचार्यो ग्रहर्त्विगेव । समिधः अर्काद्याः ।
 एषामभावे पालाशः सर्वेषां स्युः सलक्षणाः प्रादेशमात्र्यः सत्वक्का
 नात्यङ्गुष्ठस्थविष्टकाः । खादिराः स्रुवः । पालाशी जुहूः । वैकङ्कती

प्रोक्षणपात्री । एषामन्यतमादश्चत्थाद्वा सर्वं प्रणीतादिपात्रम् ॥ नवामौ
प्रत्याग्निं सुवादिकं सर्वं बह्वध्वरे प्रतिहोतृ जुहः सुवौ अधिदैवतं
प्रत्यधिदैवताया रचिततत्तज्ग्रहवदर्चनद्रव्यादिसमिदादिकं । यद्वा —

पालाशवटरक्तकरवीरमधूकपिप्पलपनससालशमीखदिरेभ्यः क्रमात्
ग्रहाणां सुक् समिधः । राहो विभीतकाद्वा सूर्यादिपूजने गन्धान् योज-
येत् । रक्तचन्दनं —

सुगन्धं मलयोद्धृतं रक्तचन्दनकुङ्कुमे ।
प्रियङ्गुकुङ्कुभादीनि पीतश्रीखण्डकुङ्कुमे ॥
श्वेतचन्दनपूर्वाणि शैलेयमृगनाभिजे ।
कृष्णं कालेयमुस्तादि उशीरं पञ्चवर्णकम् ॥
यथालाभमस्मिन् स्युः ग्रहवर्णसमानि वा ।
वकुळार्कपलाशादि कुमुदादि सितानि च ॥
रक्तोत्पलजपादीनि चम्पकाशोकजातिकम् ।
कल्हारशतपत्रादि जात्यादीनि सितानि च ॥
काळाञ्जनादि कृष्णानि सिन्धुवारादि चासितम् ।
वन्यानि चित्रपुष्पाणि सूर्यादीनां प्रपूजने ॥
अन्यानि वा सुगन्धीनि ग्रहवर्णसमानि तु ।
सूर्यादीनां कुन्दुरुकं गुडसर्पिश्च गुग्गुलुः ॥
अगरुः स्यात् सर्जरसोऽगरुर्लक्षा च गुग्गुलुः ।
नवश्चेति क्रमाद्गुपाः सर्वेषां वाऽथ गुग्गुलुः ॥
नववर्त्या प्रदातव्यः प्रदीपो गोघृताक्तया ।
गुडौदनं पायसान्नं रक्तान्नं क्षैरिकं तथा ॥
दध्यन्नं च हविष्यान्नं तिलान्नं पिशितौदनम् ।
चित्रान्नं चेति नैवेद्यं हौम्यं भोज्यं च सूर्यतः ॥

भविष्यद्वापि सर्वेषां सर्वं होम्यादि गृह्यते ।

अथवा कुजादीनां गन्धान्नपायसवटकवृत्तान्नपैष्टिकतिलान्नमापानानि ग्रह-
भक्ष्याणि । द्राक्षेक्षु खर्जूरनारङ्गजम्बीरबीजपूरपिण्डखर्जूरनालिकेरकदली-
फलानि । ग्रहभूषणानि माणिक्यं मुक्ताः विद्रुमं मरकतं पुःयरागस्वर्णं
वज्ररजते नीलं गोमेधिकं वैडूर्यमिति । एकाध्वरं प्रकृत्य प्रयोग
उच्यते—

यजमानः शुचि स्नातः शुद्धवासाः स्वलङ्कृत ।

संभृताखिल सम्भारः कृतावश्यकनैत्यकः ॥

सुभूमौ विधिवत् कृत्वा कुण्डस्थण्डिलपूर्वकम् ।

यथासंभवतः काले ग्रहताराबलान्विते ॥

दर्भासनो दर्भपाणिः प्राञ्जुस्व कृतसंयमः ।

कर्तुर्नाम च गोत्रं च नक्षत्रं जनकस्य च ॥

नाम्ना सहाऽऽयुराद्यर्थमिति चोक्त्वाऽभिवृद्धये ।

ग्रहयज्ञेन यक्ष्ये इति सङ्कल्प्य स्वस्ति ;

पुण्याहं प्रोक्षणं कृत्वा सर्वतः प्रोक्षयेत् स्थलम् ।

अमुष्मिन् ग्रहयज्ञे तु त्वमाचार्यो भवेत्यथ ॥

कुलशीलवयोरूपवित्ताध्ययनसंयुतम् ।

विधिज्ञं शुचिमार्चार्यं वृत्वा तं कृतनैत्यकम् ॥

अर्चयेद्गन्धपुष्पार्घ्यवस्त्रालङ्कारादिभिः ।

कल्पितं ग्रहयज्ञार्थं द्रव्यजातमिदं मया ॥

यथा दैवतमेतन्न मम विद्वन्नतस्त्विदम् ।

यथा दैवतमाधेहि जुहुध्यर्च निवेदय ॥

इति—

आचार्यमनुजानीयात् अथाचार्यस्स्वयं सुधीः ।

स्थण्डिलं प्रतिपद्याग्निं स्थानोल्लेखनपूर्वकं ॥

विधायाम्निनिधानान्तं कर्म कुर्यात् ग्रहार्चनम् ।

मध्ये तु वह्निस्थानं स्यात् ग्रहस्थानं तु पूर्वतः ॥

ऐशान्यां कलशस्थानमेवं स्थानानि कल्पयेत् ।

मध्यादिदिक्स्थवृत्तादिमण्डलस्थानेष्वदित्यादीनां साधिदैवतप्रत्यधिदैव-
तानां प्रतिमां न्यसेत् ।

रवीन्दू पश्चिममुखौ दक्षिणास्यौ कुजध्वजौ ।

प्राञ्जुखाः पातविट्छुक्राः गुरुमन्दाबुदञ्जुखौ ॥

रवेरभिमुखाः सर्वे पूज्याः स्युरिति केचन ।

अर्चकाभिमुखा इत्यन्ये । एवं तत्तद्दिञ्जुखीस्तत्तत्प्रतिमाः न्यस्य तासु
तानावाहयेन । तच्च व्यस्तसमस्तव्याहृत्यन्ते तत्तन्मन्त्रान्ते च द्विती-
यया तत्तन्नामोक्त्वाऽऽवाहयामीत्यावाहनं कार्यम् । तद्यथा—

ॐ भूरादित्यं भुव आदित्यं सुवरादित्यं ॐ भूर्भुवस्सुवरादित्य-
मावाहयामीति । ॐ आसत्येन विपश्यन् । आदित्यमावाह-
यामीति । एवं सोमाङ्गारकबुधबृहस्पतिशुक्रशनैश्चरराहुकेतूनामावाहनं ।
एवं सर्वत्र तत्तज्जगद्वाहनानन्तरं तत्तदधिदैवताप्रत्यधिदैवतयोरावाहनं
तद्यथा—

ॐ भूरदित्याधिदैवतमग्निमावाहयामि इत्येवं व्याहृतिना अग्नि-
न्दूतं . . . आदित्याधिदैवतमग्निमावाहयामि । ॐ भूरादित्यप्रत्यधि-
दैवतमीश्वरमावाहयामीति । ॐ भूर्भुवस्सुवरादित्यप्रत्यधिदैवतमीश्वरमा-
वाहयामीति । त्र्यम्बकं . . . आदित्यप्रत्यधिदैवतमीश्वरमावाहयामीति ।
एवमन्येषामूह्यम् । यद्वा—पूर्वं नवग्रहाः ततो नवाधिदैवताः ततः
प्रत्यधिदैवताः आवाह्याः ।

अग्निरापो मही विष्णुरिन्द्रेन्द्राण्यौ प्रजापतिः ।

सर्पा ब्रह्मेति सूर्यादिग्रहाणामधिदेवताः ॥

प्रत्यधिदेवतास्तु—

रुद्रा गौरी कुमारश्च विष्णुर्ब्रह्मा अर्चीपतिः ।

यमः कालोऽग्निरित्येता ग्रहप्रत्यधिदेवताः ॥

केचिद्रुद्रादीनाधिदेवताः अग्न्यादीन् प्रत्यधिदेवताः ग्राहुः । होमाभावपक्षे अधिदेवताप्रत्यधिदेवतयोः पृथक् स्थानार्चनावाहनादिकं नास्ति । ग्रहपूजाकाले ग्रहा एव तत्तद्देवतात्मतया ध्येयाः । मूर्तिध्यानादीनि कथ्यन्ते—व्याहृतीनां विश्वामित्रजमदाग्निभरद्वाजाः क्रमादृषयः । गायत्री-तृष्टुबनुष्टुप्लन्दांसि । अग्निवायुसूर्या देवताः । समस्तानां प्रजापतिः बृहती आदित्यस्य 'आसत्येने' हिरण्यस्तूपस्तृष्टुप् सविता । आकृष्णेनेति अधिदेवताग्ने ; 'अग्निं दूतं' मेधातिथिर्गायत्री अग्निमूर्तिध्यानं इत्येवं सूर्यादिग्रहानावाह्य सकलीकृत्य ध्यात्वा प्रत्युपचारं तारं व्याहृतीर्विचार्य चतुर्थ्या ग्रहदेवतानामोक्त्वा इदं ददामीति क्रियामाणोपचाराभिधानपूर्वमासनादिकं दद्यात् । इत्युपचारान् दत्वा आपोहिष्ठादिभिरन्त्रिज्जैर्मन्त्रैः स्नानं । ग्रहवर्णानि वस्त्राणि ग्रहरत्नमयान्याभरणानि सर्वेषां धूपः गुग्गुलुर्वा गोघृताक्तग्रहवर्णनववतिप्रदीपं ग्रहोक्तानि नैवेद्यानि हविष्यं वा सर्वेषां आचमनीयभक्ष्यमुखवासताम्बूलदानादिकं । ऐशान्यां कल्पितकलशे प्लक्षवटाश्वत्थजम्बूदुम्बरत्वग्रसं पलवानि तत्तन्मन्त्रसंयोजितं पञ्चगव्यं च पञ्चरत्नानि गन्धाक्षतपुष्पकुशफलानि कुष्ठमांसिहरिद्राद्वयमुराशैलेयचन्दनवचाकाचारमुस्ताः समस्तौषधीश्च व्याहृत्या गोगजाश्वशालारथ्यावलमीकसङ्गमद्दमृदो 'बलित्थे' त्यूचा क्षिप्त्वा अश्वत्थादिपलवैराच्छाद्य तस्मिन् समुद्रादीनावाहयेत् ।

एहि गङ्गेऽत्र यमुने गोदावारि (नमोऽस्तु) सरस्वति ।

नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥

वरुणं चावाह्य व्याहृत्यादिमन्त्रैरर्चयेत् । मार्जनपक्षे कलशस्थापनादि कार्यं ।
अग्न्यन्वाधानाद्यग्निमुखान्तं कर्म कृत्वा 'आसत्ये' नादिग्रहमन्त्रैः पक्वं
हुत्वा समिदाज्यचरूणामाज्यानां वा प्रत्येकमष्टसहस्रमष्टशतमष्टाविंशति
वा प्रतिद्रव्यं जुहुयात् । द्रव्यान्तरेषु 'मूर्धानं दिव' इति पूर्णाहुतिं
कुर्यात् । समिदनन्तरं तिलहोमोऽपि कौश्विदुक्तः । एवं त्रिभिर्मन्त्रैस्सङ्क-
लिप्ताष्टशताद्याहुतिसङ्ख्यासम्पूरणं गुरुः---

प्रत्येकमेषां मन्त्रास्त्युस्रयीसङ्ख्यास्त्रिभागशः ।

एक एवाऽथवा मन्त्रः समिदन्नवृतेषु च ॥

एवं कलिप्ताहुतिसङ्ख्यां त्रिधा विभज्य त्रिभिर्मन्त्रैर्होमः कर्तव्यः सर्वत्र
समिदो वृताक्ता हस्तेन होतव्या । अत्र प्रस्थधान्यान्नेन तदर्धयव-
तिलेन तदर्धघृतेन च चतुष्टिराहुतष्टिं सप्पाद्या मा सर्वेषु होमेषु
यजमानो द्रव्यप्रक्षेपकाले अमुष्मा इदं न मेमति प्रतिद्रव्याहृत्यनुस-
धानं विदध्यात् । ततश्चरुशेषं सकृत् सकृदवदाय 'सोमं राजानमिति'
स्वगृहोक्तस्विष्टकृन्मन्त्रेण वा जुहुयात् । प्रणीताप्रोक्षणान्ते यजमा-
नस्य कलशोदकेन आचार्यः 'सुरास्त्वामित्यादि' मन्त्रैरभिषेकं कुर्यात् ।
स्विष्टकृद्धोमान्ते मार्जनं कुर्वन्ति ।

सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।

वासुदेवो जगन्नाथः तथा सङ्कर्षणो विभु ॥

प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते ।

आखण्डलोऽग्निर्भगवान् यमो वै निर्ऋतिस्तथा ॥

वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्ष तथा शिवः ।

ब्रह्मणा सहितः शेषो दिक्पालः पान्तु ते सदा ॥

कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मतिः ।

बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिः तुष्टिः कान्तिश्च मातरः ।

एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु धर्मपत्न्यः समागताः ॥
 आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधो जीवः सितोऽर्कज ।
 ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः ॥
 देवदानवगन्धर्वयक्षराक्षसपन्नगाः ।
 ऋषयो मनवो गावो देवता देवमातरः ॥
 देवपत्न्यो द्रुमा नागाः दैत्याश्चाप्सरसां गणाः ।
 अस्त्राणि सर्वशस्त्राणि राजानो वाहनानि च ।
 औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाः शुभाः ॥
 सरितः सागराः शैलाः तीर्थानि जलदा नदाः ।
 एते त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वकामार्थसिद्धये ॥

इति । पौराणिका वैदिकाश्च समुद्रा आप । इत्यादयः ।
 प्रणीतोदकेनान्येन वा ' आपोहिष्ठेति ' ' हिरण्यवर्गाश्शुचयः ' ' पवमा-
 नस्सुवर्चनः ' इत्यनुवाकेन मार्जयेत् ।

अथ होमकर्तृभ्यो दक्षिणां दद्यात् । ब्राह्मण कपिलां धेनुमा-
 दित्याय ते ददामीति ; ब्राह्मण शङ्खं सोमाय ते ददामीति ; रत्नमनङ्गाह-
 मङ्गारकाय काञ्चनं बुधाय ते ददामि । पीतवस्त्रयुगं बृहस्पतये श्वेताश्च
 शुक्राय ते रजतं वा ।

यस्मात् त्वं पृथ्वी सर्वा धेनुः केशवसन्निभा ।

सर्वपापहरा नित्यमतश्शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

शनैश्चराय कृष्णां गां ते ददामि आयसं राहवे छागं केतवे
 उक्तदक्षिणाभावेन गावो वा दक्षिणाः । सुवर्णभूषिता गाः आदित्यादि-
 भ्यस्ते ददामि सुवर्णमुक्तदक्षिणामूल्यत्वेन आदित्यादिभ्यस्ते ददामीति
 दक्षिणावस्त्रादिभिराचार्यब्राह्मणौ पूज्यौ । पूर्वं यथा आवाहयामीति
 पठित्वा आवहिताः तथोद्वासयेत् । ब्राह्मणभोजनं बुद्धसाद्गुण्याय स्वस्ति-
 वाचनं कुर्यात् ।

नवाग्निनवाध्वरपक्षे तु—वृत्तार्चिताः ऋत्विजः ।

स्वकुण्डस्य पश्चादुपविश्य अग्निं प्रणीय कपिलादिस्वस्वाम्नीनभ्यर्च्य तत्त-
द्वेद्यां ग्रहादीनामावाहनाद्युपचारान् कुर्युः । आचार्यः कलशाद्यर्चनस्थापन-
वरुणाद्यर्चने कुर्यात् । अग्न्याधानादिसमिदादिहोमान्तं कुर्युः । तदनन्तर-
मत्र केचित् सौराग्नेयरौद्रसूक्तैः प्रत्यग्न्याज्येनोपहोमान् कुर्वन्ति । यथा-
तत्र मन्त्राः—‘सूर्या मेनादिव’ इति सूक्तस्य चक्षुर्गायत्री सूर्याः ।
‘उदुत्यं प्रस्कण्वःगायित्रीसूर्याः अन्यास्तृचोऽनुष्टुभः । ‘नमोरुद्र-
स्येति’ सूक्तस्य अभितपसःजगतीसूर्याः । ‘चित्रं देवानां’ गृत्तं
तृष्टप् सूर्याः ‘तद्वोद्यमा नाम’ इति त्रृचस्य वसिष्ठवृहस्पतिसूर्याः ।
‘उत्सूर्या’ वसिष्ठरतृष्टप् सूर्याः ‘द्वेति’ पञ्चर्चस्यापि । एतानि सौराणि
सूक्तानि ॥

‘त्वमग्ने प्रथमः’ ‘हिर त्यग्नयः’ त्वमग्ने
द्युभि गृत्तसमदजगत्यग्नयः । एते आग्नेये सूक्ते ॥

‘कद्रुद्राय’ कण्वो गायित्री रुद्राः ‘इमा रुद्राय तपसे’ कुत्स-
जगतीरुद्राः । ‘आ ते पिता’ गृत्तसमदस्तृष्टप् रुद्रा । एतानि रौद्राणि
सूक्तानि ॥

एते चोपहोमनामानः नवाग्निनवाध्वरपक्ष एव । अथ त्रिष्टुतं
प्रचार्याचार्यो यजमानमभिषिञ्चेत् मार्जयेद्वा ॥ शेषमन्यत् प्राग्वदिति ॥

अथ यो विशेषः स उच्यते । आचार्यः प्राग्बत् संकल्प्य
अग्न्याधानादिकं सर्वं पूर्ववत् । वेद्यां विनायकादिप्रतिमाश्च न्यस्य तासु
ग्रहादीनावाह्य विनायकादीन् व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिस्तत्तद्वाग्निश्चावाह्य
समस्तव्याहृतिपूर्वकं चतुर्थ्यन्तं तत्तन्नाम्नैवासनादिकं दद्यात् विनायकस्य
‘आतून इन्द्र’ कुसीदो गायित्री विनायकाय ‘दुर्गाया जातवेदेस’
काश्यपस्तृष्टप् । वायोः ‘काणाशिशुः’ त्रित उष्णिगवायुः । आकाशस्य

‘आदित्प्रश्नस्य’ वत्सो गायत्र्याकाशः । अश्विनोः ‘एषोऽपा’ प्र-
स्कण्वो मायत्र्यश्विनौ । वस्त्रगन्धादीनि नैवेद्यतांबूलान्तानि सर्व प्राग्वत् ।
पृथिव्यादिपञ्चतत्त्वान्यावाह्यार्चयन्ति । तन्मन्त्रा उक्ताः—पृथिव्या
‘भूमिर्भूमना’ । अपां ‘इमं मे वरुण’ अग्नेः ‘अग्निं दूतं’ काणा-
शिशुः । ‘आदित्प्रश्नस्य’ अन्वाधानाद्यग्निमुखान्तं प्राग्वत् । अथ-
त्विजः समिदादि जुहुयुः । द्वात्रिंशद्देवतानां प्रत्येकमष्टाविंशतिः दधि-
मधुघृताक्तसमिद्धोमः । तावत्संख्या घृतहोमाः । चरुभक्ष्यफलैश्च प्रतिद्रव्यं
दशसङ्ख्यो होमः सयवव्रीहिलौ च । अत्र केचित्—ग्रहव्यतिरिक्त-
देवानां समिदाज्ययोरपि दशसङ्ख्याहोममाचरन्ति । एताः सर्वाः आहु-
तीः सममृत्विजो विभज्य जुहुयुः । नवत्विक्पक्षे एकाग्निनवाध्वरवत् ।
तत्तद्वत्किं कर्तृकौ तत्तद्ग्रहपूजाहोमौ । विनायकादीनामाचार्योऽर्चक होता
च । सर्वत्र आचार्यकर्मणि ब्रह्मणैव विनायकादिग्रहाद्यर्चनं विनायकादि-
होमं पूर्वोत्तरतन्त्रं च कारयन्ति । स्विष्टकृतं पूर्णाहुतिं च जुहुयात् ।
कलशोदकं द्विजैस्सार्धमाचार्यो यजमानमभिषिञ्चेत् मार्जयेद्वा ॥ आचा-
र्याय दक्षिणां दद्यात् सर्व प्राग्वत् । स एष ग्रहयज्ञः देवप्रतिष्ठादि-
कर्मस्वादौ विधेयः मात्स्यपुराणे—

विवाहोत्सवयज्ञेषु प्रतिष्ठादिषु कर्मसु ।

निर्विघ्नाय विधातव्यस्तत्तद्ग्रहतहुतेषु च ।

द्वादशाहःसमस्तेषु नवग्रहमखः स्मृतः ॥

तस्मान्न दक्षिणाहीनं कर्तव्यं भूतिमिच्छता ।

संपूर्णया दक्षिणया तस्मादेकोऽपि तुप्यति ॥

सर्वग्रहहोमाशक्तौ कतिपयग्रहानुकूल्ये वा सर्वान् ग्रहानावाहनाद्युपचारै
दुःस्थग्रहं वस्त्रभूषणादिभिरभ्यर्च्य तस्य समिदादिद्रव्यहोमं सदक्षिणं
कुर्यात् ।

केचित् दुस्थं ग्रहं सूर्येण सहार्चयन्ति ।

... 'यं पूजितुमिच्छति'

सहैव भास्करेणासावर्चनीयो न केवलः ॥

इति । होमाशक्तौ स्थण्डिले ग्रहानावाह्य आराध्य ग्रहादिमन्त्रान् होमद्वि-
गुणसङ्ख्यं वा जपित्वा यजमानमभिषिञ्चेत् । स तस्मै प्रोक्तदक्षिणां
दद्यात् । अर्चनाशक्तौ ग्रहबुध्या तत्समसङ्ख्यान्विप्रानमुष्मै नम इति
तत्तन्नाम्नाभ्यर्च्य तत्तदुक्तद्रव्यं गवादि निष्कादि स्वर्णं वा दद्यात् ।
दानाशक्तौ यजमानः स्वसुहृद्वाऽमु तर्पयाम्यमुं तर्पयामीति तत्तन्मन्त्रैः
ग्रहदेवतातर्पणं होमसमसङ्ख्यं कुर्यात् ॥ ग्रहपूजादिफलमुक्तम्—

अनेन विधिना यस्तु ग्रहपूजां समाचरेत् ।

सर्वान् कामानवाप्नोति प्रेत्य स्वर्गे महीयते ॥

एतत् पुण्यं कृतं येन तेन तद्धि महात्मना ।

प्राप्यते महती लक्ष्मीर्मुच्यते चापदस्ततः ॥

रोगारिराजबाधाश्च भयान्यन्ये च मृत्यवः ।

तुष्टग्रहप्रसादेन मुच्यन्ते नाऽत्र संशयः ॥

लभ्यते महदायुश्च विजयश्च रणे सदा ।

अभिप्रेतार्थसिद्धिश्च भवेत् तस्य न संशयः ॥

यथोचिता प्रदेयाऽत्र दक्षिणा तोषिते ग्रहे ।

अध्वर्युभ्यो न चेदेवं प्रत्येकं च दिने दिने ॥

अवश्यं देयमेवाऽत्र चत्वारिंशद्यवावरम् ।

मुवर्णं फलमिच्छद्भिर्नोचेदफलदा ग्रहाः ॥

त्वयापीन्द्र ततः कार्यं ग्रहयज्ञं दिने दिने ।

किंपुनर्मानवैरन्यैः नृपैर्वा विजगीषुभिः ॥

यज्ञाशक्तौ तु सर्वेषां ग्रहाणां तु समन्त्रकैः ।

जपेद्वा विप्रमुख्यैस्तु दत्त्वा चात्रोक्तदक्षिणाम् ॥

. अशक्तस्तु जपे दद्यात् अनुरूपोक्तदक्षिणाम् ।

तदभावे तु तन्मन्त्रैः तर्पयेच्च पृथक् पृथक् ॥

अतिपातिषु कार्येषु सर्वान् कृत्वा फलं लभेत् ।

इति । यदेयं ग्रहपूजा राजादीनां विजययात्रायां क्रियते तदा यियासित-
तत्तद्दिगीशार्चनेन सह कार्या । यथा यियासितादिक्पालस्येन्द्रादेः स्वर्ण-
मयीं प्रतिमां कृत्वा तद्दिशि न्यस्य व्याहृतिपूर्वकं तत्तद्दिग्भिरावाह्य
पूजयेत् । मन्त्रा यथा—इन्द्रादीनां ‘ इन्द्रं वो विश्वतः ’ ‘ अग्निन्दूतं ’ ।
‘ यमाय सोमं ’ अष्टव्ययमः पराकळो गायित्री निरुक्ततिः ‘ त्वन्नो
अग्ने वामदेवस्तृष्टुर्वरुणः ‘ तव वायो वसुनो ’ गायित्री वसुः । ‘ सोमो-
धेनुं ’ गौतमस्तृष्टुप् सोम कृत्वा हेम्ना दारुणा वा
तन्मन्त्रेणाकृतिं यजेत् । तद्वर्णगन्धवस्त्राद्यैरेव तत्तद्दिगीश्वरमिति । स्नान-
विधिश्च रत्नकोशेऽभिहितः—

सुरदारुकुङ्कुमैलामनश्शिलामधुकपञ्चकोशीरैः ।

ताम्रैः कुसुमैश्च रवौ विषमस्थानस्थिते स्नानम् ॥

शङ्खनवकुमुदाक्ता. स्फटिकद्विपदन्तपञ्चगव्ययुता. ।

स्नानापः शस्यन्ते शशिवैकृतनाशने राज्ञाम् ॥

केसरचन्दनबिल्वैः मांसिबलाहिङ्गुलीकपिलिनीभिः ।

रक्तैः कुसुमैश्च युतं भौमाशुभनाशनं स्नानम् ॥

फलमूलकनकशुक्तिमधूकगोमयरोचनाक्षतामिश्रैः ।

स्नानं शशाङ्कतनये विषमस्थे शस्यते राज्ञाम् ॥

मदयन्तिकापलाशैः सिद्धार्थकमधुकजातिकुसुमैश्च ।

संयुक्तं वारि हितं विषमस्थानस्थिते जीवे ॥

कुङ्कुममनश्शिलैलाफलमूलसमन्विताम्भसा स्नानम् ।

विषमस्थिते भृगुसुते मुनिभिर्नृणां समुद्दिष्टम् ॥
कृष्णतिलाञ्जानलोघ्रैः शतपुष्पाभद्रमुस्तफललाजैः ।
स्नानं दिनकरतनये शुभवैषम्यं समुत्सृजति ॥

स्नानफलमुक्तं—

औषधैर्व्याधयश्शान्तिं यान्ति यद्वच्छरीरिणाम् ।
मन्त्रैश्च दुःखसन्नासात् स्नानैः तद्वत् सुखप्रदाः ॥
अनपत्या च या नारी दुर्भगाऽपि च या भवेत् ।
स्नानैरेतैर्भवेत् स्नाता सौभाग्यापत्यभागिनी ॥

तत्तद्द्रव्यदानैस्तत्तद्दोषशान्तिर्भवति—

कटकं कजकं धेनु काश्मीरं रक्तचन्दनम् ।
दैवज्ञाय ददन्नित्यं कर्कदोषं विमुञ्चति ॥
चन्दनं कनकं वस्त्रं रजतं शङ्खमौक्तिके ।
दैवज्ञाय ददन्नित्यं चन्द्रदोषं विनश्यति ॥
ग्रीहितण्डुलफार्णसान् रक्तोक्षं कनकं मणिम् ।
दैवज्ञाय ददन्नित्यं वक्रदोषं विनश्यति ॥
कर्पटं काकग्रीहीन् चन्दनागरुकुङ्कुमम् ।
दैवज्ञाय ददन्नित्यं सौम्यदोषं विनश्यति ॥
सुवर्णमणिशङ्खान् भूगिणाभरणं गृहम् ।
दैवज्ञाय ददन्नित्यं जीवदोषं विनश्यति ॥
पानीयं पल्लमुक्ताश्वरजतं कांस्यमाढकम् ।
दैवज्ञाय ददन्नित्यं शुक्रदोषं विनश्यति ॥
ग्रीहिमाषतिलान् लाजान् कृष्णधेन्वगरुं मणिम् ।
दैवज्ञाय ददन्नित्यं मन्ददोषं विनश्यति ॥
सीसकं गन्धकं रज्जुं कर्पटं तिलमाषकम् ।

दैवज्ञाय ददन्नित्यं राहुदोषं विनश्यति ॥

छागं माषतिलाद्यं च सीसं कासीसमायसम् ।

दैवज्ञाय ददन्नित्यं केतुदोषं विमुञ्चति ॥

तत्तद्ग्रहदोषैः तत्तद्ग्रहानि धारयेत् । श्रीपतिः—

माणिक्यं तरणेः सुजात्यममलं मुक्ताफलं शीतगोः

माहेयस्य च विद्रुमं मरकतं सौम्यस्य

देवेऽङ्गस्य तु पुष्परागमसुराचार्यस्य वज्रं शनेः

नीलं निर्मलमन्ययोर्निगदिते गोमेधवैडूर्यके ॥

भार्यं तुष्ट्यै विद्रुमं भौमभान्वो

रूप्यं शुक्रेन्द्रोश्च हेमेन्दुजस्य ।

मुक्ता सौरेर्लोहमर्कात्मजस्य

राजावर्तः कीर्तितः शेषयोश्च ॥

तत्तद्ग्रहकृतदोषशान्त्यै धार्यमिति शेषः । प्रयोग एवं ग्रहदोषशान्तेः ।

सुवस्त्रपरिधानं च गन्धमाल्यविभूषणम् ।

अञ्जनं मुख तर्पणं दन्तधावनम् ॥

प्रियङ्गुसर्षपाज्यादिस्पर्शं कार्पासकादि च ।

वेश्मालङ्कारशुद्धिश्चेत्याद्यैर्युक्तस्य मङ्गलैः ॥

अहिंसकस्य दान्तस्य धर्मार्जितधनस्य च ।

नित्यं च नियमस्थस्य सदा सानुग्रहा ग्रहाः ॥

पुसां जन्मा रविसुतभोगमागतम् ।

क्षितिनतभेदनवात्रदूषितामित्यादि(?)दोषोपगतेषु पीडास्य ॥

इत्याहुः । तद्दोषफलं—

रोगानागमवित्तनाशकलहाः संपीडिते जन्मभे

सिद्धिं कर्म न याति कर्मणि . . . भेदस्तु साङ्घातिके ।

द्रव्यस्योप(रि)च के संजायते संक्षये
 वैनाशे च भवन्ति कार्यविपदाश्चिन्ता सुखं मानसे ॥
 इति । राज्ञां तु जातिदेशाभिषेकक्षोपघातेऽपि दोषः । तथा चोक्तम्
 षडृक्ष एव सर्वस्स्यात् ऋक्षैस्तु नवभिर्नृपः ।
 जातिदेशाभिषेकक्षैः त्रिभिः किल नृपोऽधिकः ॥

इति । तत्फलं च

जातिभेदिषु नृपाधिपीडनं
 देशभेदवति देशविप्लवः ।
 स्थानहानिरभिषेकभे भवेत्
 पीडिते क्षितिभृतामशाभनं ॥

एषां नवानां भानां युगपदुपघाते नृपः ; षण्णामेवान्योऽपि नश्यति
 तथाचोक्तम्—

निरुपद्रुतभो निरामयः सुखभाङ्गनष्टरिपुः ।
 षडुपद्रुतभोऽपि नश्यति त्रिभिरन्यैश्च सभावनीश्वरः ॥

इति । तद्दोषशान्तिर्यथा—

सर्वेषां पीडायां दिनमेकमुपोषितोऽनलं जुहुयात् ।
 सावित्र्या क्षीरतरोः समद्भिरमरद्विजानुरतः ॥
 गोक्षीरसितवृषशक्रन्मूत्रैः पात्रैश्च पूर्णकोशायाः ।
 स्नानं जन्मनि दुष्टे हरति ॥
 कर्मणि मधुघृतहोमोदशाहमक्षारमांसमद्याच्च ।
 दूर्वापियडुसर्षपशतावरीसंयुतं स्नानं ॥
 साङ्घातिके तु तप्ते मांसमधुकौर्यमन्मथांस्त्यक्त्वा ।
 दान्तो दूर्वा जुहुयात् दानं दद्याद्यथाशक्ति ॥
 सामुदायिके तु दद्यात् काञ्चनकाद्युपद्रुते धिष्ण्ये ।

वैनाशिकेऽन्नपानं वसुधां च गुणाधिकां दद्यात् ॥
 मानसतापे होमः सरोरुहैः पायसैः द्विजाः पूज्याः ।
 * गजमदशिरीषचन्दनबलातिबलवारिणा स्नानम् ॥

जन्मादिषु सूर्यसंक्रमे तद्दोषशान्तिरुक्ता यथा—

यस्य स्वजन्मराशौ वा नक्षत्रे वा त्रिचन्मनि ।
 भवेत् संक्रमणं भानोर्दोभाग्यानर्थदोषदम् ॥
 तत्र स्नानं प्रवक्ष्यामि मन्त्रौषधविधानतः ।
 यत् कृत्वा सुभगः श्रीमानायुरारोग्यभाग्भवेत् ॥
 गोमयेनोपलिप्तायां भूमौ पुष्पं विकीर्य तु ।
 ब्रीहीणामाढकेनात्र स्थडिलं कारयेद्बुधः ॥
 चतुरश्रं समं तत्र प्रागग्रान् संस्तरेत् कुशान् ।
 तत्रोदकेन संपूर्णान् कलशान् स्थापयेद्बुधः ॥
 वेष्टितान् सितसूत्रेण वस्त्रयुग्मेन संवृतान् ।
 क्षिप्त्वा तत्रौषधीन् पञ्च पञ्चभृङ्गमृदस्तथा ॥

पञ्चमृदादयः—

नदीगोकूलवल्मीकदेवागारगृहादपि ।
 एताः पञ्चमृदः प्रोक्ताः सङ्क्रान्तिस्नानकर्मणि ॥
 सहदेवी यवा व्याघ्री बला चातिबला तथा ।
 पञ्चौषध्यः प्रशस्यन्ते स्नानादिषु च कर्मसु ॥
 पलाशाश्वत्थकापीतबिल्वोदुम्बरपल्लवाः ।
 पञ्च भृङ्गा इति ज्ञेयाः देवानां च हितावहाः ॥

इति । ब्रह्मादयस्तथा देवा स्तीर्थानि *

गोकर्णादक्षिणस्यां ककुभि परिमिते योजना-
 नां चतुष्के श्रीमान् श्रीकण्ठगुप्तो जयति गुण-

* व्याख्येयमेतावत्पर्यन्तैवोपलभ्यतेऽत्रत्येषु कोशेषु.

वतीसंज्ञितो ग्रामवर्यः ॥ तस्मिन्नस्ति प्रभूतैर्युत-
मखिलगुणैः रद्वितीयां द्वितीयस्थानं नीलाल-
याख्यं द्विजकुलपतिना वामदेवेन लब्धम् ॥१४॥

तत्र स्थाने तस्मिन् वसिष्ठगोत्रे महायतिश्रेष्ठौ ।
जगति सुदर्शनतीर्थो रन्नगिरिश्वेति^२ विश्रुतौ जय-
तः ॥ तयोर्द्वयोभ्रातृतनूजपुत्रो बभूव नारायण-
पूज्यपादः । निषेदतुर्यत्र विमुक्तवैरे चिराय ल-
क्ष्मीश्च सरस्वती च ॥ १५ ॥

स्वग्रामपो दक्षिणतस्समीपे पयोनिधे रोधसि
मङ्कसंज्ञम् । निवेशयामास समृद्धियुक्तं^३ स्वदेशमी-
शाहतभागधेयम् ॥ तस्यात्मजोऽभूद्भुवनप्रतीतो
विद्यान्वितो माधवपण्डितेन्द्रः । महेश्वरं यो गुण-
वत्यधीशमुपास्य विद्यामखिलामवाप्नोत् ॥ १६ ॥

वेदव्याकरणास्पदं कविमहाराजस्सतर्कस्मृति
च्छन्दोलक्षणकाव्यनाटककलाविज्ञानसंपन्निधिः ॥
ज्योतिःशास्त्रविदग्धमानिजनतादुर्गर्वसर्वङ्गो वि-
द्यामाधवपण्डितो रचितवान् हृद्यं मुहूर्तागमम् ॥

1. महामुनिश्रेष्ठे.

2. विश्रुतौ जातो.

3. स्वदेशमासादित.

संज्ञाह्वयो दूषणलक्षणाख्यः दोषापवादो गुण-
लक्षणश्च ॥ बलावबोधोऽथ निषेचनादिः द्विती-
यजन्माध्ययनादिकश्च ॥ १८ ॥

करग्रहो वास्तुनिवेशनादि परस्तु कृष्यादिवि-
धान (शंसी)संज्ञः । ^१देवप्रतिष्ठापनकार्यशंसी ^२यात्रा
धिकारः प्रविकीर्णनामा ॥ १९ ॥

तारादिलक्षणाख्यः पुष्पग्रहगोचरादिफलसंज्ञः ।
इति पञ्चदशाध्यायाः परिमितपद्याः क्रमेणोक्ताः ॥

^३इत्थं पञ्चदशाध्यायनिबद्धं जयतु क्षितौ ।
मुहूर्तदर्शनं विद्यामाधवीयाह्वया चिरम् ॥ २१ ॥

ये लोके मत्सरान्धाः परगुणविमुखाः दोष-
संदर्शनोत्काः तेषामेषां ^४सकाशे न विशतु यदि
मे विद्यते पुण्यलेशः ॥ ^५येचान्येऽश्लिष्टदोषाः
परगुणमधिकं मानयन्तो महान्तः निर्वैराः सन्ति
तेषां व्रजतु ममकृतिस्सन्निधौ ^६सन्निवेशम् ॥

1. देवप्रतिष्ठाऽथ नृपाभिषेकः 2. यात्राविधानं. 3. इति पञ्चदशाध्या-
यैर्निबद्धं. 4. येचान्यश्लिष्टवर्गः परगुण. 5. संनिवासम्.

एताद्विद्यामाधवीयाभिधानं ज्योतिःशास्त्रं ये
पठन्तीह मर्त्याः । प्रीतास्तेषामीश्वरांशाः - ग्रहा
स्ते ¹कुर्वन्त्यायुर्वित्तविज्ञानवृद्धिम् ॥ २६ ॥

वदन् प्रसूनं ग्रहचारशास्त्रक्रमाढ्यख्यमाचायै-
समुद्भवं च । अध्याय एष त्रिगुणाष्टसङ्ख्यैः
श्लोकेः कृतः पञ्चदशोऽत्र पूर्णः ॥ २४ ॥

इति विद्यामाधवीये पञ्चदशः पुष्पग्रहगोचरफलाध्यायः ।
समाप्तमिदं मुहूर्तदर्शनापराभिधानं
विद्यामाधवीयम्.



सव्याख्याने विद्यामाधवीये स्मृता निबन्धाः

पुटसंख्या.

| | |
|----------------|---|
| अर्णवः | ... 19, 22, 25, 27, 29. 41, 107, 175, 203, 252. |
| कालदीपः | ... 212. |
| केशवयिम् | 51. |
| खड्गलक्षणम् | 29. |
| गारुडतन्त्रम् | 201. |
| जयार्णवः | 212. |
| ज्योतिषार्णवः | 4, 6, 8, 15, 16, 17, 18, 39, 56, 57, 71, 107, 112, 119, 126, 168, 200, 201, 217, 235, 260. |
| दिव्यसारस्वतम् | .. 203, 204. |
| पद्धतिः | ... 70, 81. |
| प्रयोगमञ्जरी | ... 12. |
| फलयोगजातकम् | 158. |
| ब्रह्मयामलम् | 72, 73, 74, 76, 132. |
| मत्स्यपुराणम् | 286. |
| महायात्रा | ... 94, 95, 104. |
| मासयात्रा | .. 60, 62. |
| मुहूर्तसारः | ... 126, 188. |
| यात्रा | 66, 68. |
| योगयात्रा | ... 69, 74, 92. |
| रत्नकोशः | . 40, 51, 133, 273, 274, 288. |
| रत्नदीपः | 259. |
| रत्नमाला | .. 133. |
| विधिग्लं | ... 15, 18, 20, 128, 132, 141, 149, 169, 237, 258. |
| षट्पञ्चाशिका | 46, 47, 49, 50, 51, 52. |